अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

सिक्किम विश्वविद्यालय

में मास्टर ऑफ फिलॉसफ़ी (एम.फिल.) उपाधि की आंशिक परिपूर्ति हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

दिब्य रंजन साहू

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

फरवरी – 2020

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

अनुसंधित्सु

दिब्य रंजन साहू

पंजी. सं. 18/M.Phil/HND/03, दिनांक 24/05/2019

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन

(एम. फिल. लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी

अनुसंधित्सु

दिब्य रंजन साहू

हिंदी विभाग

भाषा और साहित्य संकाय

सिक्किम विश्वविद्यालय

गंगटोक - 737102

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन

अनुसंधित्सु

दिब्य रंजन साहू

पं. सं. 18/M.Phil/HND/03, दिनांक 24/05/2019

द्वारा

सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के हिंदी विभाग में मास्टर ऑफ फिलॉसफ़ी (एम.फिल.) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

दिनांक : .....

घोषणा-पत्र

मैं **दिब्य रंजन साहू** (पंजीयन संख्या:18/M.Phil/HND/03, दिनांक- 24/05/2019) घोषणा करता हूँ कि मैंने सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के हिंदी विभाग के अंतर्गत एम. फिल. उपाधि हेतु **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन'** विषय पर डॉ. प्रदीप त्रिपाठी के निर्देशन में अपना लघु शोध-प्रबंध पूर्ण किया है। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध मेरा मौलिक कार्य है। मेरे संज्ञान में इसे अंशतः या पूर्णतः इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

इसे सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक के समक्ष हिंदी विषय में एम. फिल. की उपाधि हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है।

विभागाध्यक्ष (प्रभारी)	शोध-निर्देशक	अनुसंधित्सु
(डॉ. दिनेश साहू)	**(डॉ. प्रदीप त्रिपाठी)**	**(दिब्य रंजन साहू)**

दिनांक : .....

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **दिब्य रंजन साहू** (पंजीयन संख्या-18/M.Phil/HND/03, दिनांक-24/05/2019) ने **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन'** विषय पर एम. फिल. हिंदी उपाधि हेतु लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध उनके द्वारा संग्रहीत किए गए तथ्यों पर आधारित है। मेरे संज्ञान में इसे अंशतः या पूर्णतः इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं दिब्य रंजन साहू के लघु शोध-प्रबंध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

शोध-निर्देशक

(डॉ. प्रदीप त्रिपाठी)
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

भूमिका I – V

अध्याय : 1 शोध-परिचय 01 –22

1.1 शोध का शीर्षक

1.2 शोध का परिचय

1.3 शोध की समस्या

1.4 शोध का उद्देश्य

1.5 पूर्व कार्य की समीक्षा

1.6 शोध-प्रविधि

1.7 शोध का औचित्य एवं महत्त्व

1.8 शोध की सीमा

1.9 शोध का प्रयोजन

अध्याय : 2 स्त्री-विमर्श के निकष पर समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता 23–61

2.1. स्त्री-विमर्श: अवधारणा एवं स्वरूप

2.1.1. पाश्चात्य संदर्भ

2.1.2. भारतीय संदर्भ

2.2. स्त्री-विमर्श की कसौटी पर समकालीन हिंदी कविता

2.3. सांप्रतिक (समकालीन) ओड़िया कविता में स्त्री-अस्मिता के स्वर

अध्याय : 3 अनामिका एवं अपर्णा महांति की सृजन-यात्रा 62– 88

3.1 समय-समाज एवं वैचारिक पृष्ठभूमि

3.2 रचनाशीलता का क्रमिक विकास

3.3 हिंदी एवं ओड़िया साहित्य में समकालीन स्त्री-कविता लेखन

आधाय: 4 अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री-विमर्श 89-145

4.1 पितृसत्ता की चुनौतियों के बीच स्त्री स्वर

4.2 निजता में सामाजिकता की प्रतिध्वनि

4.3 नैतिक मूल्यों की कसौटी पर वैयक्तिक चेतना

4.4 अस्तित्व बनाम बेजुबान औरत की त्रासदी

4.5 प्रेम, परंपरा और विद्रोह का सामंजस्य

4.6 लैंगिक असमानता, यौन-कुंठा एवं वैश्या-वृत्ति के प्रश्न

4.7 बाल मनोविमर्श एवं मिथकीय चेतना

4.8 अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदना का साम्य एवं वैषम्य

अध्याय : 5 अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं का शिल्प-विधान 146-170

5.1 भाषागत वैशिष्ट्य

5.2 शैलीगत वैशिष्ट्य

5.3 लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग

5.4 बिंबों एवं प्रतीकों का प्रयोग

5.5 अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं के शिल्पगत वैशिष्ट्य का तुलनात्मक अध्ययन

निष्कर्ष : 171-178

संदर्भ ग्रंथ सूची : 179 – 186

परिशिष्ट : 187–209

- अनामिका से साक्षात्कार
- अपर्णा महांति से साक्षात्कार

भूमिका

कविता मानसिक स्पंदन की यथार्थ प्रतिलिपि है। कविता का आभ्यंतर जगत अत्यंत विस्तृत होता है। प्रत्येक भारतीय भाषा में रचित साहित्य का अपना स्वतंत्र वैशिष्ट्य है। निश्चित रूप से भारतीय काव्य के इतिहास में समकालीन कविता का बहुत ही सार्थक एवं सजग हस्तक्षेप है। समकालीनता एक समय सापेक्ष अवधारणा है, ऐसे में समकालीन कविता का अपने समय एवं समाज की तत्कालीन स्थितियों एवं विचारधारा से प्रभावित होना स्वाभाविक है। इस दौर की कविता में जहां एक ओर वैश्वीकरण, उदारीकरण, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, उपनिवेशवाद, बाजरवाद जैसी संरचनाएँ हावी होती हुई दिख रही हैं, वहीं दूसरी ओर दलित, स्त्री, आदिवासी जैसे विमर्शों का विस्तार भी कविता के मूल में है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध एक तुलनात्मक शोध कार्य है, जिसमें अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श की पड़ताल करते हुए उसका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। स्पष्ट है, समकालीन हिंदी कविता जगत में अनामिका एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में विस्मरणीय हैं। निःसंदेह वह समकालीन हिंदी कविता की वर्तमान पीढ़ी की मुखर अभिव्यक्ति हैं। विमर्श मूलक लेखन, खासकर कविता में स्त्री विमर्श के संदर्भ में उनकी उपस्थिति बहुत ही अहम है। इसी प्रकार समकालीन ओड़िया कविता में अपर्णा महांति भी अपने समय की सबसे चर्चित एवं अग्रणी लेखिकाओं में से एक हैं। उनकी कविताओं में स्त्री मुद्दे एवं तमाम जद्दोजहद प्रमुखता से उभरकर आया है। हिंदी एवं ओड़िया समकालीन कविताओं में 'स्त्री अस्मिता मूलक लेखन' को दोनों लेखिकाओं ने अपनी रचनाशीलता के जरिए सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। दो भिन्न प्रदेशों एवं अलग-अलग भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेश को इन कवयित्रिओं ने अपने समय के परंपरागत रूढ़ विचारधारा से हटकर अपनी सृजनशीलता के जरिए नई दिशा देने की कोशिश की है। साम्य एवं वैषम्य की भाव भूमि पर विचार करें तो दोनों लेखिकाओं की रचनाओं में युगीन चेतना का स्वरूप एक जैसा ही दिखता है। कुछ नगण्य वैषम्य को छोड़कर देखें तो दोनों की कविताओं में विचार-दृष्टि एवं अभिव्यक्ति का तेवर लगभग एक जैसा है। अध्ययन के क्रम में इस बात पर ध्यान दिया कि शोध की दृष्टि से मेरे संज्ञान

में अनामिका एवं अपर्णा महांति की रचनाओं में स्त्री पक्ष का मूल्यांकन जिस प्रकार होना चाहिए, नहीं हो पाया है। विशेषकर तुलनात्मक अध्ययन के रूप में यह बिंदु पूर्णतया अछूता सा नजर आता है, इसलिए शोध विषय का चयन करते समय अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श के तुलनात्मक मूल्यांकन को अध्ययन के केंद्र में रखा गया है।

इस दौर की कविताओं ने न केवल हिंदी साहित्य बल्कि पूरे भारतीय साहित्य को प्रभावित किया है। समकालीन स्त्री कविता लेखन के वाङ्मय में भारतीय साहित्य की समृद्ध परंपरा रही है। स्त्री-जीवन के सभी समस्याओं को सप्रसंग सामने लाना एवं उसमें निस्तारण का मार्ग प्रशस्त करना ही स्त्री-विमर्श की मूल अवधारणा है। हम विमर्श की इसी अवधारणा के सार्थक स्वरूप को अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में सहज अनुभव कर सकते हैं। दोनों लेखिकाओं ने समकालीन व आधुनिक स्त्री-जीवन के व्यापक आयामों को स्पर्श करते हुए तमाम रूढ़ एवं नए प्रश्नों को विकल्प सहित चिन्हित किया है। इन्होंने कस्बों, गाँव, शहर एवं फुटपाथ से लेकर अंतराष्ट्रीय स्तर पर संघर्षरत स्त्रियों के त्रासद अनुभवों को शब्दबद्ध करने की कोशिश की है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध को 5 अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय **'शोध परिचय'** है। इसके अंतर्गत शोध विषय का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके प्रयोजन, समस्या, उद्देश्य, शोध की सीमा, शोध-प्रविधि, शोध के औचित्य एवं महत्व को बताते हुए पूर्व शोध कार्य की विस्तृत समीक्षा की गई है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध का दूसरा अध्याय **'स्त्री विमर्श के निकष पर समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता : पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियां'** है। इसे तीन उप अध्यायों में बांटा गया है। इसके अंतर्गत स्त्री विमर्श की अवधारणा और स्वरूप के दोनों संदर्भों (भारतीय एवं पाश्चात्य) को स्पष्ट करते हुए स्त्री विमर्श की कसौटी पर समकालीन हिंदी कविता का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। समकालीन ओड़िया कविताओं में स्त्री अस्मिता से जुड़े तमाम प्रश्नों के विश्लेषण के साथ-साथ दोनों भाषाओं की कविताओं के सीमांकन की चर्चा भी इसी अध्याय के अंतर्गत की गई है।

प्रस्तुत शोध कार्य का तीसरा अध्याय **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की सृजन यात्रा'** है। इस अध्याय को तीन उप अध्यायों में विभाजित किया गया है। **'समय, समाज एवं वैचारिक पृष्ठभूमि'** उप अध्याय के अंतर्गत दोनों लेखिकाओं के रचनात्मक वैशिष्ट्य और उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता को रेखांकित किया गया है। इसके अतिरिक्त इसी अध्याय में दोनों रचनाकारों की रचनाशीलता के क्रमिक विकास और समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता लेखन में स्त्री रचनाकारों की उपस्थिति पर संक्षिप्त चर्चा भी की गई है।

प्रस्तुत शोध कार्य का चौथा अध्याय **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श'** है। इसे आठ उप अध्यायों में विभाजित किया गया है। इसका पहला उप अध्याय **'पितृसत्ता की चुनौतियों के बीच प्रतिरोध का स्वर'** है। भूमंडलीकरण एवं बाजारबाद से प्रभावित समाज में जिस प्रकार अनामिका एवं अपर्णा महांति ने अपनी कविताओं में स्त्री मुक्ति के स्वर को मुखर अभिव्यक्ति दी है; निश्चित रूप से उल्लेखनीय है। दोनों रचनाकारों ने अपनी वेदना, संघर्ष और विचारधारा को कविताओं में अभिव्यक्त दी। 'स्व' की चेतना सम्पूर्ण भारतीय स्त्री को प्रेरणा देती है। विशेषकर 'मैं' और 'तुम' जैसे संबोधन के साथ दोनों कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री मुक्ति ही मानव मुक्ति के उत्स के रूप में उभरकर आयी है। इसका विस्तृत विश्लेषण द्वितीय उप अध्याय **'निजता में सामाजिकता की प्रतिध्वनि'** के अंतर्गत किया गया है। तीसरे उप अध्याय **'नैतिक मूल्यों की कसौटी पर वैयक्तिक चेतना'** में 21वीं सदी का मानवतावाद नैतिक मूल्यों को सजोने के बजाय कैसे विघटन की ओर अग्रसर है, को दिखाया गया है। दोनों रचनाकारों ने अपनी कविताओं में तथाकथित नैतिक मूल्यों को चुनौती देते हुए 'स्व' की प्रतिष्ठा पर बल दिया है, इसका विस्तृत विश्लेषण भी इस उप अध्याय के अंतर्गत किया गया है। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में **प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह का सामंजस्य** की चर्चा पांचवे उप अध्याय में की गई है। दोनों रचनाकारों की कविताओं के आलोक में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह की बदलती प्रकृति का विस्तृत अन्वेषण इस उप अध्याय का ध्येय रहा है। छठें उप अध्याय **'लैंगिक असमानता, यौन-कुंठा एवं वैश्या-वृत्ति के प्रश्न'** के अंतर्गत दोनों कवयित्रियों की उन कविताओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है, जिसमें स्त्री-पुरुष संबंध, यौन कुंठा, वैश्या-वृत्ति संबंधी प्रश्न

बारीकी से उभरकर आए हैं। सातवें उप अध्याय **'बाल मनोविमर्श एवं मिथकीय चेतना'** में अनामिका एवं अपर्णा महांति की बाल मनोविमर्श संबंधी कविताओं का विश्लेषण किया गया है। अंतिम उप अध्याय **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदना का साम्य एवं वैषम्य'** के अंतर्गत उक्त सभी बिंदुओं को दृष्टिगत रखते हुए दोनों की कविताओं के मध्य साम्य एवं वैषम्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का पाँचवाँ और अंतिम अध्याय **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं का शिल्प-विधान'** है। इसे पाँच उप अध्यायों में विभाजित किया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत दोनों रचनाकारों के भाषागत एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का विस्तार से विश्लेषण किया गया है। दोनों लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में लोकोक्तियों, मुहावरों, बिंबों एवं प्रतीकों का प्रयोग किस प्रकार से किया है, उसकी प्रभावशीलता का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हुए अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं के शिल्पगत वैशिष्ट्य का तुलनात्मक अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

अंत में विषय मूल्यांकन के तौर पर निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए परिशिष्ट के अंतर्गत दोनों कवयित्रियों अनामिका एवं अपर्णा महांति के साक्षात्कार को भी शामिल किया गया है।

इस लघु शोध प्रबंध के पूरा होने में कई लोगों का विशेष योगदान रहा है। मैं अपने शोध निर्देशक डॉ. प्रदीप त्रिपाठी के प्रति अंतर्मन से विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझे विषय चयन से लेकर लघु-शोध-प्रबंध पूर्ण होने तक अपने ढंग से कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता देने के साथ तटस्थ दृष्टि से समझने की प्रेरणा दी। उनके कुशल निर्देशन, लोकतांत्रिक व्यवहार एवं वैज्ञानिक नजरिये से इसे और अधिक व्यवस्थित एवं तर्कसंगत बनाने में मुझे काफी मदद मिली। मैं हिंदी विभाग के प्रभारी डॉ. दिनेश साहू, सहायक प्रोफेसर डॉ. चुकी भूटिया, श्री कुलदीप सिंह, डॉ. उपमा सहित डॉ. बृजेन्द्र अग्निहोत्री एवं अन्य सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने शोध-कार्य के पूर्ण होने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया।

अनामिका एवं अपर्णा महांति के प्रति बहुत-बहुत आभार... जिन्होंने मेरे एक ही अनुरोध पर बड़ी प्रसन्नता एवं सहजता के साथ विषय चयन को स्वीकारा साथ ही विषय से संबंधित अपने साक्षात्कार सहित बीच-बीच में उचित परामर्श भी दिए। सिक्किम विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय ओड़िशा, कोरापुट के पुस्तकालय, उत्कल विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, गोपोबंधु पुस्तकालय, राउरकेला के सभी सदस्यों के प्रति भी आभार, जिन्होंने शोध कार्य से संबंधित सामग्री संकलन में काफी सहयोग प्रदान किया। अंत में अपने अग्रज, अनुज विशेषकर बी. आकाश एवं सबनम का आभारी हूँ जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय के साथ-साथ इस लघु-शोध प्रबंध को पूरा करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अतिरिक्त अपने सभी मित्रों एवं जाने-अनजाने में जो नाम छूट जा रहे हैं, उनके प्रति भी बहुत- आभार...

(दिब्य रंजन साहू)

1. शोध-परिचय

1.1 शोध का शीर्षक

प्रस्तुत शोध-कार्य का शीर्षक है- अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री-विमर्श: तुलनात्मक अध्ययन।

1.2 शोध का परिचय

सार्थक कविता वादों या आंदोलनों से सर्वथा मुक्त होती है। कविता के इतिहास में समकालीन अथवा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लिखी जा रही कविता के कालखंड का बहुत ही सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप दिखाई देता है। कविता के संदर्भ में कुँवर नारायण की यह काव्य-टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है- "कविता वक्तव्य नहीं गवाह है/ कभी हमारे सामने/ कभी हमसे पहले/ कभी हमारे बाद।" मोटे तौर पर देखें तो साठ के दशक के बाद से समकालीन हिंदी कविता की पृष्ठभूमि बननी प्रारंभ हो गई थी। साठ के बाद की हिंदी कविता को अकविता एवं प्रतिबद्ध कविता के रूप में विश्लेषित करते हुए केदारनाथ सिंह ने कविता के बदलते स्वरूप के संदर्भ में लिखा है - "संभवतः नवलेखन के क्षेत्र में यह सौंदर्यवादी रुझान कुछ दिनों तक चलता रहता यदि अकस्मात सन् 1962 के राष्ट्रीय संकट ने साहित्य तथा राजनीति में एक ही साथ बहुत से मोहक आदर्शों तथा खोखले काव्यात्मक शब्दों के प्रति हमारे मन में एक विराट शंका न भर दी होती"[1] समकालीन हिंदी कवियों ने भारतीय जन-मानस के विसंगतिबोध को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से उद्घाटित किया है। इस दौर की कविता जन-जीवन की समस्याओं से लड़ती-जूझती आम आदमी की कविता है जो विपरीत परिस्थितियों में भी मानवीय मूल्यों की सुरक्षा चाहती है। उसमें निराशा की जगह संघर्ष और पराजय के स्थान पर विद्रोह का भाव दिखाई देता है। यह कविताएं जन-मानस के दुःख दर्द पर संवेदना प्रकट करने के साथ-साथ उन पर आक्रोश भी व्यक्त करती हैं। समग्रता में वर्तमान परिप्रेक्ष्य की कविताओं ने व्यक्ति की अस्मिता की पहचान कराते हुए हमारे अनुभवों के निजी संसार को वृहत्तर समाज से जोड़ने का कार्य किया है। कविता के संदर्भ में कुँवर

[1]देव, राहुल. (2018). हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य. पृ.13.

नारायण की यह काव्य-टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है- "कविता वक्तव्य नहीं गवाह है/कभी हमारे सामने/कभी हमसे पहले/कभी हमारे बाद।"[1] केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विष्णु खरे, नरेश सक्सेना, भगवत रावत, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, लीलाधर मंडलोई, अशोक वाजपेयी, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, आलोक धन्वा, उदय प्रकाश, ज्ञानेंद्रपति, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अमृता प्रीतम, निर्मला पुतुल, अनामिका, कात्यायनी, देवी प्रसाद मिश्र, तथा जय प्रकाश कर्दम इत्यादि कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समकालीन काव्य परिदृश्य को समृद्ध किया।

भारतीय भाषाओं में कविता तथा अन्य सृजनात्मक क्षेत्रों में नारीवाद का स्वर आज मुखर है। नारीवाद स्त्री की स्वतन्त्रता पर बल देने वाला विचार है, जिसे समकालीन दौर में काफी प्रोत्साहन मिला है। इसके पीछे स्वतंत्रता हनन के विरूद्ध संघर्ष की अदम्य इच्छा है। यह आंदोलन मुख्यतः पश्चिम के देशों से शुरू हुआ। इसका प्रारंभ ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे राष्ट्रों में हुआ। हम देखें तो 18 वीं सदी के मानवतावाद और औद्योगिक क्रांति ने इस विचारधारा को नई दिशा दी। उक्त धारणा के संदरमें प्रभा खेतान की यह टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है– "स्त्री न तो स्वयं गुलाम रहना चाहती है, न पुरुष को बनाना चाहती है, स्त्री चाहती है मानवीय अधिकार में समानता।"[2] समाज में स्त्री के प्रति जागृति लाना तथा स्त्री के अस्तित्व की पहचान को स्थापित करने के प्रयास को ही नारीवाद अथवा स्त्री-विमर्श के रूप में हम समझ सकते हैं।

मोटे तौर पर 80 का दशक समकालीन विमर्शों के रूप में जाना जाता है। इस समय दलित, आदिवासी, कृषक, स्त्री आदि तमाम विषयों पर साहित्य सृजन प्रमुखता से हुआ। मुखर रूप से स्त्री लेखन एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह दशक अत्यंत सशक्त है। नब्बे का दशक समकालीन स्त्री-कविता की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस दौर की कवयित्रियों की रचनाएं अपनी अस्मिता का अन्वेषण करती हुई स्त्री संबंधी पुरानी रूढ़ियों एवं मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह करती हैं। नब्बे के दशक तथा उसके बाद की कवयित्रियों में अनामिका, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, सविता सिंह, अनीता वर्मा, रंजना

[1] नारायण, कुँवर. (2017). कविता. प्रतिनिधि कविताएं. पृ. 145

[2] खेतान, प्रभा. (हंस, दिसंबर,1996) पृ. 31

जायसवाल, नीलेश रघुवंशी, रमणिका गुप्ता, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, सीमा सोनी, रश्मि रवानी आदि हैं। इस पीढ़ी के सभी रचनाकार स्त्री-अधिकारों, रूढ़ियों का विरोध करते हुए पितृसत्तात्मक समाज के तमाम मूल्यों को चुनौती देते नजर आते हैं।

भारतीय भाषाओं में आधुनिक साहित्य का अवलोकन करने पर पता चलता है कि सभी भाषा के साहित्यकारों के सोचने का ढंग उस युग की पृष्ठभूमि के कारण लगभग एक सा रहा है। स्त्री स्वतंत्रता के स्वर को एक नया आयाम देने, उसके स्वरूप एवं सामंजस्य को रेखांकित करने के लिए विभिन्न प्रांतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करना नितांत आवश्यक है। उक्त संदर्भ को दृष्टिगत रखते हुए हिंदी एवं ओड़िया की प्रसिद्ध स्त्री लेखिका अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं को प्रस्तुत शोध-कार्य हेतु शोध-विषय के रूप में चयनित किया गया है।

यद्यपि ओड़िया साहित्य में वर्तमान दौर की कविता के लिए कोई निश्चित कालावधि स्वीकार्य नहीं है, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसकी रचना प्रक्रिया साठ के दशक के बाद से शुरू हो जाती है। सत्तर के दशक के उत्तरार्ध से ओड़िया साहित्य में स्त्री-लेखन की परंपरा को नया आयाम मिला। इस समय की प्रमुख कवयित्रियों में मनोरमा विश्वाल महापात्र, अपर्णा महांति, सुचेता मिश्र, प्रतिभा सतपथी, प्रीतिधारा सामल, ब्रम्होत्री महांती, सौदामिनी नन्द, नंदिनी सतपथी, विजयिनी दास, शकुंतला देवी,गिरिबाला महांति, ममता दास, रंजीता नायक, सुप्रभा मिश्र, सुनीति मुंड, सुनंदा प्रधान, प्रभासिनी महाकुड, आदि प्रमुख हैं। इन कविताओं में स्त्री अपना मत स्वतंत्र रूप से व्यक्त करती हैं साथ ही स्त्री-मुक्ति, समानता, अधिकार, मानवीयता, गुलामी, दासता आदि विचार प्रकट करती हुई भी नजर आती हैं। इन कविताओं की प्रमुख विशेषता यह भी है कि स्त्री अपनी आत्म-निर्भरशीलता, आत्मविश्वास एवं 'स्व' की प्रतिष्ठा पर भी बल देती हुई दिखाई देती हैं।

तुलनात्मक अध्ययन विशेष कर साम्य एवं वैषम्य की भावभूमि पर स्थित है। इस विशेषता को ध्यान में रख कर देखें तो अनामिका एवं अपर्णा महांति की रचनाओं में युगीन चेतना एक जैसी दिखाई पड़ती है। नब्बे के दशक में हिंदी एवं ओड़िया कविता में स्त्रीवादी दृष्टि मुखर होकर सामने आई। समकालीन ओड़िया के बरक्स यदि हम वर्तमान हिंदी कविता विशेषतः कवयित्रियों पर नजर डालें तो

अनामिका का नाम एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभरकर आता है। अभी तक अनामिका के लगभग दस कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, मसलन-'बीजाक्षर' (1993), 'अनुष्टुप' (1998), 'खुरदुरी हथेलियाँ' (2004),'गलत पत्ते की चिट्ठी' (2004), 'दूब दान' (2007),'अभी बसंत तुम्हारी जरूरत है' (2007) आदि। वैचारिक विमर्श में हस्तक्षेप करते हुए अनामिका स्त्री और पुरुष को भिन्न श्रेणी में रखते हुए भी दोनों को एक दूसरे का विरोध बनाकर नहीं रचती। स्त्री एवं पुरुष के आपसी सामंजस्य और परस्पर तनाव को अनामिका कलात्मक तरीके से सृजित करती हैं। अलगाव के क्रम में जुड़ाव की भावना उनकी कविताओं की विशेषता है। पितृसत्तात्मक मानसिकता को दर्शाती अनामिका अपनी 'बेजगह' कविता में लिखती हैं-

"अपनी जगह से गिरकर

कहीं के नहीं रहते

केश, औरतें और नाखून-

अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे

हमारे संस्कृत टीचर।

और मारे डर के जम जाती थीं

हम लड़कियाँ

अपनी जगह पर !"[1]

प्रायः वर्तमान समय में यदि किसी स्त्री लेखिका ने ओड़िया साहित्य में नारी अस्मिता की गाथा को सफल अभिव्यक्ति दी है, तो निर्विवाद रूप से अपर्णा महांति इस श्रेणी की सफल हस्ताक्षर हैं। इनकी कविताओं में नारी अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करती हुई पितृसत्ता के विरूद्ध अपने स्वर को मुखर करती है। नारी की देह संबंधी कुंठाभिव्यक्ति को अफल अभिव्यक्ति करती उनकी कविताओं में प्रेम की

[1]अनामिका, (2012). पचास कविताएँ. पृ. 39.

गंध को सहज महसूस किया जा सकता है। समाज में स्त्री-पुरूष संबंधी विचारों का पश्चिमी रूप उनकी कविताओं की विशेषता है। अभी तक अपर्णा के एक दर्जन से अधिक कविता संग्रह प्रकाशित हैं। जैसे - 'अव्यक्त आत्मीयता' (1991), 'असती' (1993), 'निःशब्दरे' (1994), 'अतिथि' (1997), 'पूर्णतमा' (2002), 'झिअ पाईं झर्काटिए' (2005), 'नष्टनारी' (2007), 'माँ र कांदणा गीत' (2010), 'जोगिनी गीत' (2015), 'ऐबे मुं प्रेमरे' (2016), 'अग्नि कमलिनी' (2017), 'निजकु खोजिला बेले' आदि है। मुख्य रूप से अपर्णा महांति की कविताओं में प्रेम एवं विद्रोह का स्वर ज्यादा मुखर जान पड़ता है। वह अपनी 'पहचान रखो' कविता में लिखती हैं -

"एक साथ गच्छित है

संसार के सब मृत जीवित नारी के

आत्मविश्वास के जीवाश्म

त्रस्त तिरस्कार

और मौन हाहाकार… ।"[1]

पितृसत्ता के संदर्भ में स्त्री चित्त की विश्वसनीय प्रस्तुति उनकी कविताओं में सहज अभिव्यक्त हुई है। साम्यवादी नारीवाद से प्रभावित कवि अपर्णा अपनी कविताओं में स्त्री मुक्ति के पथ पर प्रेम-तत्त्व की प्रगाढ़ता को स्वतः महसूस करती हैं। वह लिखती हैं -

"प्रेम में

सभी आँसू मुक्ता

सभी रक्त क्षरण गुलमोहर

सभी दीर्घश्वास पद्मवन

सभी अंधेरा चंद्रोदय

[1]महांति,अपर्णा. (2007). नष्टनारी. पृ.41.

सभी आघात महाप्रसाद

सभी व्याकुलता में

ईश्वर को आलिंगन करने की

पवित्रता।"[1]

समकालीन कविता में स्त्री लेखन की परंपरा को समकालीन कवयित्रियों ने निश्चित रूप में समृद्ध एवं सुदृढ़ बनाया है। शोध की दृष्टि से अनामिका एवं अपर्णा महांति की रचनाओं में स्त्री पक्ष का मूल्यांकन जिस प्रकार होना चाहिए उतना नहीं हो पाया है। विशेषकर तुलनात्मक रूप में यह पक्ष पूर्णतया अछूता सा नजर आता है। दोनों कवयित्रियों का समय, समाज की अंतर्वस्तु में भी ज्यादा विभेद नहीं है। हम देखते हैं कि विश्व में स्त्री-मुक्ति आंदोलन का प्रभाव समग्र भारतीय साहित्य पर प्रभावी रूप से पड़ा है। हिंदी एवं ओड़िया साहित्य के स्त्री-लेखन की परंपरा में अनामिका एवं अपर्णा महांति निश्चित रूप में अग्रणी हैं। हिंदी साहित्य को पुष्ट करती अनामिका जहां स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों को आधुनिक संदर्भ में देखने की कोशिश करती हैं वही अपर्णा महांति ने ओड़िया साहित्य में स्त्री-लेखन की परंपरा को समृद्ध करने, समसामयिक परिदृश्य की स्थितियों एवं उनकी मुक्ति को विमर्श की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। तमाम समानता एवं असमानता के बावजूद दोनों लेखिकाओं की रचनाशीलता में स्त्री की भूमिका एवं उसकी भावभूमि एक दूसरे के निकटस्थ है, इसलिए तुलनात्मक दृष्टि से दोनों रचनाकारों की कविताओं को स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध के माध्यम से समझने की कोशिश की गई है।

1.3 शोध का प्रयोजन

प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य प्रयोजन शोध की दिशा में ज्ञान का विस्तार एवं स्वयं को इस उपक्रम से जोड़कर अपने समय के महत्त्वपूर्ण सवालों से टकराने का एक प्रयास है। समय सापेक्ष बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं चिंतन धारा से जुड़कर शोध एवं साहित्य के अंतःसंबंधों को समझने का प्रयास

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. पृ. 41

भी प्रस्तुत शोध के प्रयोजन में निहित है। सिक्किम विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अंतर्गत एम.फिल. उपाधि प्राप्त करना भी इस शोध का विशेष प्रयोजन है।

1.4 शोध की समस्या

प्रस्तुत शोध-कार्य में निम्नलिखित बिंदुओं को शोध की समस्या के रूप में देखा जा सकता है-

1. अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री अस्मिता के सवाल प्रमुखता से उभर पाए हैं?
2. समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में स्त्री विमर्श एक स्वतंत्र दृष्टिकोण है। पितृसत्ता के संदर्भ में स्त्री चिंतन का मनोविज्ञान से क्या संबंध है?
3. स्त्री-अस्मिता से जुड़े सवालों को उठाने में संवेदना के स्तर पर दोनों कवयित्री कहाँ तक सफल हो पाई हैं ?
4. समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में अनामिका एवं अपर्णा महांति का योगदान किस रूप में अपने समकालीन कवयित्रियों से भिन्न है?
5. स्त्री विमर्श को सशक्त, सार्थक एवं सही दिशा देने में दोनों रचनाकारों की भूमिका क्या है ?
6. साम्य एवं वैषम्य के धरातल पर दोनों रचनाकार एक दूसरे के कितने निकट हैं?
7. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दोनों रचनाकारों की रचनाशीलता का समाज पर क्या प्रभाव है?

1.5 शोध-कार्य का उद्देश्य:

प्रस्तुत शोध-कार्य में शोध के उद्देश्य को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से देखा जा सकता है-

1. स्त्री-विमर्श के आलोक में अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना प्रस्तुत शोध-कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

2. स्त्री विमर्श को सार्थकता एवं सही सीधा देने में रचनात्मक धरातल पर दोनों रचनाकारों की भूमिका को स्पष्ट करना भी इस शोध का ध्येय है।
3. समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में स्त्री विमर्श एक स्वतंत्र दृष्टिकोण है। इस शोध के माध्यम से पितृसत्ता के संदर्भ में स्त्री चिंतन एवं उसके मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया गया है।
4. स्त्री-अस्मिता से जुड़े सवालों को उठाने में संवेदना के स्तर पर दोनों कवयित्रियाँ कहाँ तक सफल हो पाई हैं, का अध्ययन करना भी प्रस्तुत शोध-कार्य के उद्देश्य में शामिल रहा है।
5. दोनों रचनाकारों के समय-समाज, परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए स्त्री जीवन से संबंधित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितिजन्य कारणों की पड़ताल भी इस शोध-कार्य के माध्यम किया गया है।
6. समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में अनामिका एवं अपर्णा महांति का योगदान, कविताओं की सार्थकता, प्रभावशीलता एवं उनके स्थान को रेखांकित करना भी इस शोध का लक्ष्य रहा है।
7. दोनों कवियित्रियों के शिल्पगत वैशिष्ट्य एवं रचना प्रक्रिया को रेखांकित करते हुए उसका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत शोध के माध्यम से किया गया है।

1.6 पूर्व शोध कार्यों की समीक्षा (साहित्यिक पुनरावलोकन)

यद्यपि विगत वर्षों में अनामिका एवं अपर्णा महांति पर केंद्रित स्वतंत्र तथा व्यक्तिगत रूप में शोध-कार्य हुए हैं, किन्तु तुलनात्मक शोध के संदर्भ में मेरे संज्ञान में अभी तक कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है। संभवतः प्रस्तुत शोध-कार्य समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता (पितृसत्तात्मक परिप्रेक्ष्य) को तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने का यह मेरा पहला मौलिक प्रयास होगा।

अध्ययन के क्रम में यह ज्ञात हुआ, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक के हिंदी विभाग की शोधार्थी निशा रानी ने डॉ. विजय कुमार वेदालंकार के शोध निर्देशन में 'अनामिका का काव्य : वस्तु

एवं शिल्प' विषय पर शोध कार्य किया है। इसके अलावा 'अनामिका के समग्र साहित्य का अनुशीलन' विषय पर श्री आरिफ़ गफ़ूर जमादार ने शोलापुर विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र के हिंदी विभाग में जयश्री सिंदे के शोध निर्देशन में एक शोध प्रबंध का कार्य पूर्ण किया है। इसके अतिरिक्त समकालीन हिंदी एवं ओड़िया स्त्री-कविता के संदर्भ में कई अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध हैं। मसलन-

(क) पुस्तकों में समीक्षा –

हिंदी की आलोचनात्मक पुस्तकों में उपलब्ध सामग्री -

मंजु रुस्तगी की आलोचनात्मक पुस्तक '*अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री-विमर्श*' (2018), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली अपने समय का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सहायक दस्तावेज़ है। इसमें अनामिका की कविताओं में समकालीन स्त्री एवं समकालीन विमर्श में स्त्री की उपस्थिति का अवलोकन एवं मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक में स्त्री-विमर्श की अवधारणा एवं स्वरूप पर चर्चा करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में स्त्री-विमर्श को रेखांकित करने का प्रयास 'हिंदी कविता में स्त्री-विमर्श' अध्याय के तहत किया गया है। इसके अतिरिक्त वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक रचित कविताओं में स्त्री साहित्य की उपस्थिति को भी इस पाठ के अंतर्गत रेखांकित किया गया है।

स्त्री-जीवन से संबद्ध साहित्य (स्त्री एवं पुरुष) के माध्यम से स्त्रीवादी चिंतन के परिप्रेक्ष्य में कुछ प्रसिद्ध विद्वानों की की समीक्षा का भी अध्ययन अवलोकन के क्रम में किया गया है। जैसे- अरविंद जैन की पुस्तक 'औरत होने की सजा','उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार','यौन हिंसा एवं न्याय की भाषा','औरत : अस्तित्व और अस्मिता' आदि। इसी प्रकार उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा लिखित 'आधी जमीन', राजेन्द्र यादव की 'आदमी की निगाह में औरत', राकेश कुमार की 'नारीवादी विमर्श' एवं जॉन स्टुअर्ट मिल की 'स्त्रियों की पराधीनता' आदि। स्त्री-विमर्श पर मृणाल पांडे की पुस्तक 'देह की राजनीति से देश की राजनीति, 'स्त्री उपेक्षिता': सिमान द बोउआर (अनुवादक : प्रभा खेतान), एवं मृदुला गर्ग की 'चूकते नहीं सवाल', क्षमा शर्मा की 'स्त्री का समय', विभा देवसरे की 'स्वागत है बेटी',

नासिरा शर्मा की 'औरत के लिए औरत', अनामिका की 'स्त्री-विमर्श','स्त्रीत्व का मानचित्र', मन माँझने की जरूरत','पानी जो पत्थर पीता है' आदि है। 'वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री' शीर्षक से अनामिका की कविताओं में स्त्री के व्यक्तिगत अनुभवों का चित्रण भी उक्त पुस्तक में रेखांकित है। इसी प्रकार 'पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री' शीर्षक से स्त्री की विविध भूमिकाओं में उसकी स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। जैसे 'सामंजस्य स्थापित करती स्त्री' पाठ के अंतर्गत उद्धृत संदर्भ को मिसाल के रूप में देखा जा सकता है- "एक अजीब से विरोधाभास में जीती हैं स्त्रियाँ। पारिवारिक संबंधों में पति सखा न होकर मालिक होता है और पत्नी क्षमा और धैर्य की प्रतिमूर्ति बन उसकी सेवा में सदैव उपस्थित रहती है।"[1]

'सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री' विषय पर शोषित स्त्री, समाजीकृत स्त्री, एकाकीपन की स्थिति, उपेक्षित स्त्री वर्ग, वृद्धाजन, सेक्स वर्कर्स, सार्वभौमिक भोगिनीवाद, अस्तित्व के प्रति सजग आदि महत्वपूर्ण विषयों पर समीक्षा की गई है। मसलन- "जैसे ही स्त्री अपने वजूद का एहसास दिलाती है और नये ढंग से देखे सुने, समझे जाने की माँग करती है तो उसे भिन्न-भिन्न लांछनों से सुशोभित किया जाता है-

"दुश्चरित्र महिलाएँ दुश्चरित्र
महिलाएँ –
किन्हीं सरपरस्तों के दम पर फूली-फैली
अगरधत्त जंगली लताएँ !
खाती-पीती सुख से ऊबी
और बेकार बेचैन, आवारा महिलाओं
का ही

[1]रुस्तगी, मंजु. (2018).अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री-विमर्श.पृ.93

शग़ल हैं ये कहानियाँ और कविताएँ.... ।

फिर ये उन्होंने थोड़े ही लिखी हैं

(कनखियाँ, इशारे, फिर कनखी) ।"[1]

'परंपरागत और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री' विषयक चर्चा में रूढ़ियों में बद्ध स्त्री की दशा एवं दिशा तथा आधुनिक स्त्री की उपस्थिति को विश्लेषित किया गया है। दृष्टांत के रूप में इस कथन को देखा जा सकता है- "अनामिका की कविताएँ भारतीय परिवेश में पारिवारिक एवं सामाजिक स्थितियों में नारी की दशा को उद्घाटित करती हैं तथा भारतीय एवं पाश्चात्य समस्याओं के बीच डोलती आधुनिक नारी की स्थिति को भी कहीं-कहीं उजागर करती हैं। आज की नारी अपनी स्थापित पारंपारिक छवि को खंडित कर नया रूप धारण कर रही है।"[2] अनामिका ने सामान्य विषयों के माध्यम से अपनी बात रखने की हमेशा कोशिश की है। कूड़ा बीनते बच्चे, भीख माँगते बच्चे, टिकट, कैलेंडर, मोबाइल, सेफ्टी पिन, रद्दी की टोकरी, पॉलीथीन कवर, समोसा, चुटपुटिया बटन, विस्थापित जन आदि जैसे सरल विषयों, गंभीर प्रसंगों को बहुत ही सजगता से रेखांकित किया है। इसके अलावा लोक-संस्कृति का महत्त्व, असफलता, नैतिक मूल्यों से पलायन, आशावादी दृष्टिकोण, सांप्रदायिकता, सामाजिक विडंबना आदि भाव उनकी कविताओं के केंद्रीय विषय हैं। प्रस्तुत पुस्तक में अनामिका की कविताओं की भाषा एवं शैली पर भी विचार किया गया है। लोक भाषा, लोक रंग, देशज शब्द, प्रतीक, बिंब, मुहावरे-लोकोक्तियों आदि को भी सप्रसंग विश्लेषित किया गया है। इस प्रकार पुस्तक के परिशिष्ट में अनामिका का व्यक्तित्व और कृतित्व, साक्षात्कार तथा वर्तमान संदर्भों में स्त्री-विमर्श पर समीक्षा स्थानित है।

डॉ. संजय गर्ग द्वारा संपादित पुस्तक *'स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास'*, (2015), सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, स्त्री-विमर्श को समझने हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण सामग्री है। डॉ. गर्ग के संपादकत्व में प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे लेख संग्रहीत हैं, जिनमें स्त्री-समस्या तथा स्त्री विमर्श पर विचार किया गया है। राष्ट्रीय अभिलेखागार में संरक्षित श्री अन्नापूर्णानन्द संगृहीत 'जनक दुलारी संग्रह' से प्रेरित इस पुस्तक

[1]रुस्तोगी,मंजु.(2018).अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री-विमर्श.पृ.112
[2]वही.पृ.143

के संपादकीय में डॉ. गर्ग का कथन है – "प्राचीन ग्रन्थों में स्त्री के महत्व पर प्रकाश डाला गया है, लेकिन उनके उत्थान के लिए उस समय कोई कुछ न कर सका अपवादस्वरूप कुछ विलक्षण प्रतिभा की धनी विदुषी नारियाँ यथा- गार्गी, मैत्रयी, लोपामुद्रा, घोषा, और विद्योत्तमा का नाम प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है। विगत में स्त्री दबी-कुचली और शोषित ही रही है। आमतौर पर यह धारणा है कि उनके लिए न कुछ लिखा गया और न ही उन पर चिंतन किया गया है, लेकिन विगत में भी स्त्री पर चिंतन करने वाले और लिखने वाले रहे हैं। ऋग्वेद में तो कहा गया है :-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्राः तु न पूज्यन्ते सर्वाः अफलाः क्रिया॥ "[1]

कुल मिलाकर इस पुस्तक में स्त्री विमर्श की पारंपारिक दृष्टि को समझने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में स्थानित सुभद्रा कुमारी चौहान, अवन्तिका देवी, चंद्रारानी देवी, सरला, हरिऔध, मीरा बेन, सीताराम चतुर्वेदी आदि के स्त्री-विमर्श से संबंधित विचार निःसंदेह विमर्श के बौद्धिक पटल को विकसित करता है।

अरविंद जैन की पुस्तक '*औरत : अस्तित्व एवं अस्मिता'*, (2013), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, स्त्री-विमर्श संबंधी विचारों पर अपना विशेष स्थान रखती है। हिंदी के कई प्रसिद्ध रचनाओं में स्त्री संघर्ष, पुरुषवादी चिंतन, यौन क्रांति आदि मनोदशा का तार्किक वर्णन है। कृष्णा सोबती का उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के'(1972), ममता कालिया का उपन्यास 'बेघर'(1971), उषा प्रियंबदा का 'पचपन खंभे लाल दीवारें'(1962), राजेन्द्र यादव का 'सारा आकाश'(1951), मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' (1971), मैत्रयी पुष्पा का उपन्यास 'इदन्नमम'(1994) आदि को स्त्री विमर्श के आलोक में देखने का प्रयास किया गया है। कात्यायनी के लेखों-टिप्पणियों का संग्रह 'दुर्ग द्वार पर दस्तक'(1997) का विश्लेषण करते हुए अरविंद जैन का मंतव्य है "अंतराष्ट्रीय पूँजी और तीसरी दुनिया की स्त्री-श्रम शक्ति के शोषण के नए समीकरणों का बहुत सही विश्लेषण करते हुए कात्यायनी का कहना

[1]गर्ग,डॉ.संजय.(2015).स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास.पृ.10

है कि आर्थिक दबाव के अतिरिक्त सर्वहारा स्त्रियों को 'पारस्परिक तनावों और सामाजिक उत्पीड़न-लांछन का भी शिकार' होना पड़ा है। दूसरी ओर उदारीकरण और मुक्त बाजार का भयंकर परिणाम है कि "रूस, पूर्वी जर्मनी, उक्रेन,पोलैंड, और चैक गणराज्य की स्त्रियाँ हजारों की तादाद में पश्चिमी देशों में आकर वैश्यावृत्ति कर रही हैं।"[1] महिला लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन करती इस पुस्तक में हिंदी स्त्री-लेखन परंपरा को नया आयाम मिला है।

राहुल देव की आलोचनात्मक पुस्तक *'हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य'*,(2018), यश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, में समकालीन काव्य परिदृश्य को सही अर्थ में समझने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक में समकालीन कविता की पृष्ठभूमि, प्रवृत्तियाँ, समस्याएँ और चुनौतियाँ जैसे कई विशेष बिदुओं पर चर्चा की गई है। आधुनिक कविता और समकालीन संदर्भ पर सारगर्भित आलोचना को भी पुस्तक में शामिल किया गया है। समकालीन कविताओं में स्त्रीवादी दृष्टि पर विश्लेषण करते हुए राहुल देव का मानना है कि –"कुछ कवयित्रियों की प्रखर स्त्रीवादी कविताएं पुरुषवादी वर्चस्व के बीच अपने अस्तित्व की पहचान पर लगा हुआ एक ऐसा प्रश्नचिन्ह है जिनके उत्तर तलाश करने का समय आ चुका है।"[2]

रमणिका गुप्ता की *'स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास'*, (2018), सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, पुस्तक स्त्री-विमर्श के मूल संवेदनाओं को रेखांकित करती है। रमणिका के अनुसार स्त्री उत्पीड़न के कुछ मूल कारण होते हैं, जैसे- स्त्री के स्वनिर्णय और स्वायत्तता का अधिकार, लैंगिक विभेद को खत्म कर समानता का अधिकार एवं पुरुष सत्ता के तहत उत्पीड़न की समाप्ति। पुस्तक में स्त्री मुक्ति का प्रसंग तर्कपूर्ण है। कई महत्वपूर्ण प्रश्नों को समेटती यह पुस्तक विमर्श के बौद्धिक स्तर को प्रभावित करती है। रमणिका का कहना है- "यहाँ विडंबना है कि पितृसत्तात्मक से न सवर्ण लेखक मुक्त है और न ही दलित लेखक। स्त्रियाँ भी कमोबेश पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण का ही समर्थन करती हैं। कुछ कम स्त्रियाँ हैं, जो स्त्री होने को हीनता का पर्याय नहीं मानती या अगले जन्म में पुरुष बनना नहीं चाहती।"[3] खासतौर पर यह

[1]जैन, अरविंद. (2013). औरत: अस्तित्व और अस्मिता. पृ. 158
[2]देव, राहुल. (2018). हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य. पृ. 176
[3]गुप्ता, रमणिका. (2017). स्त्री मुक्ति:संघर्ष और इतिहास. पृ. 113

पुस्तक स्त्री-विमर्श की मूल अवधारणा को स्पष्ट करती है। इस प्रसंग में इनकी पुस्तक *स्त्री विमर्श:कलम और कुदाल के बहाने*, (2010), शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली में भी उक्त संदर्भों की विस्तृत चर्चा देखने को मिलती है।

डॉ. प्रमोद काव्यप्रेत द्वारा संपादित पुस्तक *'हिंदी साहित्य : समकालीन परिप्रेक्ष्य',* (2015), राजपाल एंड सन्स (नई दिल्ली) में समकालीन साहित्य पर समसामयिक समालोचकों के कुछ लेख संकलित हैं। समकालीन साहित्य विशेषतः समकालीन कविता पर केंद्रित डॉ. प्रमिदा का आलेख 'युद्ध का आतंक : समकालीन कविता में', डॉ. रवीद्र नाथ मिश्र का 'अनामिका की कविता : नारी विमर्श, डॉ. आर. जयचंद्रन का समकालीन कविता और पर्यावरण सौंदर्यशास्त्र', डॉ. प्रतिभा मुदलियार का 'समकालीन कविता और स्त्री विमर्श' जैसे लेखों में स्त्री विमर्श, दलित, पर्यावरण, तथा अन्य मुद्दों को अभिव्यक्ति मिली है।

वी.एन.सिंह एवं जनमेजय सिंह की *'नारीवाद'*, (2018).रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उतार-चढ़ाव में एक स्त्री के उत्थान, संघर्ष एवं समकालीन विमर्श में उसकी उपस्थिति को तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। किसी विमर्श या वाद को समझने से पहले उसकी पृष्ठभूमि को समझना जरूरी होता है। प्रस्तुत पुस्तक में वैदिक युग से लेकर समसामयिक नारी की यथार्थ स्थिति का वर्णन हुआ है। इस पुस्तक में खासकर स्त्री-विमर्श, स्त्री-सशक्तिकरण, एवं अस्मिता जैसे विषयों पर अध्ययन करते समय मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, नारीवाद जैसे विचारधाराओं से जोड़कर देखने की कोशिश की गई है। मुस्लिम समाज में नारी सशक्तिकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में स्त्री-मुक्ति का प्रसंग, की तार्किक आलोचना भी पुस्तक में शामिल है।

ओड़िया की आलोचना पुस्तकों में उपलब्ध सामग्री –

डॉ. नित्यानंद शतपथी द्वारा लिखित *'सबुजरु सांप्रतिक'*, (2011), ग्रंथ मंदिर, कटक पुस्तक आधुनिक ओड़िया कविता के विस्तृत परिवेश तथा पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करती है। 'सत्यवादी युग' के बाद ओड़िया साहित्य में 'सबुज युग' नामक कालखंड आता है। आलोचक डॉ. सुरेन्द्र कुमार महाराणा के मतानुसार इसका उत्थान सन् 1921 से 1935 के बीच में हुआ है। उसके बाद प्रगतिवादी साहित्य (1935-1947) और फिर स्वातंत्र्योत्तर साहित्य का उन्मेष उल्लेखनीय है। प्रस्तुत पुस्तक में सन 1920 से 1967 तक की ओड़िया कविता की पृष्ठभूमि तथा परिवेश की समग्र व्याख्या हुई है। उसके बाद 'संप्रति'/'सांप्रतिक' शीर्षक से 1960-1990 की ओड़िया कविता की सम्यक आलोचना की गई है। पुस्तक में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से सांप्रतिक ओड़िया कविता की पृष्ठभूमि बननी शुरू हो गई थी।

डॉ. दिगंबर गिरि की पुस्तक *'समकालीन कविता : कवि ओ काव्यधारा'*, (2018), विजयिनी पब्लिकेशन्स, कटक, में समकालीन ओड़िया कविता की स्थिति एवं प्रगति पर विचार किया गया है। उत्तर-आधुनिक ओड़िया कविता, सांप्रतिक कविता में जीवन-जिज्ञासा, समकालीन कविता में दलित, आदिवासी, मिथक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि के साथ-साथ जगन्नाथ संस्कृति और भारतीय आध्यात्मिक चेतना आदि विषयों पर विमर्श किया गया है।

डॉ. शिशिर बेहेरा की आलोचनात्मक पुस्तक *'सांप्रतिक ओड़िया कविता : ऐतिह्य चर्चा'*, (2017), सत्यनारायण बुक स्टोर, कटक में वह सांप्रतिक (समकालीन) ओड़िया कविता में इतिहास-बोध की पड़ताल करते हैं। उनका मानना है कि सांप्रतिक ओड़िया कविता ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की भयावहता, स्वतन्त्रता के बाद का मोहभंग, आधुनिकीकरण एवं बाजारवाद जैसे नैराश्य से मुक्त होकर आत्मन्वेषण करने की कोशिश करती है। वह अपनी अस्मिता की खोज करती हुई पुराणशास्त्र, इतिहास, लोक-संस्कृति, मिथक आदि में अपने आप को पाती है। यह कहा जा सकता है कि सांप्रतिक ओड़िया कविता अतीत एवं वर्तमान की पृष्ठभूमि पर अपने चेतना के प्रवाह को अव्याहत रखने में

सफल हुई है। इस पुस्तक में विशेष रूप से 1975 से 2000 तक की ओड़िया कविताओं में इतिहास-बोध का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

डॉ. सुश्री संगीता स्वाईं की *'अर्द्धशताब्दीर आधुनिक ओड़िया कविता : एक भिन्न अनुशीलन'*, (2017), किताब भवन, भुवनेश्वर, में आधुनिक ओड़िया कविता के सौ साल के इतिहास को दर्शाया गया है। पाँच अध्यायों में विभाजित इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में 1900 से 2000 तक की ओड़िया कविता के विकास-क्रम के संबंध में आलोचना की गई है। द्वितीय अध्याय में स्वतन्त्रता के बाद की ओड़िया कविता (1950-2000) में मौलिकता एवं समसामयिक कवियों की कविता शैली पर विचार किया गया है। मृत्यु चेतना, ग्राम्य चेतना, शहर के प्रति आकर्षण, मिथक एवं स्त्री-मनोविज्ञान, अंग्रेजी कविताओं के प्रति रुझान में रोमांटिक कविता के सृजन जैसे कई संदर्भों की चर्चा हुई है। तृतीय अध्याय के अंतर्गत स्वतन्त्रता के बाद की ओड़िया कविता की शैली संरचना पर सांप्रतिक कवियों और आलोचकों के द्वारा लिखे गए लेखों का विवेचन किया गया है एवं पंचम अध्याय में कविता के संबंध में कुछ रचनाकारों की आलोचनात्मक दृष्टि को स्थानित किया गया है।

डॉ. गिरीश चन्द्र साहू एवं डॉ. भुवनानंद साहू द्वारा संपादित पुस्तक *अपर्णा पूर्णतमा*, (2013), विजयिनी पब्लिकेशन्स, कटक, में सांप्रतिक ओड़िया कवयित्री अपर्णा महांति की कविता एवं निजी जीवन पर केंद्रित शुभकामना संदेश तथा टिप्पणियाँ संगृहीत है। आलोचक महापात्र नीलमणि साहू, कवि रमाकांत रथ, सीताकांत महापात्र, प्रतिभा सतपथी, वैष्णव चरण सामल, विजयानंद सिंह, ममतामयी चौधुरी, दीपक मिश्र, कृष्णचन्द्र प्रधान जैसे साहित्यकारों की प्रतिक्रियाएँ प्रशंसनीय है। अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री-विमर्श विषयक आलोचना करते हुए 'नारीर विमर्श भाग्य' लेख में प्रो. कृष्णचन्द्र प्रधान का कहना है- "नारी के प्रति हो रहे अत्याचार का वह विरोध करती हैं अपनी शब्दशक्ति के शस्त्र से। नारी की असहायता, रूढ़िवादी चिंतन तथा दुर्बलता के प्रति वह जैसी संवेदनशील, उसके प्रति पुरुष का अविचार और भोगवादी दृष्टि के प्रति वैसी प्रतिक्रियाशील।"[1] पुस्तक में आलोचक राजीव पाणि द्वारा लिखे गए लेख में 'नष्टनारी' शीर्षक की सार्थकता पर विचार करते हुए

[1]प्रधान, कृष्णचन्द्र. नारीर विमर्श भाग्य. (संपा). साहू, डॉ.भुवनानन्द. साहू,गिरीश चन्द्र.अपर्णा पूर्णतमा. पृ. 152

स्त्री-विमर्श के तमाम पार्श्व-चित्रों का अंकन किया गया है। इसमें दिव्य प्रेम, देहातीत प्रेम तथा जीवन के चरम प्राप्ति तथा परम तृप्ति में 'नष्टनारी' एक नैसर्गिक चेतना के प्रतीक के रूप में दिखाई गई है। महापात्र नीलमणि साहू 'नष्टनारी' की भूमिका में यह स्पष्ट करते हैं कि 'नष्टनारी' कभी भी भ्रष्टनारी नहीं है। इस पुस्तक में डॉ. अंजलि पाढ़ी के द्वारा 'अपर्णा महांति एवं कात्यायनी की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन'(A Comparative Analysis of the Poetry of Aparana Mohanty and Katyayini) अंग्रेजी भाषा में शोध पत्र संकलित है। इस तुलनात्मक शोध-पत्र में दोनों लेखिकाओं के जीवन-दर्शन, रचनाधर्मिता पर सम्यक विश्लेषण किया गया है विशेषकर कविता संकलन 'झिअ पाईं झरकाटीए'(अपर्णा महांति) और 'इस पौरुषपूर्ण समय में' (कात्यायनी) का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। इस संदर्भ में कई अन्य कविताओं का भी तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। डॉ. पाढ़ी दोनों कवयित्रियों को उत्तर-आधुनिक विमर्श से जोड़कर देखती हैं –"Postmodern literature is full of extraordinary courage and realization of self. That is reflected in the poems of both Aparna and Katyayini."[1]

'सांप्रतिक साहित्य ओ तत्व विचार', (2015), ग्रंथ मंदिर, कटक डॉ. चित्तरंजन मिश्र की चर्चित आलोचनात्मक पुस्तक है। ओड़िया के सांप्रतिक साहित्यिक धारा को जिन विचार व तत्त्वों ने खूब प्रभावित किया, उनको डॉ. मिश्र ने व्यवस्थित कर इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। पूंजीवाद तथा उपभोक्तावाद की आलोचना करते हुए, मिथक, वस्तुवादी चिंतन, संस्कृति के विघटन जैसे कई विचारणीय बिंदुओं पर चर्चित विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किए हैं। सांप्रतिक ओड़िया कविता के बिंबों तथा प्रतीकों में स्थित विमर्श को उद्घाटित करने में प्रस्तुत पुस्तक मार्गदर्शिका है।

[1]Padhi, Dr. Anjali. (2014). A Comparative Analysis of the Poetry of Aparna Mohanty and Katyayini. (Edt.). Sahu, Dr. Bhubnanand & Sahu Girishchandra. Page: 152

(ख) पत्र-पत्रिकाओं से उपलब्ध सामग्री

इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिंदी रिसर्च, ISSN: 2455-2232, अंक-5, पृ. 74-77 में करुणा सक्सेना की 'स्त्री की कविताओं में संवेदनाओं की नवीन अभिव्यंजनाएँ' शीर्षक से शोध लेख प्रकाशित है। प्रस्तुत लेख में अनामिका के साथ कई लेखिकाओं की कविताओं में स्त्री-अस्तित्व के प्रश्नों को संवेदना के स्तर पर समझने की कोशिश की गई है।

ऑनलाइन जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लीनरी सबजेक्ट्स ISSN: 2349-266X, सितंबर-2018, पृ. 1199-1203 में डॉ. मृदुल जोशी का 'अनामिका एवं कात्यायनी की कविताओं में स्त्री विमर्श' शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ है। यह लेख में दोनों रचनाकारों की वैचारिकी को समझने में सहायक है।

शोध मंथन, ISSN : (P): 0976-5255, (E): 2454-339X, जून-2017, में डॉ. राजीव कुमार का 'नारीवाद : राजनीतिक अवधारणा' शीर्षक से एक लेख एवं KIJAHS, ISSN : 2348-4349, अप्रैल-जून-2017, पृ. 144-148 में 'नारीवादी सिद्धांतों का विकास एवं समकालीन समाज में नारी जीवन' (वासुदेव सिंह जादौन) लेख में स्त्री विमर्श की सैद्धांतिकी को समझने का प्रयास किया गया है।

न्यू मैन इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लीनरी स्टडीज, ISSN:2348-1390, अंक-11, नवंबर-2017, पृ. 12-15 में डॉ. नित्यानंद पट्टनायक का 'फेमिनिज़्म इन मॉडर्न ओड़िया लिट्रेचर शीर्षक से एक लेख प्रकाशित है जिसमें ओड़िया साहित्य के इतिहास में स्त्री-वादी दृष्टि पर चर्चा की गई है।

(ग) शोध प्रबंधों के आधार पर अवलोकन-

अनामिका का काव्य : वस्तु एवं शिल्प विषय पर महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा के हिंदी विभाग से निशा रानी ने पी-एच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु शोध-कार्य किया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में अनामिका के जीवन दर्शन का विश्लेषण करते हुए उनके काव्य-सौष्ठव को विशेष महत्व

दिया गया है। अनामिका के काव्य में वस्तुगत उपलब्धियों पर समीक्षा करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि उनके काव्य में प्रेम एवं सौन्दर्य तत्त्व के साथ स्त्री-विमर्श के बौद्धिक चरित्र का निर्वहन निःसंदेह असामान्य है। शिल्प के स्तर पर उनकी भाषा, बिंब, प्रतीक, छंद, अलंकारों के प्रयोग को भी एक स्वतंत्र दृष्टि से देखने की कोशिश की गई है।

विमर्श की दृष्टि से अनामिका के काव्य में प्रेम एवं विद्रोह का समानांतर हस्तक्षेप है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में प्रेम के विविध रूप का प्रयोग किस प्रकार काव्य में किया गया है ; यथोचित विवरण है। उनके काव्य की वस्तु योजना में प्रेम के विविध रूप का समायोजन कुछ इस प्रकार हुआ है। जैसे- भक्ति प्रेम, दांपत्य प्रेम, देश प्रेम, कुटुंब प्रेम, मानव या विश्व मैत्री प्रेम, प्रकृति प्रेम, वात्सल्य प्रेम आदि। इसी प्रकार सौंदर्यान्वेषण करते हुए प्रकृति सौंदर्य, मानवीय सौंदर्य, वस्तुगत सौंदर्य तथा कलागत सौंदर्य पर युक्तिपूर्ण विवेचन भी प्रस्तुत शोध में किया गया है।

समसामयिक संदर्भ को दृष्टिगत रखते हुए स्त्री-विमर्श से संबंधित तत्त्वों के आलोक में उनकी कविताओं में माँ, स्त्री, बेटी तथा वैश्या के बंधन एवं मुक्ति का प्रसंग रेखांकित है। इस प्रकार सामाजिक भाव-बोध के विभिन्न आयामों पर चर्चा करते हुए पारिवारिक जीवन संघर्ष, संस्कार, प्रेम एवं यौन संबन्धों आदि पर भी टिप्पणी की गई है। सांस्कृतिक भाव-बोध के समसामयिक आयामों के संदर्भ में कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, लोक मंगल की भावना तथा सत्य-अहिंसा जैसे बिंदुओं पर संक्षिप्त आलोचना हुई है। 'अनामिका की कविताओं में उद्बोधन' शीर्षक से उपेक्षित, पीड़ित तथा शोषित वर्ग तथा उनकी आवाज को मुखर रूप से अभिव्यक्ति मिली है। इसके अतिरिक्त कई सहज एवं महत्वपूर्ण विषयों को उद्बोधित करती कविताओं में 'तुम' की अवधारणा, स्त्री का स्त्रीपन और स्त्री दैहिक भी, नहीं भी जैसे बिंदुओं का भी आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। समग्रता में इस शोध-प्रबंध में अनामिका की कविताओं में वस्तु एवं शिल्प विधान को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में समझने की चेष्टा है।

शोलापुर विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र के हिंदी विभाग से श्री आरिफ़ गफ़ूर जमादार ने *"अनामिका के समग्र साहित्य का अनुशीलन"* विषय पर शोध कार्य किया है। इसके अंतर्गत अनामिका के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा एवं साहित्य सृजन की प्रक्रिया को

दिखाया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में अनामिका के समकालीन साहित्यकारों का परिचय उनके प्रकाशित साहित्यिक कृतियों के साथ किया गया है जिनमें कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, ममता कालिया, चंद्रकांता, मृदला गर्ग, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, मधु कांकरिया, मंजुल भगत, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, नासिरा शर्मा, गगनगिल, नीलेश रघुवंशी आदि भी शामिल हैं।

साहित्यिक कृतियों के परिचय में 09 कविता संग्रह, एक कहानी संग्रह एवं 06 उपन्यासों में अनामिका के सामाजिक, राजनैतिक भावभूमि का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि अनामिका के पद्य एवं गद्य साहित्य ने समसामयिक परिस्थिति के आलोक में युगबोध कराया है। अनामिका के साहित्य में स्त्री जीवन को रेखांकित करना प्रस्तुत शोध-प्रबंध का मूल उद्देश्य प्रतीत होता है। सामाजिक परिस्थितियों में स्त्री अनेक रूपों में सामने आती है, जिसका वर्णन अस्मितामूलक विमर्श के आलोक में उन्होने अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है। अनामिका के साहित्य पर बौद्ध दर्शन के प्रभाव पर प्रस्तुत शोध प्रबंध में विस्तार से चर्चा की गई है।

प्रस्तुत शोध में अनामिका की भाषा एवं शैली के संदर्भ में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कई महत्वपूर्ण बिंदु पर चर्चा की गई है। जैसे- अनामिका:काव्य भाषा शैली, काव्य शास्त्रीय तत्त्व चिंतन, काव्य तत्त्व और कविता, कल्पना तत्त्व, प्रवाहात्मकता, भावात्मकता एवं प्रतीकों और बिंबों मसलन प्राकृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, पौराणिक तथा मिथकीय प्रतीक, सामाजिक प्रतीक एवं यौन प्रतीक आदि का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

1.7 शोध की सीमा :

अनामिका एवं अपर्णा महांति का रचना संसार निश्चित रूप से अत्यंत व्यापक एवं समृद्ध है। दोनों कवयित्रियों की रचनाशीलता को शोध के विविध पक्षों अथवा विभिन्न दृष्टियों से देखा जा सकता है। शोध की सीमा एवं समयाभाव को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध-कार्य के अंतर्गत दोनों रचनाकारों की कविताओं में स्त्री-अस्मिता के सवालों को रेखांकित करने की कोशिश की गई है। प्रस्तुत शोध कार्य की सीमा अनामिका एवं अपर्णा महांति के उन कविता संग्रहों पर आधृत है, जिसमें स्त्री-विमर्श

अथवा स्त्री-अस्मिता के सवाल प्रमुखता उभरकर आए हैं। शोध-कार्य हेतु निर्धारित समय-सीमा को दृष्टिगत रखते हुए यह कार्य अनामिका के दो काव्य-संग्रह 'कविता में औरत' एवं 'पानी को सब याद था' तथा अपर्णा महांति के दो काव्य-संग्रह 'नष्टनारी'एवं 'झिअ पाईं झर्काटिए' पर केंद्रित है।

1.8 शोध का औचित्य एवं महत्त्व :

प्रस्तुत शोध की समस्या एवं उद्देश्य के आधार पर ही इसके औचित्य एवं महत्त्व को स्पष्टता से रेखांकित किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध हिंदी एवं ओड़िया साहित्य के निकट आने की संभावनाओं को प्रोत्साहित करेगा साथ अकादमिक दृष्टि से देखा जाय तो निकट भविष्य में शोध-अध्येताओं को यह सामग्री शोध की दिशा तय करने एवं उसे नई दृष्टि से समझने में मददगार साबित होगी। इस शोध का उद्देश्य ऐसे समाज को मुख्य धारा से जोड़ना एवं उससे परिचित करवाना है जो शोषित, उपेक्षित, बहिष्कृत वर्ग की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध साहित्य होते हुए भी हाशिये पर है। इस मायने में भी यह शोध काफी सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण साबित हो सकता है।

1.9 शोध प्रविधि

1.9.1 अध्ययन विश्लेषण का सैद्धांतिक आधार:

अध्ययन-विश्लेषण के सैद्धांतिक आधार पर प्रस्तुत शोध-कार्य में मुख्य रूप से तुलनात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। इसके अलावा आवश्यकतानुसार प्रस्तुत शोध में आलोचनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं निगमनात्मक पद्धतियों का भी प्रयोग हुआ है।

1.9.2 सामग्री संकलन :

प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत के तहत आधार सामग्री के रूप में अनामिका एवं अपर्णा महांति के उन काव्य-संग्रहों को लिया गया है, जिनमें स्त्री-विमर्श से संबंधित कविताएं शामिल हैं। इसके अतिरिक्त इस

शोध-कार्य को पूर्ण करने हेतु दोनों रचनाकारों का साक्षात्कार भी प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत शामिल किया गया है।

द्वितीयक स्रोत

द्वितीयक स्रोत के अंतर्गत विभिन्न पुस्तकालयों से शोध विषय से संबंधित सहायक ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं, शोध-प्रबंधों एवं इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्रियों आदि का प्रयोग किया गया है।

विमर्श एक समष्टिगत बौद्धिक विचार है। समानार्थकरूप में 'विमर्श' के लिए अंग्रेजी में डिस्कोर्स (Discourse) शब्द का प्रयोग किया जाता है। सोचने-विचारने के क्रम में बौद्धिक चिंतन-मनन द्वारा किसी भी सूक्ष्म तथा वृहत्तर परिप्रेक्ष्य से संबंधित विषय की गुणवत्ता पर तथ्य एवं तर्क आधारित दृष्टि की आलोचना व समीक्षा करना ही विमर्श है। सोच-विचार, चिंतन-मनन, विचार-विनिमय, परामर्श, मशविरा, परीक्षण-निरीक्षण,चर्चा-परिचर्चा, समीक्षा आदि शब्दों का समाहार रूप 'विमर्श' शब्द में निहित है। लगभग 70 के दशक से यह शब्द अपने विशिष्ट भाव विन्यास को स्पष्ट करता आया है। विमर्श के संदर्भ में हिंदी साहित्य ज्ञानकोश बजरंग बिहारी तिवारी का मंतव्य है - "पिछले चार दशकों से इस शब्द ने नई अर्थवत्ता प्राप्त की है। इसके समावेशी अर्थ में लिखित के अलावा मौखिक, भंगिमाएं तथा अभिनीत रूप भी शामिल हैं। इसीलिए मिशेल फूको ने विमर्श को भाषा का क्रिया रूप (लैंग्वेज इन एक्शन) कहा। उनके अनुसार, विमर्श घटनाओं के क्रम, इनके विवेचन, संकेतकों तथा वार्तालाप के वक्तव्यों का वर्णन है।"[1] हम देखते हैं, जब समाज में हाशिए के वर्ग के लिए आवाजें उठनी लगीं, तब व्यष्टि चेतना अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की खोज में लग गई। लगभग यहीं से आइडेंटिटी डिस्कोर्स (Identity Discourse) की एक नई प्रस्तावना उभर कर सामने आई। इससे पहले डिस्कोर्स अपने प्राचीन अर्थ में ईसाई धर्म चिंतन से जुड़ा हुआ था। वह भी धर्म-चर्चा व किसी धर्माधिकारी द्वारा उपदेश प्रदान करने के अर्थ में, जो प्रासंगिक हो। हम देखते हैं कहीं न कहीं आइडेंटिटी डिस्कोर्स के मूल में 'अस्मिता की राजनीति' ही मुख्य रही, जिसमें बुनियादी अस्मिता और अस्तित्व से जुड़े सवालों को सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उठाने की कोशिश की गई। इसी 'अस्मिता की राजनीति' के विकसित रूप को 'अस्मिता विमर्श' के रूप में देखा गया। समय सापेक्ष बदलती लेखन शैली के धारा-प्रवाह को 'विमर्शमूलक लेखन' की संज्ञा से पारिभाषित किया गया। कहना गलत नहीं होगा कि संवाद स्थापन करने के अर्थ से लेकर प्रासंगिक मुद्दों पर आलोचना करते हुए 'विमर्श' अपने सूक्ष्म एवं जटिल अर्थविन्यास को समेटे हुए है।

---

[1]तिवारी, बजरंग बिहारी. विमर्श. (2019). हिंदी साहित्य ज्ञानकोश. (संपा.शंभुनाथ). पृ. 3513

"विमर्श शब्द मूलतः गहन सोच-विचार, विचार-विनिमय तथा चिंतन-मनन को द्योतित करता है अर्थात् विमर्श से सीधा तात्पर्य सोच-विचार, विनिमय तथा विवेचन से है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार विमर्श शब्द से आशय तबादला-ए-ख़याल, परामर्श, मशविरा, विचार-विनिमय, सोच-विचार आदि से है।"[1] समांतर कोश में विमर्श के पर्यायवाची के रूप में परामर्श, परीक्षा, विचारण, विवेचना जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'विमर्श' को लोकभारती बृहत प्रामाणिक हिंदी कोश में व्याख्यायित करते हुए लिखा है – "किसी स्थिति के सुधार या वर्ग आदि के अभ्युत्थान के लिए होने वाला वैचारिक मंथन ; जैसे दलित विमर्श, स्त्री-विमर्श। विमर्शकार – राय देने वाला सलाहकार।"[2] विमर्श किसी माँग की पूर्ति के लिए चिंतनों का बौद्धिक अनुक्रम है। बौद्धिक विचारों की संरचना मानव की आवश्यकताओं से जुड़ी हुई है। विमर्श की जरूरत तब पड़ती है, जब मानवीयता के साथ वस्तु, व्यक्ति, ज्ञान, समाज, जाति, धर्म, वर्ग, विचारधारा संकटग्रस्त स्थिति में हो। एक प्रकार से देखें तो विमर्श हमारे जीवन संघर्ष का अभिन्न अंग है। अस्मिता की पहचान जैसे सवालों से गुजरने में विमर्श एक महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम का कार्य करता है। विचारों का निर्णय किसी पर न थोपा जाये, यह वस्तुतः विमर्श के तात्विक परिधि के अंदर स्वीकार्य है।

'विमर्श' शब्द वर्तमान में समाज के हाशिए के वर्ग की आवाज उठाने हेतु अधिक प्रतिबद्ध एवं प्रचलित है। स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर एवं बच्चों से जुड़ी समस्याओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विमर्श के जरिए उसे साहित्य एवं समाज के मुख्य धारा से जोड़ने की कोशिश है। प्रस्तुत अध्याय की संबद्धता स्त्री विषयक मुद्दों से है, इसलिए इसके अंतर्गत स्त्री विमर्श की अवधारणा को संक्षेप रूप में समझने का प्रयास किया गया है।

[1]रस्तोगी, मंजु. (2018). अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री विमर्श. पृ. 12
[2]वर्मा, आचार्य रामचंद्र. (2014). लोकभारती बृहत प्रामाणिक हिंदी कोश. पृ. 871

2.1 स्त्री- विमर्श : अवधारणा एवं स्वरूप

'स्त्री' शब्द के पर्याय के अर्थ में प्रायः 'नारी' शब्द का प्रयोग होता रहा है। स्त्री (Female) को समझने के क्रम में हमेशा पुरुष (Male) का नाम साथ में जुड़ा हुआ रहता है। जैसे- स्त्री-पुरुष, नर-नारी, मेल-फीमेल आदि। ऐसे युग्म शब्दावलियों के पीछे कई कारण हैं, तथा इस पर कई आरोप भी लगाये जाते रहे हैं। स्त्री एवं पुरुष के मध्य कई स्तरों पर साम्य होते हुए भी निर्विवाद रूप से स्त्री एक वैश्विक एवं अद्वितीय सत्ता है जिसके गर्भ से समग्र मानव जाति की सृष्टि एवं विकास हुआ है। 'स्त्री' को सरल अर्थ में समझाते हुए सिमोन द बोउआर का यह कथन बेहद समीचीन प्रतीत होता है - "Women? Very simple, say those who like simple answers: she is a womb, and ovary; she is a female: this word is enough to define her."[1] धीरे-धीरे 'स्त्री' शब्द अपनी विस्तृत अर्थवत्ता में छिप गया। शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार 'स्त्री' को परिवार का सूत्रधार तथा मौलिक अर्थ में जन्मदात्री के रूप में सर्वमान्य है। स्त्री शब्द प्रकृति स्वरूपा भी स्वीकार किया गया है, इस अर्थ में उसमें शब्द, स्पर्श, गंध तथा रस आदि का अद्भुत एकीकरण है।

स्त्री एवं पुरुष दोनों के बीच दृष्टिभेद को खत्म करते हुए समान अधिकार को बरकरार रखना ही इसका मूल उद्देश्य रहा है। स्त्री-विमर्श की उत्पत्ति स्त्रियों के सचेतन प्रक्रिया से होती है। स्त्री के जन्म से लेकर मृत्यु तक, आत्मसम्मान, स्वाधीनता, समानता, अस्मिता की पहचान, प्रतिष्ठा, स्व की चिंता, मनोविज्ञान, शिक्षा जैसे पहलुओं पर यह विमर्श गंभीर मंथन करता है। स्त्री-विमर्श की अवधारणा के संबंध में चंद्रकांता का मंतव्य है- "स्त्री-विमर्श को वृहत्तर अर्थ में परिभाषित करना चाहें तो वह परिवार, समाज, और राष्ट्रनीति में नारी की अस्मिता, अधिकार और उन अधिकारों के लिए संघर्ष चेतना से जुड़े संवाद की संकल्पना है। वहां सामाजिक-धार्मिक अंध रूढ़ियों में दबी-पिसी स्त्री की आहें-कराहें ही नहीं,

[1]Beauvoir, Simone de.(1949).The Second Sex.(Translated). Constance Borde and Sheila Malovany-Chevallier. P.21

बल्कि शोषक व्यवस्था के विरुद्ध उसका आक्रोश-विद्रोह भी है, साथ ही गारिमापूर्ण सशक्त छवि गढ़ने की मुहिम भी।"[1]

प्रत्येक युग की तत्कालीन परिस्थितियाँ रूढ़िवादी मानसिकता को तोड़ती आई हैं। इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि में उस समायावधि के चिंतकों, विचारकों तथा क्रांतिकारियों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मसलन ऋग्वेद में जो सामाजिक विचार मिलते हैं, उत्तर-वैदिक काल में आते-आते उसमें काफी बदलाव नजर आता है। स्त्री परिप्रेक्ष्य में विचार करने से ज्ञात होता है कि ऋग्वेदीय स्त्री के पास जो आत्मसम्मान था, वह उत्तर वैदिककाल में नहीं रहा। महात्मा बुद्ध तथा महावीर जैसे चिंतकों के विचार ने तत्कालीन अंधविश्वास तथा जड़वादी मनोवृति पर कठोर प्रहार किया। सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों की कठोरताएं टूटीं, एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई। रामायण और महाभारत के समय में पुरुषवादी मानसिकताओं के बीच जिस प्रकार विमर्श की सोच ने स्त्री को पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध आत्मसम्मान के साथ खड़े होने की प्रेरणा दी; कहीं न कहीं स्त्री-विमर्श जैसी संकल्पना की आवश्यकता महसूस की गई।

स्त्री-विमर्श पर गहरी सोच रखने वाली मृदुला गर्ग के शब्दों में कहें तो - "दरअसल हमारे यहां स्त्री-विमर्श पद का इस्तेमाल स्त्रीवादी मुद्रा के लिए किया जाता है।...विमर्श अपनी प्रकृति में सतत प्रयोगधर्मा और परिवर्त्तनशील होता है। ... स्त्रीवाद प्रमुख रूप से पुरुष या पितृसत्ता के विरुद्ध आंदोलन के रूप में शुरू हुआ है।"[2] समाजशास्त्रीय दृष्टि से जाति, धर्म, वर्ण, संस्कृति, संप्रदाय जैसे स्वरूपों में स्त्री समस्याओं के अनेक कारण हैं। ये सभी कारण अपने-अपने क्षेत्रों, नगरों, राज्यों तथा महानगरों से अलग-अलग रूपों में जुड़े हैं। इस प्रकार वर्ग विभाजन (निम्न, मध्य, उच्च) के बीच सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दूरी है। सभी वर्ग की महिलाओं को एक ही दृष्टि से देखना उचित नहीं होगा। सबकी जीवन शैली, कार्य शैली, शिक्षा आदि में भिन्नताएं हैं। इसीलिए हर वर्ग की स्त्रियों के

[1]सिंह, डॉ.वी.एन. सिंह. डॉ.जनमेजय. (2012). नारीवाद. पृ. 110
[2]सिंह, डॉ. वी .एन & सिंह,डॉ.जनमेजय. (2012). नारीवाद. पृ. 110

लिए विमर्श का एक मानदंड या विमर्श के लिए स्वतंत्र एक मॉडल की कल्पना करना युक्तिपूर्ण नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री-विमर्श का फ़लक अत्यंत व्यापक, विस्तृत है।

साहित्य के क्षेत्र में जब स्त्री-विमर्श की बात होती है, तब उसकी अवधारणा तथा बदलते स्वरूप पर आरोप भी लगाया जाता है। कहा जाता है कि कुछ महिलाएं, विशेष कर उच्च तथा मध्यवर्ग की महिलाएं चर्चा में रहने के लिए ऐसे आंदोलनों में हिस्सा लेती हैं। इस प्रकार की मनोदृष्टि पर मैत्रीय पुष्पा का मानना है – "मध्य वर्ग की स्त्री, स्त्री-विमर्श में शामिल है, तो इसका कारण यही है कि अब तक शिक्षा का प्रचार-प्रसार मध्य वर्ग तक ही हो पाया था। किसान, स्त्रियों, मजदूर महिलाओं और निचली जाति की मानी जाने वाली औरतें इस विचारधारा से और इस आंदोलन से लिखित रूप में नहीं जुड़ पाईं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह विमर्श के बाहर हैं। विमर्श केवल कागज पर ही नहीं होता, वह जीवन में होता है। श्रम से जुड़ी औरतें अपना हक जानती हैं, जान गई हैं और उनको पाना उनके संघर्ष में दर्ज होता है।"[1] स्त्री-विमर्श पर विचार करते हुए राजेन्द्र यादव कहते हैं– "स्त्री आकांक्षा के मानचित्र पर... मैंने स्त्री देह को लेकर कुछ सवाल उठाए थे... मेरी प्रतिक्रिया थी कि यह समाज और स्त्री या पुरुष सत्ता और स्त्री पर तो बहुत संवेदनशीलता से बातें करते हैं, इसमें स्त्री प्रताड़ना और यातनाओं के विभिन्न चित्र हैं और उसके बाहरी-भीतरी जीवन के निजी संघर्षों को देखने की कोशिश की गई है, मगर आत्मविश्लेषण और आत्मनिरीक्षण इसमें नहीं हैं, कहना चाहिए कि यह मानचित्र राजनीतिक और सामाजिक है... पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन में न जाने कितना कुछ ऐसा है जिसकी तरफ ध्यान नहीं दिया गया।"[2]

स्त्री-विमर्श की अवधारणा को नारीवादी विचारधारा के संदर्भ में समझना अधिक आवश्यक होगा। आधुनिक युग में स्त्री-विमर्श के मूल सूत्र औद्योगिक क्रांति एवं मानवतावाद में परिलक्षित होता है। पाश्चात्य एवं भारतीय स्त्रीवादी दृष्टिकोण के आधार पर हम स्त्री-विमर्श के व्यापक तथा गहन अवधारणा व स्वरूप को समझ सकते हैं।

[1]सिंह, डॉ. वी .एन & सिंह,डॉ.जनमेजय. (2012). नारीवाद. पृ.113
[2]सिंह, डॉ. वी .एन & सिंह, डॉ.जनमेजय. (2012). नारीवाद. पृ.114

2.1.1 पाश्चात्य संदर्भ :

नारीवाद के आलोक में स्त्री-विमर्श संबंधी बौद्धिक चिंतन को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता विशेष कर पाश्चात्य से आरंभ हुई है। पाश्चात्य में स्त्री-विमर्श जैसी सोच आने से पहले तत्कालीन समय-समाज में नारी की स्थिति का सम्यक अवलोकन करना उपयुक्त होगा।

लगभग 70 के दशक में पाश्चात्य के देशों में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। स्पार्टा, सीरिया, इटली, सयुंक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रूनेसिया, कनाडा, जापान, कोरिया आदि देशों में एक स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थिति संकट में था। स्त्रियाँ अपने नाम से कोई संपत्ति नहीं रख सकती थीं, व्यवसाय नहीं कर सकती थीं। मानसिकता में या यूं कहें तो शारीरिक और बौद्धिक चिंतनों में स्त्री हीनतर समझी जाती रही। जापान और चीन जैसे देशों में तो उस समय स्त्रियों का मंदिर जाना निषेध था। स्पार्टा में यदि कोई विवाहित स्त्री संतान प्रसव नहीं कर पाती थी, तब उसे मृत्यु दंड दिया जाता था। रोम के लोगों ने अपने देवताओं को खुश रखने के उद्देश्य से बालिकाओं की बलि दिया करते थे। हम ईरान की ओर नजर दौड़ाकर देखेंगे तो यहाँ पुरुषों के द्वारा स्त्रियों की खरीद/बिक्री होती थी। धर्मशास्त्र तथा कानून व्यवस्था में भी नारी के लिए कोई स्थान बचा ही नहीं था। इस प्रकार के संकटावस्था से गुजरती तत्कालीन पाश्चात्य सभ्यता में महिला शक्तिवादी विचारधारा का उन्मेष होना स्वाभाविक था।

हम देखते हैं कि धीरे-धीरे पाश्चात्य की स्त्रियाँ चेतना संपन्न होती गई। आज वे अपने अधिकार, आत्मसम्मान के आंदोलन में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में हिस्सा लेती हैं। महिलाओं के प्रति हो रहे अमानुषिक अत्याचारों के खिलाफ प्रदर्शन करती हैं। स्त्री संघर्ष का विकास पाश्चात्य में तीन स्तर (वेभ) पर देखने को मिलता है। स्त्री-विमर्श के आलोक में हम उन संघर्ष के बदलते स्वरूप को देख सकते हैं।

स्त्री विमर्श एक सोच, एक दौर था, जो पाश्चात्य में नारीवाद (Feminism) के रूप में सर्वप्रथम कानाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड जैसे देशों में शुरू होता है। 'प्रथम तरंग नारीवाद' के सीमांकन को लेकर मतभेद होने के बावजूद इसकी समय सीमा 1848 से 1920 के मध्य मानी जाती है। स्त्री विमर्श के प्रथम

तरंग में महिलाओं ने अपने मौलिक अधिकार तथा समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक अधिकारों के प्रति जागृत हुई, काफी हद तक उन्हें सफलता भी मिली। हम देखते हैं कि नारीवाद के प्रथम स्तर पर महिलाओं को मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ। जॉन स्टुअर्ट मिल के शब्दों में "Men as well as women do not need Political right in order that they may govern but in order that they may not be misgoverned."[1] जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1918 (Representation of the People Act, 1918) इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल थी। इसके अलावा बेटी को अपने पैतृक संपत्ति में बराबर का अधिकार भी प्राप्त हुआ। खासकर प्रथम-तरंग नारीवाद की उपलब्धि महिलाओं के मतदान का अधिकार था। इस समय स्त्री-शिक्षा के विकास के फलस्वरूप पाश्चात्य में कई लेखिकाओं का आगमन होता है।

चर्चित पुस्तक 'A Vindication of the Women' (1790) की लेखिका मैरी वुलस्टोनक्राफ़्ट (Mery Wollstonecraft) ने अपनी इस पुस्तक में स्त्री-अधिकार (Women Rights) तथा नारी के आत्म-परिचय (SelfIdentity) पर गंभीर चर्चा की हैं। इस समय के अन्य नारीवादी रचनाकारों में से जॉन स्टुअर्ट मिल (1806), लुसी स्टोन (Lucy Stone), Estelle Sylvia Pankhurst (1882), Nellie Mc Clung, Voltairinede Cleyre (1866), Margaret Sanger (1879) आदि ने स्त्री-अधिकार संबंधी मुद्दों को अपने लेखन के जरिए मुखरता से उठाया।

नारीवाद के रूप में दूसरा महत्त्वपूर्ण आंदोलन (स्त्री विमर्श का दूसरी तरंग) 1960 से 1980 तक माना जाता है। जैसे-जैसे विमर्श बढ़ता गया स्त्रियों में दृष्टिकोण के साथ अपनी अधिकारों के प्रति सतर्क दृष्टि बनती गई। सामाजिक, आर्थिक चुनौतियों के साथ विचारधारा एवं राजनीतिक विसंगतियों ने स्त्री को खुद के विषय में सोचने को मजबूर कर दिया। पश्चिमी दार्शनिक एलिसन जैगर कहती हैं- "दुनिया को तौलने का पुरुषोचित नजरिया है। हालांकि कुछेक दार्शनिक जैसे प्लेटो, जॉन स्टुअर्ट मिल एवं मार्क्स ने स्त्री-पुरुष को समकक्ष रखने की चेष्टा की किन्तु इनमें से अधिकतर दार्शनिक अरस्तू, कांट,

[1]यादव,डॉ.जैनेन्द्र.(2011).नारी सशक्तिकरण : दशा एवं दिशा.पृ.161

हीगेल, और नित्शे को स्त्री जाति की बौद्धिक और तार्किक क्षमता पर गहरा संदेह था।"[1] ऐसी स्थिति में महिलाओं के मतदान के अधिकार ने उन्हें समानता की राह दिखाई। नए वामपंथियों (New Leftist) के आगमन से स्त्री-स्वर अधिक उग्र होता गया।

विशेषकर विमर्श के इस अनुच्छेद में जाति एवं लैंगिक प्रश्नों को सतर्क दृष्टि से समझा गया। जमीनी स्तर पर आंदोलन तीव्र होता गया। अमेरिका में सन् 1968-69 को हो रही मिस अमेरिका प्रतियोगिता को खुले स्तर पर 'Cattel Parade' (पशु-परेड) कहकर आलोचना की गई। नारीवादियों का मानना था कि इस प्रकार की प्रतियोगिता में नारी को एक भोग्य वस्तु के रूप में स्थापित किया जाता है। यही पितृसत्तात्मक समाज का षडयंत्र है।

हम देखते हैं कि विमर्श के प्रारंभिक दौर में जहां पाश्चात्य के लगभग विकसित देशों की महिलाओं ने हिस्सा लिया वैसे दूसरे दौर तक आते-आते विकसित राष्ट्रों के साथ-साथ विकासशील देशों की महिलाओं ने भी इन आंदोलनों में अपनी सहभागिता दर्ज की। खासकर इस समय स्त्री-समस्या, संघर्ष आदि को वर्ग संघर्ष के रूप में देखा गया।

इस समय की स्त्रीवादी रचनाकारों में से 'Kete Millett' काफी चर्चित हैं। उनकी पी.एच.डी शोध-प्रबंध का संशोधित रूप 'Sexual Politics' पुस्तक एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। Garmaine Greer की पुस्तक 'The Female Euanch', SheilaRowbotham's की किताब 'Women's Leberation and new Politics' तथा Virgini Woolf की पुस्तक 'A Room of One's Own' आदि इसी कालखंड की स्त्री-विमर्श पर केन्द्रित महत्वपूर्ण बौद्धिक रचना है।

विमर्श के द्वितीय-तरंग नारीवादी उद्देश्य की पूर्ति के उपरांत तृतीय-तरंग स्त्रीवादी विमर्श का अभ्युदय हुआ। इसका आरंभ नब्बे के दशक के प्रथमार्द्ध में होता है। प्रारंभिक दौर में नारी की आजन्म मृत्यु, संघर्ष तथा विशेष रूप से देह संबंधी विचार एवं यौन जीवन पर विमर्श ने स्त्री को नई दृष्टि दी। इस

[1]यादव, डॉ.जैनेन्द्र.(2011). नारी सशक्तिकरण : दशा एवं दिशा. पृ.29

समय के स्त्री-वादी विचार-विमर्श को कई आलोचक उत्तर आधुनिक नारीवाद (Post Modernist Feminism) भी कहते हैं। पुरुष विरोधी मानसिकता ने इस तरंग को काफी प्रोत्साहित किया है।

इस समय के महत्वपूर्ण नारीवादियों में Luce Irigaray (1930), Gloria E. Anzaldua (1940), Maxine Hong Kingston (1940), Julia Kristeva (1941) आदि के नाम उल्लेखनीय है। 21वीं सदी ने पुनः स्त्री-वादी स्वर और अधिक मुखर किया है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, मीडिया के प्रसार-प्रचार के साथ ही नारीवादी विचारधारा में परिवर्तन हो रहे हैं। कई आलोचक इसे चतुर्थ-तरंग स्त्री-वादी विमर्श के रूप में भी व्याख्यायित करते हैं। TheVagenda (2012) पत्रिका के माध्यम से Holly Baxter Lucy, Rhiannon Lucy, Crosslett आदि ने स्त्रीवादी चिंतन के स्वरूप में काफी परिवर्तन महसूस किया। स्त्री-विमर्श के इसी प्रगतिशील प्रवृत्ति ने नारीवाद के विविध स्वरूप को और अधिक विस्तृत तथा व्यवस्थित किया है। जैसे – सांस्कृतिक नारीवाद, उदारवादी नारीवाद, पर्यावरणीय नारीवाद, समतामूलक नारीवाद, मार्क्सवादी/समाजवादी नारीवाद, समलैंगिक नारीवाद, विखंडनवादी नारीवाद, आध्यात्मिक नारीवाद, भौतिक नारीवाद आदि। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पाश्चात्य के बौद्धिक विचारकों ने हमेशा स्त्री विषयक मुद्दों को गंभीरता से लेते हुए उसे सकारात्मक दिशा देने का कार्य किया है।

2.1.2 भारतीय संदर्भ :

भारतीय वाङ्मय चेतना में नारी आरंभिक काल से ही देवी, शक्ति, माता आदि के रूप में सम्मानीय रही है। यद्यपि भारतीय संस्कृति में स्त्री को हमेशा से उच्च स्थान का दर्जा प्राप्त दिखाया जाता रहा है लेकिन इसकी आड़ में वह पुरुषवादी मानसिकता एवं उसके दंश की शिकार रही है। वैदिक युग से पूर्व स्त्री को सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, पार्वती, काली आदि रूपों में प्रतिष्ठित स्वीकार किया जाता रहा है। पुराणकाल में कई परिवर्तन हुए हैं। इस समय स्त्रियों के लिए एक स्वतंत्र परिधि बननी आरंभ हो गई। इस दौर में भी स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखता। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसकी पराधीनता की जकड़न एवं दीवारें और मजबूत होती गई। आरंभ से से ही वह पुत्री, बहन, पत्नी एवं माँ की चारदीवारी तक सिमटकर रह गई। वेदों में लिखा गया है-

" कार्येषु मंत्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रंभा ।

धर्मानुकूला क्षमया धारित्री, भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा।।"

कार्य प्रसंग में मंत्री, गृहकर्म में दासी, भोजन कराते समय माता, रति प्रसंग में रंभा, धर्म में सानुकूल, और क्षमा करने में धारित्री ; इन छह गुणों से युक्त पत्नी मिलना दुर्लभ है।"[1] अर्थात् अलग-अलग कार्यों के लिए स्त्री की भिन्न-भिन्न छवि बनती चली गई। तैत्तिरीय संहिता तथा मैत्रायणी संहिता आदि में भी नारी को अधम, मिथ्यावादी, नशा, पुरुषों से हीन, भाग्यहीन आदि के रूप में चित्रित किया गया है। वेदों में यद्यपि लोपामुद्रा, मैत्रयी, गार्गी, ममता, अपाला, घोषा, शची, विश्ववारा आदि ने ऋचायें लिखीं। वेदों में जितनी भी स्त्री-विषयक ऋचायें मिलती हैं, लगभग सबमें दर्शन, प्रेम, रति सुख या सौंदर्य-वर्णन मुख्य विषय रहा। "वैदिक साहित्य में स्त्री-धन का उल्लेख नहीं है, जो आगे के धर्मशास्त्रों में बहुत पाया जाता है। इसका कारण शायद यह हो कि इस युग की स्त्री इतनी अबला नहीं हुई थी कि धर्म विधायकों को उनकी चिंता करनी पड़ती। कुछ भी हो ऋग्वेद की तरह अथर्ववेद में लड़कियों को पिता की जायदाद का कोई हिस्सा नहीं मिलता। इस दृष्टि से देखा जाए तो स्त्री स्वावलंबी न होकर पुरुष

[1] http://susanskrit.org/2010-05-25-13-59-22/1042-2010-05-27-10-16-32.html

पर आश्रित थी।"[1] नियोग प्रथा के आगमन से स्त्री को धीरे-धीरे वस्तु के रूप में देखा जाने लगा था। सबसे चर्चित एवं सबसे विवादास्पद 'मनुस्मृति' के अनुसार 'स्त्री' समाज के सबसे निचले पायदान पर है। स्त्री के लिए स्वतंत्रता का कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार की विचारधाराओं से समाज में स्त्री और अधिक उपेक्षित होती गई।

हम देखते हैं जैन धर्म में स्त्री को भोग्या के रूप में स्वीकारा गया। नारी निंदा के साथ वासना के मूल में स्त्री होने के कारण उसे त्यागने का उपदेश दिया जाता था। बावजूद इसके जैन धर्म में स्त्री-शिक्षा को बल मिला है। इस प्रकार बौद्धकाल के आरंभिक समय मेंबौद्ध धर्म चिंतन या अन्य सामाजिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों में स्त्रियों के लिए कोई जगह नहीं थी। परंतु कालांतर में यह प्रथाएं टूटीं एवं गौतमी, गणिका आम्रपाली आदि ने संघ में प्रवेश किया। इस दौर की महिलाएँ खुलकर विचार-विमर्श कर सकती थी। इसका तार्किक प्रमाण थेरीगाथा में मिलता है। थेरीगाथा स्त्री स्वाधीनता को अभिव्यक्त करने वाला महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। "बौद्ध काल में थेरीगाथाओं में महिलाएँ खुलकर स्त्री स्वतंत्रता की चर्चा करती हैं। भगवान बुद्ध की समकालीन भिक्षुणियों के जीवनानुभव उनकी अपनी वाणी में अभिव्यक्त हुए हैं। पुरानी मान्यताओं की परवाह किए बगैर ये महिलाएँ भगवान बुद्ध की शरण में आने की हिम्मत दिखा सकीं। अपने अंतर्मन की भावनाओं की खुली अभिव्यक्ति सामने रख सकीं। अबला समझी जाने वाली नारी का क्रांतिकारी रूप इसमें मौजूद है।"[2]

समय तथा परिवेश के साथ मनुष्य की दृष्टियाँ भी बदलती रहती हैं। मौर्य शासन के समय, लगभग शक और कुषाण काल तक नारी की स्थिति मध्यम रही। कालिदास के साहित्य से पता चलता है कि उस समय स्त्री गृहस्वामिनी, परामर्शदात्री के रूप में प्रतिष्ठित थी। स्वयंवर प्रथा प्रचलन में था। गुप्त काल में स्त्री अपनी स्वतंत्रता तो प्राप्त की, किंतु विलासिता की वस्तु बन गई। हर्षवर्धन के समय तक स्थितियों में आंशिक परिवर्तन आया, इस समय स्त्रियों को शिक्षा के साथ-साथ राजनीतिक, धार्मिक

[1] सिंह, डॉ. वी. एन & सिंह. डॉ.जनमेजय.(2012).नारीवाद.पृ.37

[2] मालती, डॉ. के. एम. (2010). स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य. पृ.9

अधिकारों को संबल मिला। यह भी सत्य है कि इस समय बाल-विवाह, पुनर्विवाह, जौहर प्रथा आदि के साथ स्त्रियाँ सामाजिक स्तर पर दमित थी।

मध्य युग का प्रारंभिक समय स्त्रियों के लिए संघर्षपूर्ण रहा। ब्राह्मणवाद ने अपनी नीति और नियमों को और अधिक कठोर बना दिया। इस समय सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, जौहर अपने चरम पर पहुँच गया था। ऐसी स्थिति में तत्कालीन संतों ने आवाज उठाई जिनमें रामानंद, नानक, चैतन्य, रैदास, मीरा और दक्षिण के आलवार भक्तों में आण्डाल, अक्कमहादेवी तथा महाराष्ट्र के चक्रधर स्वामी, मुक्ताबाई, जनाबाई, बहनाबाई, अहल्याबाई आदि प्रमुख हैं। इसलिए भारतीय स्त्रियों की सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक इतिहास से गुजरते हुए इन चिंतकों को प्रमुखता से स्मरण किया जाता रहा है।

अठारहवीं सदी के अंतिम चरण में आधुनिक भारतीय नवजागरण का उन्मेष हुआ। भारतीय राजनीति के इतिहास में मुगल शासन का पतन तथा अंग्रेजों का भी अभ्युदय इसी दौर की देन है। इस समय समाज में अंधविश्वास के साथ स्त्री की स्थिति दयनीय रही। छुआछूत, बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों से मुक्त होने के लिए सामाजिक सोच में बदलाव की जरूरत थी। इसी समय राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ताराबाई शिंदे, स्वामी दयानंद सरस्वती, महादेव गोविंद रानडे, श्री नारायण गुरु, बहरामजी मलबारी आदि ने समाज को सही दिशा देने में अपनी महती भूमिका निभाई। राजा राममोहन राय ने समाज में स्त्री शिक्षा, वैज्ञानिक चेतना का प्रसार, मानववादी चिंतन को प्रश्रय, अंधविश्वासों का निर्मूलन, बाल विवाह एवं सती प्रथा के विरुद्ध विद्रोह सहित विधवा विवाह पर ज़ोर दिया। हम कह सकते हैं कि आधुनिक भारत में स्त्री मुक्ति के प्रसंग पर सोचने वाले राजा राममोहन राय ही पहले व्यक्ति रहे हैं।

भारतीय नवजागरण के समय में स्त्रियों के प्रति समाज का नजरिया धीरे-धीरे बदलता गया। ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, शारदा देवी, विवेकानंद, पेरियार रामस्वामी नायकर, महात्मा गांधी, बाबा साहब अंबेडकर आदि के विचारों में स्त्री का बौद्धिक और सामाजिक स्थान निश्चय ही उच्च रहा। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद गांधीजी के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन के जरिए सरोजिनी नायडू, दुर्गाबाई

देशमुख, कमलादेवी चट्टोपाध्याय जैसी स्त्रियों की उपस्थिति ने उनके अंदर प्रतिरोध करने आत्मबल का साहस बहरने का कार्य किया। अंबेडकर के विचारों से भी स्त्री मुक्ति की दिशा और सुदृढ़ हुई। मनुस्मृति के स्त्री विरोधी नीति और आदर्श के विरुद्ध अंबेडकर कहते हैं – "ये विचार भारत के स्त्रियों के लिए अपमानजनक और उन्हें मानसिक चोट पहुंचाने वाले हैं। चोट करने वाला इसलिए कि ज्ञान प्राप्त करने के स्त्री के अधिकार को यहाँ रोका गया है जो कि अन्याय है। स्त्री को संन्यास लेने से रोककर उसकी आध्यात्मिक क्षमता पर प्रश्न चिन्ह लगाया। यह स्त्रियों के प्रति ब्राह्मणों का अत्याचार है।"[1] केवल कथनी में नहीं अंबेडकर ने भारतीय संविधान एवं हिन्दू कोड बिल के माध्यम से स्त्री-पुरुष के समानाधिकारों को स्थापित करने का भरपूर प्रयास किए। इसी संघर्ष में उनको मंत्री मण्डल से त्यागपत्र भी देना पड़ा था। उनके द्वारा स्त्री एवं दलितों के लिए उठाए गए कदमों ने वर्तमान समय की स्त्री एवं दलित चेतना को काफी प्रभावित किया है। कहने का आशय यह है कि इसी समय से भारतीय परिदृश्य में स्त्री-विमर्श को आधुनिक दृष्टिकोण एवं नया आयाम मिला।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में बीसवीं सदी का उत्तरार्ध स्त्री विमर्श के संदर्भ में खास महत्व रखता है। दरअसल भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसी दौर में स्त्री विषयक मुद्दों को विमर्श की शक्ल में देखने का सजग प्रयास किया गया। व्यापक साक्षरता आंदोलन तथा सूचना संचार की क्रांति में स्त्री अधिक सजग हुई। समकालीन भारतीय स्त्री विमर्श के अवधारणा को समझने के लिए भारतीय महिला लेखन को जानना जरूरी है। अस्सी का दशक समकालीन विमर्शों का दशक है। स्त्री लेखन एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह दशक अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस समय की रचनाएँ अपनी अस्मिता का अन्वेषण करती हुई स्त्री संबंधी पुरानी रूढ़ियों एवं मान्यताओं के खिलाफ विद्रोह करती हैं। हिंदी साहित्य में मीरा, महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मृणाल पांडे, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, कात्यायनी, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, नमिता सिंह आदि रचनाकारों ने इसे सार्थक दिशा देने का भरपूर प्रयास किया। इसी प्रकार ओड़िया साहित्य में ब्रंहोत्री महान्ति, प्रतिभा शतपथी, मनोरमा विश्वाल महापात्र, अपर्णा महांति, सुचेता मिश्र, सुनीति मुंड आदि का नाम भी प्रमुखता से लिया जा

[1] मालती, डॉ. के. एम. (2010). स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य. पृ.50

सकता है। मलयालम साहित्य की राजलक्ष्मी, सरस्वती अम्मा, पी. वत्सला, चंद्रमती, ललितांबिका आदि का भी इस दिशा में सार्थक हस्तक्षेप रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राजनीति, प्रशासन, वाणिज्य प्रबंधन आदि में स्त्रियों ने अपनी क्षमताओं का परिचय दिया है। बावजूद इसके ऐसी महिलाओं का प्रतिशत ज्यादा नहीं है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद आदि के कारण स्त्री आज भी संघर्ष तथा तमाम जद्दोजहद से गुजर रही है।

2.2 स्त्री-विमर्श की कसौटी पर समकालीन हिंदी कविता :

समकालीनता की अवधारणा अत्यंत जटिल तथा व्यापक है। अंग्रेजी में इसे 'कंटेंपोरेनिटी' (Contemporaneity) कहते हैं। वर्तमान संदर्भ में समकालीनता शब्द आधुनिकता शब्द के निकटस्थ है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता या आधुनिक हिंदी कविता की शुरुआत भारतेन्दु युग से स्वीकार की जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीति में परिवर्तन का माहौल दिखाई देता है। भारत-चीन युद्ध, सूखा, बाढ़, बेरोजगारी, संयुक्त परिवारों का विघटन, अकाल आदि की विभीषिकाओं ने जनता में असंतोष पैदा कर दिया। लोकतंत्र के साथ मौलिक अधिकारों का हनन का प्रमाण तत्कालीन साहित्य में देखने को मिलता है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं समकालीनता एक युगबोध है, जिसमें एक विचार दृष्टि है, अपने समय के इतिहासबोध से तटस्थ प्रेम की। कई आलोचक समकालीनता और तात्कालिकता शब्द में भेद देखते हैं। वह मानते हैं कि प्रत्येक रचनाकार और उसकी रचना समकालीन होती है, परंतु रचना में दूरदृष्टि न होने पर वह रचना केवल तात्कालिकबोध तक सीमित होकर रह जाती है।

समकालीन हिंदी कविता के सीमांकन को लेकर काफी मतभेद है। 80 के दशक के बाद की कविता को हम समकालीन कविता की दृष्टि से देख सकते हैं। कई आलोचक नई कविता के उत्तरार्ध से समकालीन हिंदी कविता का आरंभ मानते हैं। ए. अरविंदाक्षन के अनुसार- " समकालीनता का उत्स निराला से माना गया है।" तो अरुण कमल के अनुसार "समकालीन कविता से यहाँ आशय कवियों की

उस पीढ़ी की कविताओं से है, जिसने अपनी आँख से निराला को नहीं देखा। जिसने निराला को केवल पढ़कर देखा-जाना। जिसने उन लोगों को देखा जिन्होंने निराला को देखा था।" करुणाशंकर उपाध्याय के लिए समकालीन कविता से आशय आपातकाल के बाद की कविता से है। मोटे तौर पर अधिकांश विद्वानों ने स्वाधीनता के बाद विशेषतः साठोत्तरी कविता से समकालीन हिंदी कविता की पृष्ठभूमि को स्वीकार किया है। अजय तिवारी उसे 1970 के बाद लिखी गई कविता मानते हैं।"[1] इस प्रकार तमाम मतभेदों के साथ समकालीन कविता का सीमांकन करना जटिल है।

"समकालीन हिंदी कविता विकासशील, चेतनाशील, संघर्षशील, रागात्मक बोध से संपन्न, वैचारिक धरातल पर जीवंत, अंतर्द्वन्द्वों से जूझने वाली मनःस्थिति की कविता है जो प्रयोगशील, प्रगतिशील अस्तित्ववादी, अकवितावादी, युयुत्सावादी, प्रतिबद्ध कवियों को जाग्रत ही नहीं करती बल्कि सृजनात्मक रचनात्मक कार्यों के लिए प्रेरित भी करती है।"[2] यह कहना उचित नहीं होगा कि स्त्री विमर्श के संदर्भ में समकालीन हिंदी कविता की समृद्ध परंपरा रही है। हाँ यह जरूर है कि हम निराला की 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं को स्त्री विमर्श की दृष्टि से देख सकते हैं। यह कविता सामंतवादी पितृसत्तात्मक मूल्यों के विरुद्ध एक विद्रोह है, एक स्त्री अपने अस्तित्व के प्रश्नों को खंगाल रही है। मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' तथा दिनकर की 'उर्वशी' जैसीकविता भी इसी श्रेणी में रखी जा सकती है। गद्य लेखन में महादेवी वर्मा ने विशेषकर उनके रेखाचित्रों में वह एक आन्दोलनधर्मी स्त्री-मुक्तिवादी चिंतन को उजागर करती हैं। 'शृंखला की कड़ियाँ' में स्त्री-मुक्ति संबंधी धारणा समकालीन हिंदी स्त्री-मुक्ति आंदोलन से काफी पहले देखने को मिल जाती है। तार सप्तक परंपरा में भी स्त्री-विषयक रचनाएं हुई हैं। शकुंत माथुर, कीर्ति चौधरी आदि की कई कविताओं में स्त्रीवादी दृष्टि चित्रित है।

अनामिका ने समकालीन स्त्री कविता के सीमांकन को लेकर कहती हैं – "हिंदी स्त्री कविता का भी वीरगाथाकाल बहुत देर से आया। यह आया 1990 के बाद जब एक साथ बहुत सारी स्त्रियाँ अपनी जगह से उखड़कर महानगर में आईं -गठरी-मुटरी समेत हर वर्ग, हर नस्ल, हर जाति-धर्म की स्त्रियाँ"[3]

[1] श्रीवास्तव, डॉ.सविता. (2014). समकालीन कविता की समझ. पृ. 16

[2] शर्मा, डॉ. श्यामबाबू. (2014). भूमंडलीकरण और समकालीन हिंदी कविता. पृ. 82

[3]अनामिका, (2015). बीसवीं सदी का हिंदी महिला-लेखन. (खंड-2). पृ. 37

समकालीन स्त्री को स्व की चेतना ने विमर्श की सोच दी। लगभग 70 के दशक के उत्तरार्ध से हिंदी साहित्य में सचेतन विमर्शमूलक स्त्री लेखन की परंपरा को नया आयाम मिला। वैश्विक पटल पर चल रहे विमर्श का प्रभाव निश्चित तौर पर समकालीन हिंदी की स्त्री-कविता आंदोलन पर पड़ा है। विशेषकर स्त्री लेखन की परंपरा को नया मोड़ मिला। ममता कालिया के शब्दों में कहें तो -

"अब और नहीं सहेगी

खाँटी घरेलू औरत

पिछली पांत में खड़ी नहीं रहेगी

जाएगी सिविल लाइंस....

नहीं पहनेगी वह अब

मोटी हैंडलूम साड़ियाँ "[1]

स्त्री मुक्ति के प्रसंग में श्रम एवं देह संबंधी स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया जाता है। पश्चिमी विचारधारा (पावर वूमेन) से प्रभावित आधुनिक स्त्री की स्वतंत्र दृष्टि पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जकड़न में रह जाती है। दिन भर ऑफिस में काम करने के बाद भी पुरुष की नजर में उनके श्रम का कोई मूल्य नहीं होता। नीलेश रघुवंशी लिखती हैं-

"सुबह दस से शाम पाँच तक

फाइलों को लेकर चढ़ती-उतरती

बाँस की खिड़कियों से गुजरती

रहती है उदास

गिनती है दिन

[1]शर्मा, डॉ. श्यामबाबू. (2014). भूमंडलीकरण और समकालीन हिंदी कविता. पृ. 316

तनख़्वाह मिलने के

स्वप्न और दुःस्वप्न के चलते

बनेगी वह माँ

फाइलों को लेकर चढ़ते-उतरते "[1]

स्थानीयता से निकलकर एक स्त्री का जो वैश्विक रूप सामने आया है, उसमें स्त्री की दशा और समस्या शामिल है। वस्तुतः इसे समकालीन हिंदी स्त्री कविता में नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। समकालीन हिंदी कविता के पूर्व कई महत्त्वपूर्ण कवियों ने अपनी कविताओं में स्त्री विषयक मुद्दों को उठाया है। रघुवीर सहाय जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में स्त्री समस्याओं को विशेष स्थान दिया है। स्त्री के प्रति करुणा से लैस संवेदनशील दृष्टि यथोचित न्याय नहीं दे पाती है। उनकी कविताओं में कोरी भावुकता न होकर, एक संवेदनात्मक दृष्टि है। वह मानते हैं कि युगीन रूढ़ियाँ स्त्री शोषण के लिए जिम्मेदार हैं। उनके प्रति अपना विरोध उनकी 'नारी' कविता में देखा जा सकता है। वह लिखते हैं -

"नारी बिचारी

पुरुष की मारी

तन से क्षुधित

मन से मुदित

लपककर झपक कर

अंत में चित है।"[2]

आलोक धन्वा समकालीन हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी मशहूर कविता 'भागी हुई लड़कियां'(1988) स्त्री विमर्श की दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। शीर्षक में ही कई सारे रहस्य और

[1]शर्मा, डॉ. श्यामबाबू. (2014). भूमंडलीकरण और समकालीन हिंदी कविता. पृ.314

[2]अरविंदाक्षन,ए. (2018).समकालीन हिंदी कविता. पृ.38

उसके पीछे के कारणों को समेटा गया है। स्त्रियों की गारिमामयी उपस्थिति एवं अस्तित्व के सवालों को कविता अपने तेवर के साथ प्रस्तुत करती है। समकालीन समाज में व्याप्त नैतिकता के नाम पर रूढ़िवादी मानसिकता को कवि तोड़ने का प्रयास करता है। कविता में कई पंक्तियां ऐसी हैं जो पाठक को झकझोरने एवं सोचने को विवश कर देती हैं। जैसे –

"अगर एक लड़की भागती है

तो यह हमेशा जरूरी नहीं है

कि कोई लड़का भी भागा होगा

कई दूसरे जीवन प्रसंग है

जिनके साथ वह जा सकती है

महज जन्म देना ही स्त्री होना नहीं है…

कितना आतंकित होते हो

जब स्त्री बेखौफ भटकती है

ढूंढती हुई अपना व्यक्तित्व

एक ही साथ वेश्याओं और पत्नियों

और प्रेमिकाओं में।"[1]

'ब्रूनो की बेटियाँ' कविता आलोक धन्वा की चर्चित कविताओं में से एक है। ब्रूनो सोलहवीं सदी के महान इतालवी दार्शनिक थे। उन्होंने चर्च की धार्मिक रूढ़ियों को चुनौती दी और कोपरनिकस की स्थापना (ब्रम्हांड के केंद्र में सूर्य है) का समर्थन किया, इसीलिए उन्हें सन 1600 में इसाई धर्म न्यायालय के आदेश पर जिंदा जला दिया गया। बाद में इसी वैज्ञानिक चेतना को गैलीलियो आगे बढ़ाते

[1]धन्वा, आलोक (2014). दुनिया रोज़ बनती है. पृ.43-45.

हैं। आलोक धन्वा समसामयिक समाज में एक स्त्री को गैलीलियो की उस दूरबीन से देखते हैं। सत्य की पड़ताल करते हैं, और पूछते हैं समाज के रूढ़िवादी पितृसत्ता से –

"तुम कभी नहीं चाहते कि

पूरी दुनिया उस गाँव में आये

जहाँ उन मज़दूर औरतों की हत्या की गयी ?

किस देश की नागरिक होती हैं वे

जब उनके अस्तित्व के सारे सबूत मिटाये जाते हैं...

क्या सिर्फ़ जीवित आदमियों पर ही टिकी है

जीवित आदमियों की दुनिया?"[1]

समकालीन युवा कवि हरेप्रकाश उपाध्याय की कवितायें उनको एक सहज एवं संवेदनशील कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। उनकी कई कविताओं में पूंजीवाद एवं खोखली संस्कृति के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना प्रतिविंबित है। स्त्री विमर्श की बदलती स्थिति पर 'औरतें', 'एक लड़की', हमारे गाँव में लड़कियां','बॉस और बीवी' जैसी कविताएं हमें सोचने पर मजबूर कर देती है। इसी प्रकार कवि अरुणश्री की कविताओं ने समकालीन स्त्री परिदृश्य को समृद्ध किया है। स्त्री विमर्श को एक क्रांतिकारी रूप में 'मेरी गवाहियाँ' कविता में वह लिखते हैं –

"एक विद्रोही लड़की है जो सरकार के कब्जे में है !

किसी सैनिक-कानून की बपौती है उसके पाहाड़ों की आबरू !

नाक में जबरन घुसेड़ी गई नली कम दर्दनाक नहीं है-

किसी न साबित हुए बलात्कार से, पर न्यायिक प्रक्रिया है !

[1]धन्वा, आलोक. (2014). दुनिया रोज़ बनती है. पृ. 57-58

कोई नया फैशन होगा-

लड़कियों के नंगे जिस्म पर लिखा सेना के विरुद्ध नारा !"[1]

कई कवितायें ऐसी हैं जहां कवियों ने नारी के सत्व विघटन को अनुभव किया है। यह कवितायें सहानुभूति की कविता नहीं बल्कि एक भ्रष्ट परंपरा को चुनौती देती कविता है, जिसका मुख्य प्रतिपाद्य मानवीय सरोकार है। स्त्री समस्या भी मानवीय सरोकार का उदात्त पक्ष है जिसमें वह शोषण तंत्र जैसी सांस्कृतिक स्थितियों के विरुद्ध आवाज उठा सके। इस संदर्भ में कवयित्रियों की कविताओं में एक महत्वपूर्ण विशेषता यह देखने को मिलती है कि उन्होंने स्वीकृत स्थितियों के कई प्रकार के आवरणों को तोड़ने का कार्य किया। मुख्यतः पौराणिकता के आवरण को तोड़ते समय उन्होंने बदलते स्वर के साथ स्वत्व की खोज की एवं मिथकीय संदर्भों को रोजमर्रा की ज़िंदगी से जोड़ने का प्रयास किया। ज़्यादातर शकुंत माथुर, स्नेहमयी चौधुरी आदि की कविताओं में यह विशेषता देखने को मिलती है। शकुंत माथुर की कविता 'मैं इतनी कमजोर क्यों हूँ' कविता में हम देख सकते हैं, एक स्त्री अपनी अस्मिता के तलाश में है जिसमें स्त्री की चाह है, आशा है और साथ में निराशा और दर्द भी। निश्चित रूप से एक विराट सत्य को समझने का विमर्श है -

" मैं वनस्पति सी क्यों नहीं हो जाती हूँ

जो पत्ते-पत्ते में विहंसती है

फूलों में सिहरती है

फलों में भरती है

नाचे जहाँ-जहाँ रस मिलता है

जहाँ-जहाँ रस छनता है।"[2]

[1]देव, राहुल. (2018). हिन्दी कविता का समकालीन परिदृश्य. पृ. 127

[2]अरविंदाक्षन.ए.(2018).समकालीन हिंदी कविता.पृ.123

समकालीन कविता अंतर्विरोधों की कविता है। स्वतंत्रचेता मनुष्य के पक्ष में विश्वास की कविता है। अस्पृहणीय संस्कृति के विरुद्ध क्रांति की कविता है। कहने का आशय समकालीन कविता एक कठिन समय गुजरती, संघर्ष करती प्रतिध्वनि है। समकालीन स्त्री कविता इस अवधारणा से अलग नहीं है। वर्तमान समय में भी एक स्त्री अपने पारिवारिक दायित्वों से मुक्त नहीं हुई है। यहीं से उसकी पराधीनता का चित्र स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भाषा के क्षेत्र में कविता स्पष्ट और यथार्थवादी है। राजेश जोशी की 'रैली में स्त्रियाँ', भागवत रावत के 'थक चुकी है वह' और 'कचरा बीनने वाली लड़कियाँ' आदि कविता इसी यथार्थ को द्योतित करती है। इसी प्रकार युवा कवि बोधिसत्व की कविता 'वहाँ औरतें' में एक औरत की वास्तविक समस्या एवं संघर्ष को रेखांकित किया गया है–

"वहाँ औरतें, लड़ रही हैं

कर रही हैं विलाप, बच्चों की खातिर

जो चले गए हैं कहीं

वहाँ औरतें

बहा और पोंछ रही हैं आँसू।"[1]

समकालीन स्त्री कविता में जीवन दर्शन के मूल प्रस्थान बिंदु मुक्ति का संघर्ष एवं जागरण है। इस समय की लगभग स्त्री विषयक कविताओं में सामाजिक जीवन की गतिहीनता के विरुद्ध एक स्त्री की मानवीय आकांक्षा शब्दबद्ध है। कविताओं में यथार्थबोध के साथ एक सूक्ष्म संवेदना है, जिसमें प्रतिरोध और आत्ममुग्धता के निमंत्रण का स्वर दिखाई पड़ता है। स्त्री मुक्ति के प्रसंग की कविताओं में मृत्यु चेतना के बीच एक स्त्री अपने असहायबोध को रेखांकित करती है। कात्यायनी की कई कविताओं में मृत्यु चेतना के स्वर मुखर रूप में अभिव्यक्त हुए हैं-

[1]अरविंदाक्षन.ए.(2018).समकालीन हिंदी कविता. पृ. 119

"ज़िंदगी की सरहदों में

लपलपाती रहती हैं

अग्नि की लाल लाल जिह्वाएँ

मृत्यु में ही मुक्ति

देखती है स्त्री।...

मृत्यु प्रदेश में प्रवेश के पूर्व

एक बार पीछे मुड़कर देखती है स्त्री

जीवन की ओर"[1]

समकालीन हिंदी (स्त्री विषयक) कविता में भाषा एवं शब्दगत सामर्थ्य विमर्श के तमाम प्रश्नों को बल देता है। व्यंग्यात्मक एवं संकेतात्मक शैली में लिखी गई यह कविता एक स्त्री की वास्तविक स्थिति को दोनों की दृष्टियों से समझाने का प्रयास करती है। कई कविताओं में समाज में एक स्त्री को देखने का नजरिया उस समय की कविताओं में साफ झलकता है। कवि व कवयित्रियों की भाषाओं में तत्कालीन मनःस्थिति स्पष्ट होती है। पुरुषवादी समाज में रह रही एक नारी के दुःख-दर्द को चित्रित करने के साथ उनकी शारीरिक एवं मानसिक व्यथा को कवि देवी प्रसाद मिश्र अपनी कविता 'औरतें यहाँ नहीं दिखतीं' में रेखांकित करते हैं। वह लिखते हैं –

"औरतें यहाँ नहीं दिखतीं

ये आटे में पिस गयी होंगी

या चटनी में पुदीने की तरह महक रही होंगी

गृहास्थाश्रम की झाड़ू बनकर

[1]अरविंदाक्षन. ए. (2018). समकालीन हिंदी कविता. पृ. 125

अंधेरे कोने में खड़े होकर"[1]

समकालीन हिंदी कविता ने जीवन की सच्चाइयों और विडंबनाओं को अभिव्यक्ति दी है। पुराने समय में वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री की नैतिकता पर जिन मानदंडों का उपयोग हुआ, वह निश्चित ही निराशाजनक है। आज के संदर्भ में एक स्त्री को अपनी बात रखने के लिए जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, उसे केवल एक स्त्री ही व्यक्त कर सकती है। उसके पास जो बोलने का अधिकार है, वह भी हनन हो रहा है। नैतिकता के नाम पर स्त्री को एक लंबे समय से छलने का स्वांग रचा जाता रहा है। हाँ, यह जरूर हुआ है कि अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक की सलाह पर दुनिया के लगभग देशों ने जो उदारीकरण व्यवस्था लागू की हैं, उससे स्त्री की एक वैश्विक छवि उभरकर सामने आई। बावजूद इसके स्त्री का एक तबका भूमंडलीकृत बाजारवाद का शिकार हो गया। समकालीन स्त्री कविता इस चित्र को बेहद सटीक ढंग से चित्रित करने में समर्थ है। नीलेश रघुवंशी लिखती हैं –

"चमचमाती कार में रंगीन चश्मा, हाथ में मोबाइल

लकदक कपड़ों में नाचती गातीं

खूबसूरत लड़कियां झाँसे में आकर, बनती हैं वो

सोचती भी नहीं जिसके बारे में दूर-दूर तक"[2]

उक्त कविता में यथार्थबोध एवं एक स्त्री की विडम्बना का जीवंत चित्र खिचा गया है। समकालीन कविता वास्तव में अंतर्द्वन्द्व की कविता है। निर्मला पुतुल की कविता 'चुड़का सोरेन से' में बाजारवाद की उपस्थिति एक स्त्री की मनःस्थिति पर कैसे प्रभाव डालती है; वर्णित है। समकालीन स्त्री कविताओं में केवल विद्रोह और संघर्ष नहीं है, साथ में है विश्वास; अपनी अस्तित्व को पहचानने का। उनमें प्रेम की सरिता है, साथ में विषाद। अनुप्रिया अपनी कविता 'स्त्रियाँ' में लिखती हैं -

[1]शर्मा, डॉ.श्यामबाबू. (2014). भूमंडलीकरण और हिंदी कविता. पृ. 320
[2]शर्मा, डॉ.श्यामबाबू. (2014). भूमंडलीकरण और हिंदी कविता. पृ.324

"स्त्रियों के भीतर की

उगती इच्छाएँ

जन्म लेने से पहले ही

मर जाती हैं

और उनके मरने का शोक भी

नहीं मना पाती हैं

स्त्रियाँ"[1]

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विषयक समस्याओं को आवाज देने वाली अनामिका ने स्त्री जीवन के लगभग हर पहलू को स्पर्श किया है।वह माता, पत्नी आदि रूपों में स्त्री की मर्यादा एवं पितृसत्तात्मक समाज में उसकी उपस्थिति को कलात्मक ढंग से चित्रित करती हैं। पुरुष एवं स्त्री को बराबर के अधिकार के प्रश्न पर वह अपनी कविता 'विस्थापन बस्ती की माँएँ (पासवर्ड : निर्भया की अम्मा : खोली नंबर 105)' में लिखती हैं -

"की-बोर्ड पर जीवन के क्लिक करने होते हैं बीज शब्द-

धीरज, ममता, संयम लज्जा –

होंगे ये सद्गुण स्त्री-धन, पर

एकाधिकार किसी का

चाहती हैं कि ले मर्दजात

सद्गुणों के स्त्री-धन में

अपना ही हिस्सा बराबर का !"[1]

[1]अनुप्रिया (2014). स्त्रियाँ. लमही. अंक-2. पृ. 91

सीमा सोनी की कविता 'खाली हाथ' में जीवन-मूल्यों एवं स्त्री विषयक समस्याओं की गहरी पड़ताल देखने को मिलती है। सीमा सोनी की अधिकतर कविताओं में उनका बेबाक तेवर पाठकों को आकर्षित करता है। उसी प्रकार रश्मि रमानी कविताओं का तेवर भी कुछ कम नहीं है। हाँ हम कह सकते हैं कि सपाटबयानी के अभाव में भी उनकी कविताएं स्त्री समस्या को रेखांकित करने प्रखर हैं।

"स्त्री जीवन के तमाम प्रश्न हाशिये के नहीं बल्कि जीवन के केंद्रीय प्रश्न हैं। स्त्री-विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समक्ष रखकर स्त्री-विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाह नहीं किया जा सकता। स्त्री-विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल अथवा मार्केट के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने की जो पूँजीपरक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है उस मानसिकता से मुक्त हुए बिना स्त्री-विमर्श उसकी देह की चटखारी बहस बनकर समाप्त हो जाता है।"[2] मिथकों के माध्यम से समकालीन हिंदी (स्त्री) कविता ने प्रतिरोध की चेतना को प्रसारित किया है। अनामिका, कात्यायनी आदि ने अपनी स्त्री विषयक कविताओं में मिथकों का भरपूर प्रयोग किया है। पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध कवयित्री नेहा नेरुका की चर्चित कविता 'पार्वती योनि' को हम स्त्री-प्रतिरोध की संस्कृति के रूप में देख सकते हैं। वह लिखती हैं –

"वे नहीं सोच पातीं

कि यदि लिंग का अर्थ

स्त्रीलिंग या पुल्लिंग दोनों है

तो इसका नाम पार्वती लिंग क्यों नहीं ?

और यदि लिंग केवल पुरूषांग है

तो फिर इसे पार्वती योनि भी

---

[1]अनामिका, (2019). विस्थापन बस्ती की माँएँ (पासवर्ड : निर्भया की अम्मा : खोली नंबर 105).पानी को सब याद था. पृ.136

[2]शर्मा, डॉ.श्यामबाबू. (2014). भूमंडलीकरण और हिंदी कविता.पृ. 331

क्यों न कहा जाये ?...

कुछ ने पढ़ी है केवल स्त्री-सुबोधनी

वे अगर पढ़ते और जान पाते

कि कैसे धर्म, समाज और सत्ता

मिलकर दमन करते हैं योनि का"[1]

वास्तव में यह कविता पितृसत्ता को समझने एवं तथाकथित मूल्यों को चुनौती देती हुई नजर आती है। बाल शोषण वर्तमान समाज की एक गंभीर समस्या है। बालिका विमर्श के अंतर्गत हम इसके कई पहलुओं पर विचार कर सकते हैं। स्त्री विमर्श के आलोक में बालिका विमर्श से संबंधित तमाम प्रश्नों को समकालीन स्त्री कविता समझने का प्रयास करती है। समकालीन कवियों में मंगलेश डबराल की 'लाटरी बेचने वाली लड़कियां', स्वप्निल श्रीवास्तव की 'बूटपॉलिश' आदि में समाज की समसामयिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी कविता की (स्त्री विषयक) एक सुचिन्तित एवं सुदृढ़ परंपरा रही है जिसे आगे बढ़ाने एवं सार्थक दिशा देने में इस दौर के रचनाकारों की महती भूमिका है। उल्लेखनीय है, समकालीन हिंदी कविता में स्त्री विषयक मुद्दों एवं समसामयिक प्रश्नों को बहुत ही संजीदगी के साथ उठाया गया है। इन कविताओं में अपने समय एवं समाज की गहरी पड़ताल है। निश्चित रूप से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में (तत्कालीन) स्त्री जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों को समझने हेतु इन कविताओं को एक मुकम्मल दस्तावेज़ के रूप में देखा जा सकता है।

[1] http://kavitakosh.org/kk/पार्वती-योनि_/_नेहा_नरुका

2.3 समकालीन ओड़िया कविताओं में स्त्री अस्मिता के प्रश्न :

समकालीनता कालखंड नहीं, एक चेतना प्रवाह है। भारतीय साहित्य में समयानुसार यह प्रवाह प्रत्येक भाषा के साहित्य में देखने को मिलता है। समकालीन ओड़िया कविता में भी यह प्रवाह अपने तात्कालिक बोध के धरातल पर प्रवाहित हुआ जो आज भी जारी है। हम कह सकते हैं कि समकालीन ओड़िया कविता की रचना प्रक्रिया लगभग स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियों से उत्पन्न हुई है। स्वतंत्रता के बाद देश में मोहभंग की स्थिति देखने को मिलती है। अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव ने केवल ओड़िया साहित्य ही नहीं लगभग सभी भारतीय साहित्य-चिंतकों को प्रभावित किया। पाश्चात्य विचारधारा, टेक्नॉलॉजी का उपयोग, शिल्पायन, परिवहन तथा यातायात की सुविधा ने मानवीय बौद्धिक चिंतन प्रक्रिया को विकसित किया। विशेषकर ओड़िया साहित्य इस समय पाश्चात्य साहित्य दर्शन, साहित्यिक व सामाजिक आंदोलन एवं संघर्ष आदि से काफी प्रभावित हुआ है। कुल मिलाकर कहें तो स्वतंत्रता के बाद भारतीय साहित्य की परिवर्तन रूपी लहर में ओड़िया साहित्य अपना स्वतंत्र वजूद बन गया।

स्वतंत्रता के बाद ओड़िया कविताओं में स्त्रीवादी दृष्टि प्रमुखता से देखने को मिलती है। प्रगतिवादी एवं प्रयोगधर्मी ओड़िया कविताओं में स्त्री संघर्ष का चित्र प्रमुखता से उभरकर सामने आता है। संवेदना की दृष्टि से लिखी गई अधिकतर कविताओं में स्त्री के जीवन संघर्ष, असहायबोध, शोषण आदि प्रतिबिंबित हैं। कविताओं में स्त्री का एक वैश्विक रूप भी सामने आया है। इससे पहले ओड़िशा की सामाजिक पृष्ठभूमि में एक स्त्री रूढ़िवादी परंपरा, रीति-रिवाज़, संस्कार-संस्कृति एवं पारिवारिक जीवन आदि में सीमाबद्ध होकर रह जाती थी।

मोहभंग के बाद लगभग 1960 तक ओड़िया स्त्री कविता स्त्री-पुरुष समानता की मांग करती नजर आती है। जिस प्रकार पूरे भारत में स्त्री-पुरुष समानता को लेकर आंदोलन हुए एवं पुरुष के समान एक स्त्री को शिक्षा, राजनीति, नौकरी, खेल, साहित्य आदि में समान अधिकार देने का प्रश्न उठा; ओड़िया कविताओं में भी इसका प्रभाव स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है। इस समय की ओड़िया कविता में मृत्यु चेतना ने समकालीन रचनाकारों को मिथकों की ओर ध्यानाकर्षित किया। भारत-चीन

युद्ध एवं भारत-पाक युद्ध की भयावहता ने लोगों में मानसिक कुंठा भर दी। विडम्बना है कि इस समय महात्मा गांधी के रामराज्य की कल्पना तथा शांति-मैत्री-प्रीति का महामंत्र कमजोर होता हुआ जान पड़ा। प्राकृतिक आपदाओं के साथ सामाजिक एवं आर्थिक संकट ने ओड़िशा के तत्कालीन जनजीवन एवं बुद्धिजीवी वर्ग को साहित्य के जरूरी तथा सभी अनुकूल परिस्थितियों से दूर रखा। इस दौर की रचनाओं में स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को गंभीरता से समझने का प्रयास किया गया, परंतु कविताओं में यह स्वर अपेक्षाकृत कम एवं अस्पष्ट देखने को मिलता है। तत्कालीन रचनाकारों ने स्त्री की मुक्ति प्रसंग को मिथकीय प्रसंगों के माध्यम से देखने की कोशिश की। अहल्या, शकुंतला, राधा, सीता जैसे चरित्रों का पुनर्मूल्यांकन हुआ। कविताओं में एक स्त्री मन की स्वाधीन चिंता, वेदना, संघर्ष आदि में आत्मस्वाभिमान ही मुख्य रहा। इस समय की महत्वपूर्ण कवयित्रियों में विद्युतप्रभा देवी एवं कुंतुला कुमारी साबत अन्यतम हैं। इनकी ज्यादात्तर कविताओं में ईश्वर प्रेम, ग्राम्य-चेतना के साथ एक स्त्री का दांपत्य प्रेम, सुख-दुःख, जीवनचर्या आदि विषय प्रमुख रूप से उल्लिखित है। पुरुष वर्ग के लेखकों में सच्चितानंद राउतराय, गुरू प्रसाद महान्ति, चिंतामणि बेहेरा, रमाकांत रथ, सीताकांत महापात्र, शरतचन्द्र प्रधान, दीपक मिश्र, सौरीन्द्र बारिक, सौभाग्य मिश्र, राजेंद्र किशोर पंडा आदि की लंबी परंपरा रही। जहां स्त्री-अस्मिता के प्रश्नों को बारीकी से समझने का प्रयास किया गया। लगभग बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से इन कवियों ने अपनी कविताओं में स्त्री चरित्रों के माध्यम से अपनी बात रखने का पुरजोर प्रयास किया।

मानवतावाद एवं साम्यवाद में विश्वास रखने वाले कवि सच्चितानंद राउतराय की सबसे चर्चित कविता 'अलका सान्याल' में एक स्त्री का परिवर्तित जीवन-संघर्ष तथा उस समय स्थानीय (नुयाँखाली) दंगे में हुई हत्या, यौन हिंसा आदि में प्रताड़ित 'अलका' चरित्र एक सचेतन समाज की मांग करती है। हालांकि कविता में स्त्री-प्रतिरोध का स्वर उतना तीव्र नहीं है, जितनी कविता की पृष्ठभूमि की मांग है। परंतु कविता से यह स्पष्ट हो जाता है कि कविता के अन्तर्मन में स्त्री-प्रतिरोध की धधकती ज्वाला है। 'अलका सान्याल' कविता की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह कविता बाद के रचनाकारों के लिए मिथक रूप में ग्रहण की गई। राउतराय के बाद समय एवं परिवेश के साथ-साथ बदलती स्त्री समस्या से

जुड़े सवालों को केंद्र में रखकर गुरु प्रसाद महान्ति, शैलज रवि एवं रिंकी पधान आदि ने 'अलका सान्याल' चरित्र को नई पहचान दिलाई।

विशेषकर समकालीन ओड़िया कविता के सीमांकन के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि इसका आरंभ 1980 के बाद से माना जाता है। आधिकतर आलोचक 1980 के बाद की कविताओं को समकालीन ओड़िया कविता के रूप में स्वीकार करते हैं। साक्षात्कार में अपर्णा महांति ने समकालीन कविता के सीमांकन के संदर्भ में कहती हैं कि "1980 के बाद लिखी जा रही ओड़िया कविता को हम समकालीन कविता कह सकते हैं।"[1] हालांकि यह सीमांकन विवादास्पद है। इस समय की ओड़िया स्त्री-कविताओं में नारी स्वर अधिक तीव्र एवं मर्मस्पर्शी है। पितृसत्ता के सामने वह अपनी मर्यादा को आधुनिकता के साथ स्थापित करते हुए नजर आते हैं। विशेषकर कवयित्रियों ने इस आंदोलन को सफलतापूर्वक सिद्ध किया है। हम देखते हैं समकालीन ओड़िया कविताओं में स्त्री-प्रतिरोध की चेतना की शुरुआत कवियों (पुरुष कवि) के द्वारा आरंभ हुई और बाद में कवियित्रियों ने इसे नए मूल्यों के साथ परिवर्धित किए। गुरु प्रसाद महान्ति, रमाकांत रथ आदि ने आरंभ में स्त्री-समस्या से जुड़े सवालों को मुखर अभिव्यक्ति दी। रमाकांत रथ की कविता 'चंद्रमार चूड़ी' में नायिका चंद्रा बेहेराणी विधवा स्त्री है। वैश्या वृत्ति करती चंद्रा बेहेराणी के हृदय में पति के प्रति प्रेम एवं समाज के पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति आक्रोश स्पष्ट दिखाई पड़ता है। वह कहती है है कि इस जीवन में जीवन को अतिवाहित करना ही सत्य है एवं उससे भी सत्य शायद आदर्श की हत्या एवं विवेक की मृत्यु की कहानी। कवि इसी भावद्रेक को शब्दबद्ध करते हुए लिखता है -

"जींईंबाटाबोधहुए जीबनरे सबुठारु सत,

ता'ठारु बि सत बोधे आदर्शर हत्या आउ बिबेकर मृत्युर काहाणी"[2]

1993 में सरस्वती सम्मान प्राप्त रमाकांत की लंबी कविता 'श्रीराधा' में स्त्री प्रतिरोध का स्वर मुखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। मूलतः कविता में निष्काम प्रेम, परकीया प्रीति, यौन कुंठा, अन्य की

[1]महांति, अपर्णा. (2019). साक्षात्कार (परिशिष्ट) से उद्धृत

[2]महापात्र, डॉ. प्रेमानंद. (2019). ओड़िया काव्य कविता: प्राचीनरु सांप्रतिक. पृ. 964

अस्मिता में खुद को लीन कर देती राधा एक मिथकीय चरित्र के रूप में देहातीत प्रेम, निराशा एवं अभियक्ति की स्वतंत्रता को समेटे हुए है। पूरी कविता में एक स्त्री जीवन की नितांत अर्थहीन, संभावनाहीन, जीवन संघर्षों को मुक्ति प्रश्नों के साथ समझने का प्रयास किया गया है। प्रेम के धरातल पर एक स्त्री अपनी मुक्ति चाहती है। इस पथ पर आए हुए तमाम प्रतिबंधकों को वह तोड़ना चाहती है। लोकापवाद, संस्कार आदि से ऊपर उठकर वह अपना आत्ममंथन करती है। अपनी अस्मिता को पहचानती है। वस्तुतः यह कविता एक साधारण स्त्री की बौद्धिक आत्माभिव्यक्ति है। मुक्ति के प्रसंग पर प्रेम की पराकाष्ठा है। कविता के माध्यम से राधा कहती है –

"अब मैं नहीं बँधी अपने जन्म के

भाग्य से, चुनौती-सी मैं

प्रतिबंधों को न मान आती हूँ तुम्हारे पास।

तुम तो विवश कर देते हो, आत्म विभोर कर देते हो

चेतना को नयी-नयी खुशियों से।"[1]

समकालीन ओड़िया कविता में मार्क्सवादी कवि रवि सिंह (रवींद्र नाथ सिंह) की कई कविताओं में स्त्रीवादी विचारधारा स्पष्ट दिखाई देती है। 'केवल संग्राम' कविता संकलन में मेनका विश्वाल चरित्र के माध्यम से वर्गविहीन समाज (पूर्व-कल्पित) में एक स्त्री हृदय में प्रेम-प्रसंग कितना महत्वपूर्ण है; दिखाने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार मनोरमा विश्वाल महापात्र की कविता 'तोर एई एकाकीत्व' एवं 'फाल्गुनी तिथिर झिअ' के माध्यम से एक स्त्री की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आर्थिक स्थितियों को उजागर किया गया है। 'फाल्गुनी तिथिर झिअ' कविता में स्त्री-शिक्षा एवं वालिका विमर्श स्पष्ट रूप में विद्यमान है। ओड़िशा प्रदेश की आत्मा गाँव में है। इसीलिए यहाँ के अधिकांश कवि व रचनाकारों की लेखनी हमेशा से गाँव की मिट्टी से जुड़ी हुई हाती है। हम देखते हैं स्त्री-शिक्षा या यूं कहें बालिकाओं की शिक्षा के विरुद्ध मानसिकता ओड़िशा के गाँवों में दर्शनीय है।

[1]रथ, रमाकांत. (1990). श्रीराधा. पृ. 49

रचनाकारों ने इसके विरुद्ध भी अपनी प्रतिक्रियाएँ प्रमुखता से दर्ज की है। फकीर मोहन सेनापति की बहुचर्चित कहानी 'रेबती' इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस समय की स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में डॉ. नित्यानंद पट्टनायक का मंतव्य का उल्लेख यहाँ समीचीन प्रतीत होता है- "In Odia Literature, Fakir Mohan Senapati is known as Vyasakavi. His short story 'Rebati' is one of the major modern work. The story contains the theme like 'Feminism', women education, love, desire and superstition. The story moves around the desire of study of a young girl, who wants to study."[1] कहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री-सचेतनता की मनः प्रवृत्ति आधुनिक ओड़िया साहित्य में आरंभ से देखने को मिलती है। मनोरमा विश्वाल महापात्र की कविता 'फाल्गुनी तिथिर झिअ' में एक शिक्षित लड़की की निष्ठा व धैर्य प्रतिबिंबित है। इसी तरह वह अपनी कविता 'कभी कभार सोचती हूं...' में एक औरत को माँ की दृष्टि से देखने की कोशिश करती हैं-

"मांऐ दुःख से रोयें तो
बिलकुल अच्छा नहीं लगता है मुझे
पर उनके भाग में दुःख के सिवाय
और होता भी क्या है, खास अपना ?
उनके निजी दुःखों को
ईश्वर तक ने नहीं समझा है, अभी तक"[2]

समकालीन ओड़िया स्त्री कविता का यह प्रारंभिक दौर था। एक स्त्री की अस्मिता के सवालों पर कविताओं में धीरे-धीरे सचेतन विमर्श शुरू हो रहा था। जैसे प्रतिभा सतपथी की 'शवरी', सेनापति प्रद्युम्न केशरी की 'पूतना', श्रीनिवास उदगाता की 'कृष्णा',गिरिबाला महांति की 'श्रीमती इंदिरा गांधी',

[1]Patnaik, Dr.Nityanand.(2017).Feminism in Modern Oriya (Odia) Literature. New Man International Journal of Multidisciplinary Studies. Page.12

[2]विश्वाल महापात्र, मनोरमा. (2011). कभी कभार सोचती हूं. युद्धरत आम आदमी. (संपा-गुप्ता,रमणिका).विशेषांक.पृ.370

सुचित्रा पाणीग्राही की 'देवकिर आत्मा', ममता दाश की 'मो भाग्य' जैसी कविताओं में स्त्री-विमर्श देखने को मिलता है। मनोरमा महापात्र अपनी कविता 'शूर्पणखा : आत्म निवेदिता' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की सोच का तीव्र विरोध करती हैं। वह कहती हैं कि एक नारी के प्रेम निवेदन का फल अगर हिंसा हो, और यह मानसिकता उसके पास, जिसे हम समाज के मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्वीकार करते हैं; यह सोच भगवान राम की नहीं, पितृसत्तात्मक समाज की है।

कन्या भ्रूण हत्या मानवता एवं विशेषकर संपूर्ण स्त्री जाति के विरुद्ध सबसे जघन्य अपराध है। यह अपराध समाज के पुरुषवादी मानसिकता में एक स्त्री की वास्तविक स्थिति को द्योतित करता है। सरोजिनी षडंगी की कविता 'आत्मजा' में एक भ्रूण कन्या अपनी माता से यह पूछती है कि वह उसे जन्म देगी या नहीं? उसकी अपनी इच्छा है। वह चाहती है कि चन्द्रकला के समान बढ़ती उज्ज्वल प्रभा को पूरा विश्व देखे। इस प्रकार संवेदनशील प्रसंगों के साथ समकालीन स्त्री कविता विमर्श करती नजर आती है।

राजेंद्र किशोर पंडा समकालीन ओड़िया कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनका चर्चित कविता संग्रह 'शैलकल्प' में संकलित कविता 'झिअ पाईं गोटिए कबिता' में स्त्री-विरोधी दृष्टिकोण स्पष्ट देखा जा सकता है। संवेदना के धरातल पर पितृसत्ता की तमाम चुनौतियों का जिक्र करते हुए प्रतीत होता है कि एक स्त्री के लिए उसकी नियति ही सर्वोपरि है। एक स्त्री द्वारा सब कुछ मान लेना, अधिकार के लिए प्रतिवाद न करना, कविता में दर्शाया गया है। यह कविता पितृसत्तात्मक समाज की दृष्टि से जिस प्रकार आलोचना की मांग करती है, शायद उस रूप में कम सशक्त है। राजेंद्र किशोर पंडा लिखते हैं-

"शतेक शरत थिबू बूढ़ी हेबु नाहीं झिअ !

संपाकटा करिबुनी, निजकु नुहें कि नियतिकि नुहें,

केते झीन केते सूक्ष्म तोर जीवन

उभेईजिब कविता, चहलिजिब मिलेई जिब स्वप्न

दारुणतम दुःखरे बि

माटीकु फाटिजा बोली केबे कहिबुनी, मा,

पोती होइजिब आकाश।"[1]

गिरीवाला महांति ने अपनी अधिकतर कविताओं में स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को उठाया है। मानवीय मूल्यों के साथ प्रतिवाद के स्वर उनकी कविताओं की विशेषता है। परंपरा के सहारे वह अपने समय की स्त्री समस्याओं को बख़ूबी समझती हैं। ओड़िया साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकारों के चर्चित चरित्रों का पुनर्मूल्यांकन उनकी कविताओं को और अधिक आकर्षित करता है। स्त्री समस्या पर विशेष बल देती 'चंपा : तो पाईं मुं रूपबंत' कविता फकीर मोहन सेनापति के उपन्यास 'छह बीघा जमीन' की नायिका चंपा चरित्र पर आधारित है। इसी प्रकार मृत्यु चेतना तथा मुक्ति संघर्ष पर प्रकाश डालती उनकी कविता 'एक कविता : खुद के विरुद्ध' में वह लिखती हैं –

"मैं कभी नहीं सोचती

मैं हूँ एक नदी मुक्ति की

और अपनी मुक्ति पाने के लिए

यह है मेरी अपनी ही यात्रा

मेरी अपनी ही मृत्यु की ओर

अपने ही तीर से बिंधी मैं

खुद ही हूं अपनी मृत्यु का कारण

खुद ही हूँ मैं अपनी-अपनी

द्रोपदी...!"[2]

[1]पंडा, राजेंद्र किशोर. (2003). शैलकल्प. आधुनिक ओड़िया कविता संभार. (संपा. जतीन्द्र मोहन महांति). पृ. 20

[2]मोहंती, गिरिबाला. (2011). एक कविता: खुद के विरुद्ध.युद्धरत आम आदमी. (संपा-गुप्ता,रमणिका). विशेषांक. पृ. 369

स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता पर समकालीन ओड़िया कविता अपनी सचेतन दृष्टि रखती है। सौभाग्य मिश्र, प्रतिभा शतपथी, स्वप्ना मिश्र आदि की कविताओं में स्त्री की आर्थिक स्थिति पर विचार देखने को मिलता है। इस प्रकार मातृत्व की भावना को उद्दीप्त करती समकालीन ओड़िया स्त्री कविता कई प्रश्नों को उजागर करती नजर आती है। उदाहरण स्वरूप सीताकांत महापात्र की 'प्रदक्षिण', प्रतिभा शतपथी की 'बोऊ', अपर्णा महांति की 'झिअ बिदा', जयंत महापात्र की 'माआकु चिठी टीए', ममता दाश की 'नील निर्वापन', वीणापाणि पंडा की 'देवकी आदि कविताओं में स्त्री के मातृत्व रूप का अभिनव मूल्यांकन किया गया है। पुरुषवादी समाज पर आक्रोश व्यक्त करती इस समय की चर्चित स्त्री-कवयित्री शकुंतला बलियार सिंह अपनी कविता 'औरत' में लिखती हैं –

"युग-युग से टुकड़ा-टुकड़ा कर

खाया मेरा कोमल मांस कर-कर स्वाद की तारीफ

मां, बहन, बेटी बनने की देते रहे हिदायत"[1]

गायत्री बाला पंडा की 'स्त्री' कविता विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नारी मुक्ति के प्रसंग पर उनकी कविताएं साधारण जन-मानस को अपील करती दिखाई देती है। वह प्रतिरोध के स्वर के प्रसंगानुकूल एक गंभीर वैचारिक प्रतिबद्धताओं के साथ अपनी बात रखने की कोशिश करती है। समाज में व्याप्त स्त्रियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण के विरुद्ध अपनी समझदारी पेश करती हैं। कविता में एक जगह वह लिखती हैं-

"तुम्हारी भूख हो या क्षोभ या घृणा

तुम्हारी अतृप्त कामना के आस-पास

हर कहीं खड़ी रहती है वह लड़की.....

उस लड़की को क्या है सतीत्व

[1]सिंह, शकुंतला बलियार. (2011). औरत.युद्धरत आम आदमी. (संपा-गुप्ता,रमणिका). विशेषांक. पृ. 369

समझाओ मत

उसकी निरावरण अन्यमनस्कता पर

कदापि फेंको नहीं घृणा।"[1]

यौन हिंसा (बलात्कार) का मुद्दा लगभग देश के हर क्षेत्र की जघन्य समस्या है। इसके प्रतिवाद स्वरूप कई रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई। रचना के माध्यम से खासकर बौद्धिक वर्ग में विमर्श लगातार होता रहा है। यौन हिंसा के बाद स्त्री के प्रति समाज का नजरिया जरूर बदलता है। उसके सतीत्व पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। उत्तर संरचनावाद (Post Structuralism) से प्रभावित ओम ईश्वरी कविकन्या की कविता 'नारीत्व' में एक मुस्लिम महिला इमराना अपने ससुर के द्वारा यौन हिंसा का शिकार होती है, और बाद में अपने पति के द्वारा परित्यक्त भी। इस प्रकार की मानसिकता के विरुद्ध कवयित्री प्रश्न करती है कि यदि स्त्री बलात्कार का शिकार हो रही है, तो इसमें उसकी क्या गलती ? जरूर उसके पति के स्वाभिमान को आघात पहुंचा हो, परंतु सतीत्व के नाम पर स्त्रीत्व को नष्ट करना कहाँ तक उचित है ? वास्तव में यह समस्या हर स्त्री की समस्या है।

अस्तित्व की खोज करती स्त्री कहीं न कहीं उत्तर आधुनिक काव्य धारा से काफी प्रभावित रही। पाठ (text) को तोड़ना एवं उसके आभ्यांतर में निहित मूल पाठ को कविता के रचना प्रक्रिया के साथ जोड़ने का प्रयास इस समय की लगभग स्त्री-कविता की विशेषता रही। सुचित्रा पाणिग्राही की कविता 'अस्तित्व खोजुछी' इसका सुंदर उदाहरण है। जिसमें वह कहती हैं कि "कभी-कभी ऐसा लगता है कि मैं नहीं हूँ मेरे भीतर।" इस प्रकार अस्तित्व की खोज में अपर्णा महांति की कविता 'निजकु खोजिला बेले', शुभश्री लेंका की कविता 'निज सह कथाबार्ता', डॉ. चारुबाला महांति की कविता 'शून्यता', मनोरमा महापात्र की कविता 'अज्ञेय मुं चिरकाल', सुचेता मिश्र की कविता 'बारंगना', चिरश्री इंद्रसिं की 'पक्षीजन्म', प्रीतिधारा सामल की कविता 'अपेक्षारे', रिंकि पधान की कविता 'खोला आकाशर पक्षी', सुजाता परिजा की 'गोटिए खरा चाहे' आदि इसी कोटि की रचना है।

[1]पंडा, गायत्री बाला. (2006). धूप को रंग. (अनुवाद.महेंद्र शर्मा). पृ.43

समकालीन ओड़िया स्त्री कविता में अपर्णा महांति की स्वतंत्र पहचान है। स्त्री यथार्थबोध की रचनाओं में वह विशेषकर अपने समय की सबसे प्रखर एवं मुक्त आवाज़ हैं। प्रेम, विद्रोह के बीच जिजीविषा का स्वर उनकी कविताओं की आत्मा है। वह लिखती हैं –

"दुःखिनी नारी के आँसू / चुंबक सीखींच लाती है

सहस्र संवेदना के/ चतुर लालायित हाथ

देह में ज्वार उठते हैं/फैल जाती है दूर तक / रक्त कीलहरें...

परित्यक्त किए हुए / पति वप्रेमी के विरोध में

केवल थोड़े ही / कहने / रोना सीखने से

या छद्म – मासूमियत की / धूर्तता में

बाँधना सीख जाने से गो गई"[1]

समकालीन ओड़िया स्त्री कवयित्री डॉ. रंजिता नायक अपनी कई कविता में एक स्त्री की व्यथा को बहुत ही संजीदगी से उपस्थिति करती हैं। समाज में एक नारी के कई रूप हैं। माता, बहन, पत्नी, प्रेयसी आदि के रूप में समाज में प्रतिष्ठित होते हुए भी, उसकी उपस्थिति को नजरंदाज़ किया जाता है। प्रत्येक रूपों की अलग-अलग विशेषता है। उसी प्रकार एक लड़की की विशेषता को ध्यान में रखकर वह अपनी 'बेटी खेल रही है' कविता में लिखती हैं –

"सुबह की नन्ही-नन्ही किरणों की तरह

बिखरे हैं सपने उसके इधर-उधर

तितली-सी उड़ती खेल रही है बेटी

मना करने पर नहीं मानती

[1]महांति, अपर्णा. (2017). अग्नि कमलिनी. पृ. 88

मस्त है बस खेलने में बेटी

नजर उठाकर कभी बेटी को देखती हूं

तो कभी नदी को…!"[1]

सांप्रतिक ओड़िया कविता के चर्चित स्वर हृषिकेश मल्लिक की कई कविताओं में स्त्रीवादी दृष्टि देखने को मिलती है। ग्राम्य चेतना के कारण उनकी कविताओं में आंचलिकता का सहज अनुभव किया जा सकता है। मिथकों के माध्यम से स्त्री, गरीब, असहाय तथा हाशिये के समाज के प्रति सजग दृष्टि उनकी कविताओं की विशेषता है। कर्ण के जीवनी पर रचित प्रासंगिक कविता 'बसुसेण' इसका ज्वलंत उदाहरण है। कवि मल्लिक ने गाँव में रहने वाली महिलाओं व बालिकाओं की यथार्थ स्थिति को अपनी कविताओं में विमर्श की नजरिए से देखने की कोशिश की है। उन्होंने 'झिअ : छेलिगोठो','धान साउंटा झिअ' आदि में एक ग्रामीण लड़की की यथार्थपरक समस्याओं को वह बुद्धिजीवी वर्ग के सामने बहुत ही संजीदगी से रखा है। करुणा से भरे गीतों में भी पितृसत्ता के विरुद्ध विद्रोह की भावना निश्चय ही उल्लेखनीय है। जैसे –

"निदकु करिदे मना नूयाँ'उ रागिब

लुहकु करिदे मना, फेरिजाऊ नूयाँ'उ रागिब...

गोड़ कचाड़ना'रे झिअ, अलता घेनिबा मना तते

लुह झराना'रे झिअ, हुजुती मनापा तते।"[2]

सुचेता मिश्र समकालीन ओड़िया स्त्री कविता की सजग कवयित्री हैं। उनकी कई कविताओं में नारी जीवन के सुख-दुःख, प्रेम-बंधन, दशा-दुर्दशा के साथ अस्मिता को पहचानने की तीव्र जिज्ञासा है। उनकी कविताओं में एक अटूट नीरवता है, जो स्त्री विमर्श के तमाम प्रश्नों को अपने अंदर आत्मसात

[1]नायक, रंजिता. (2011). बेटी खेल रही है. युद्धरत आम आदमी. (संपा-गुप्ता,रमणिका). विशेषांक. पृ.371.
[2]महापात्र, प्रेमानंद. (2019). ओड़िया काव्य कविता : प्राचीनरु सांप्रतिक. पृ.1302

करने की क्षमता रखती है। 'आदिप्रश्न','अंतिम स्त्री','दूब','अचानक मरती नहीं नारी' आदि कविताओं में हम उनकी स्त्रीवादी दृष्टि को समझ सकते हैं। जैसे 'अंतिम स्त्री' कविता में वह लिखती हैं –

"तुम्हारी मुलाकात होगी एक दिन

पृथ्वी की अंतिम स्त्री से

दिगंत विस्तृत दृष्टि उसकी

दिखती सुनसान रास्तों की तरह"[1]

सुजाता चौधुरी समकालीन ओड़िया स्त्री कविताओं में विशेष रूप से उलीखनीय हैं। हिंदी, ओड़िया तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं में इनकी आधे दर्जन से भी ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित हैं। ओड़िया स्त्री कविता के परंपरा को आगे बढ़ाती कविताओं में इनके बौद्धिक चिंतन को सहज ग्रहण किया जा सकता है। वह अपनी कविता 'कठघरे में मलिका' में लिखती हैं –

"हर जन्म में वह जन्मी औरत बनकर उड़ने की, लिए असीम इच्छाएं

बचपन में तोड़ देती मां उसके मुलायम डैने और कहती –

लड़कियां नहीं उड़तीं, लड़कियां घर में रहती हैं

काम करती हैं, चुप रहती हैं, ज्यादा नहीं हंसती

बालों में तेल, पैरों में महावर लगाती हैं और ऐसी ढेरों बातें

हर जन्म में उससे पूछे बगैर तय की जाती हैं उसकी शादी

कभी दहेज की आग में जलना पड़ता है तो कभी

पति की नापसंदगी को स्वीकार देना पड़ता त्याग-पत्र"[1]

[1]मिश्र, सुचेता.(2007). मोह अशेष. (अनुवा द.महेंद्र शर्मा). पृ. 13

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी की तरह समकालीन ओड़िया कविताओं में भी स्त्री विषयक मुद्दे संजीदगी से अभिव्यक्त हुए हैं लेकिन प्रारंभ में हिंदी के समकालीन साहित्य में स्त्री लेखन की परंपरा जिस प्रकार व्यवस्थित तरीके से एक आंदोलन की तरह सामने आई है उस रूप में समकालीन ओड़िया साहित्य में दिखाई नहीं देती। समकालीन ओड़िया कविता में अपर्णा से पहले ब्रंहोत्री महांति, प्रतिभा शतपथी आदि ने स्त्री विमर्शमूलक लेखन की शुरुआत की थी, परंतु अपर्णा से ही समकालीन ओड़िया कविताओं में स्त्री अस्मितामूलक लेखन को नया प्लेटफॉर्म मिला।

[1]चौधुरी, सुजाता. (2011). कठघरे में मलिका. (अनु. मिश्र, डॉ.राजेन्द्र प्रसाद). युद्धरत आम आदमी. (संपा. गुप्ता, रमणिका). विशेषांक. पृ.373

3.1 समय, समाज एवं वैचारिक पृष्ठभूमि :

किसी भी देशकाल का साहित्य अपने तत्कालीन समय एवं समाज से प्रभावित रहा है। समाज की नीति, आदर्श, मान्यताएँ, रीति-रिवाज, विजय-पराजय, उत्थान-पतन, स्थापना-संघर्ष, आस्था-अनास्था आदि के कारण साहित्य की दुनिया में संवेदना की स्वाभाविक ऊर्जा का संचार होता रहा है। ऐसे ही अंतःक्रियाओं के कारण समसामयिक साहित्य में संवेदना की पहचान, उसकी उपस्थिति एवं बदलते स्वरूप का पता चलता है। भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श और परिस्थितियों को समझने के लिए तत्कालीन समाज, संस्कृति तथा वैचारिक पृष्ठभूमि को समझना अत्यंत आवश्यक है। चूंकि दोनों कवयित्री वर्तमान दौर की हैं और दोनों की कविताओं में 'स्त्री' विषय ही मुख्य प्रतिपाद्य है। अतः दोनों के समय समाज को समझने के क्रम में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्त्री की सामाजिक हैसियत एवं उतार-चढ़ाव को समझना अधिक समीचीन होगा।

स्त्री-विषयक विशेषतः विमर्श के दौर की कविताओं ने संपूर्ण भारतीय साहित्य को भी प्रभावित किया है। स्त्री कविता लेखन के वांग्मय में हिंदी एवं ओड़िया साहित्य की समृद्ध परंपरा रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थितियों ने निश्चित रूप से महिलाओं की चिंत्य प्रवृत्ति को स्त्री-जीवन के संदर्भ में झकझोरा है। विशेषकर स्त्री कवयित्रियों ने अपने लेखन में स्त्री-स्वतंत्रताबोध, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकारों, स्त्री-नियति एवं शोषण, अस्मिता की पहचान, अस्तित्वबोध, यौन कुंठा संबंधी विचारों पर खुली चर्चा तथा महत्वाकांक्षा जैसे विषयों को लेकर अपनी स्वतंत्र प्रतिक्रियाएं दीं। खासकर स्वतंत्रता के बाद देश मोहभंग स्थिति से गुजर रहा था। इस त्रासदी से देश में एक व्यापक स्तर पर जन एवं धन की हानि के साथ मानवीय मूल्य एवं संबंध विघटित होते रहे। धीरे-धीरे यह और अधिक विस्तृत होता गया। धर्म, संप्रदाय, जाति, लिंग आदि के माध्यम से देश की मूलभूत अवधारणा खंडित होने लगी और यही परिस्थिति उत्तरोत्तर विघटन की ओर अग्रसर होती गई। अनामिका एवं अपर्णा का समय एवं समाज वर्तमान परिप्रेक्ष्य को द्योतित करता है। 21वीं सदी के लगभग सभी महत्वपूर्ण जीवन-जिज्ञासा एवं प्रासंगिक बिदु उनके काव्यिक पृष्ठभूमि की ओर इशारा करते हुए

उनकी प्रतिक्रियाओं को अधिक प्रामाणिक बनाते हैं। समाज में स्त्रियों की दोयम दर्जे की स्थिति के साथ उनके प्रति शोषण, भेदभाव एवं तथाकथित सामाजिक मान्यताओं को उनकी कविताएं चुनौती देती है।

हमारे देश के संविधान में स्त्री एवं पुरुष के आधार पर भेदभाव नहीं किया गया है। बदलती नीतियों ने देश को हमेशा बेहतर बनाने की कोशिश की है। कुछ राज्यों में हो रहे पंचायत चुनावों में 50 फीसदी पद महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। इस प्रकार के नियमों व कानूनों के बावजूद समाज की वास्तविक स्थिति दयनीय है। देश में लगातार स्त्रियों की स्थिति पर सवाल खड़े होते रहे हैं। स्त्री-सुरक्षा से संबन्धित देश के राजनेताओं के तमाम दावों और वादों के बाद भी स्थितियां वही है। दिन-प्रतिदिन अत्याचार, घरेलू हिंसा, दुष्कर्म आदि हिंसक घटनाएं बढ़ती ही जा रही है। बेबिना, निर्भया, आसिफा आदि घटनाएँ वर्तमान समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाती है। लैंगिक असमानता पर गौर करें तो आंकड़ों के अनुसार वर्ल्ड इकोनोमिक फोरोम (WEF), वर्ष 2019 की रिपोर्ट के तहत 151 देशों के इस सर्वे में भारत का स्थान 112वां है। जबकि वर्ष 2018 में 108वें एवं वर्ष 2016 में 87वें स्थान पर था। कहने का अभिप्राय यह है कि भारतीय समाज में लगातार स्त्री एवं पुरुष के बीच दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। यही कारण है कि बलात्कार, अलगाव की समस्या तेजी से बढ़ रही है। वर्तमान के समय में यही देश की सच्चाई एवं विडंबना है। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में न सिर्फ यह चित्र स्पष्ट है, बल्कि प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह के साथ समानता एवं संघर्ष करने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दोनों रचनाकारों ने अपनी रचनाशीलता एवं वैचारिक जीवन दर्शन से केवल अपनी-अपनी प्रदेश की ही नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवीय समाज में सामाजिक क्रांति के सूत्र को अंगीकार किया है।

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की भूमिका महत्वपूर्ण है। समाज एवं राजनीति के दृष्टि से यह दशक आंदोलनों की गूंज, घोटाले, आतंकवादी तथा नक्सल गतिविधियां सहित भूमंडलीकरण के आरंभ एवं विस्तार का दौर है। साथ में इस समय कविता में स्त्री अधिकारों के तमाम प्रश्नों को बार-बार उठाया गया है, बाद में इसी शोषण एवं सामंतवादी सोच को चुनौती देते हुए अनामिका एवं अपर्णा सहित अन्य सभी समसामयिक रचनाकारों की कविताओं ने करारा प्रहार किया है।

अनामिका एवं अपर्णा अपने समय एवं समाज को बखूबी समझती हैं। अनामिका का मंतव्य है – "मेरी पीढ़ी घृणा की राजनीति का ध्वंस देखती ही बड़ी हुई! ऐसे समय में बड़ी हुई कि द्वेष से द्वेष नहीं कटता। एक दमनचक्र का जवाब दूसरा दमनचक्र होता गया तो यह सिलसिला कभी थमने वाला नहीं।"[1] देखा जाये तो वर्तमान समाज भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद जैसी संरचनाओं में जकड़ा हुआ है। मानव मूल्यों का विघटन तथा आम आदमी के अधिकाधिक संघर्ष ने जीवन के सभी सूक्ष्म एवं व्यापक प्रसंगों पर असंतुलित स्थिति पैदा कर दी है। घर-परिवार, समाज-संस्कृति, धर्म तथा राजनीति आदि में नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। सूट, बूट और लूट सहित जातिवादी राजनीति ने मानवीय मूल्यों को ध्वंसोन्मुख कर दिया है। विचारधारा के बदलते स्वरूप एवं अपसंस्कृति के अंधानुकरण ने संपूर्ण भारतीय सामाजिक परिदृश्य को संकटों तथा भयाक्रांत से भर दिया है। विचारधारा से अभिप्रेत कविता के भाव पक्ष के संदर्भ में अनामिका एवं अपर्णा की विचार-दृष्टि लगभग एक समान है। अपर्णा कहती हैं - "विचारधारा कविता के भावपक्ष को दुर्बल नहीं करती है बल्कि उन्नत, सशक्त मानवीय विचार ही कविता के भाव को अधिक सरल, स्पष्ट, सुंदर तथा सलिल करता है।"[2] अपनी-अपनी विचारधारात्मक लड़ाई में हमेशा अस्मिता के प्रश्न को महत्व दिया जाता है। इसी संदर्भ में दोनों लेखिकाओं की विचारधारा का केंद्रीय उद्देश्य स्त्री अस्मिता है। बाद में यह प्रसंग मानव मुक्ति से जुड़ जाता है। कुल मिलाकर कहें तो दोनों कवयित्रियों की विचारधारा समकालीन समाज की तमाम परिस्थितियों से टकराते हुए 'स्व' को प्रतिष्ठित (स्त्री समाज) करने के लिए आत्म-क्रांति में विश्वास रखती हैं।

समकालीन समाज का यथार्थ को चित्रण करते हुए राहुल देव का कहना है कि – "भूमंडलीकरण एवं भौतिकवादी जीवन शैली हमारे पारंपारिक अर्जित मूल्यों को तहस-नहस करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। आज एक ओर अंतराष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में भारतीयों की उत्कृष्ट उपलब्धियाँ हैं तो दूसरी ओर गाँवों में आधारभूत सुविधाएं प्राप्त नहीं होती हैं। औरतें तथा दलितों पर परंपरागत अत्याचार व शोषण बदस्तूर जारी है। चाँद के बाद मंगल ग्रह की उड़ान एवं वहाँ पर जमीन

[1] अनामिका से साक्षात्कार (2019). परिशिष्ट से उद्धृत

[2] अपर्णा महान्ति से साक्षात्कार. (2019). परिशिष्ट से उद्धृत

खरीदने की कश्मकश है, तो भूख और अकाल से कहारती, छटपटाती अतृप्त आत्माएँ भी भटकती फिर रही हैं। कहीं सती-दहन तो कहीं दलित दहन होता है। व्यक्ति चेतना भटक रही है, मानवीयता लड़खड़ा रही है।"[1] ऐसे समय में अनामिका एवं अपर्णा अपने समाज की समसामयिक स्थितियों से रूबरू होते हुए कविता में मानवीय क्रांति के स्वर को बुलंद करती नजर आती हैं। दोनों की कविताओं में स्त्री-पुरुष समानता के प्रश्नों से टकराने की जद्दोजहद है।

अनामिका एवं अपर्णा की कविताएँ गाँव के अधिक निकटस्थ हैं। अपने समय एवं समाज को द्योतित करते समय उनकी रचनाएँ समसामयिक स्त्री जीवन के यथार्थ वर्णन एवं स्त्री-मुक्ति आंदोलन को नया आयाम देते हुए नज़र आती हैं। ओड़िशा प्रदेश पूर्व भारत में स्थित है। अंग्रेजों के समय से ही इसकी आर्थिक स्थिति चिंताजनक होती चलती गई। लगातार बाढ़, तूफान, महामारी आदि के कारण अनगिनत लोग मृत्यु के ग्रास में चले गए। स्थिति बहुत ही भयावह थी। 1900 की बाढ़ ने तो मानो ओड़िशा की सामाजिक व आर्थिक कमर तोड़ दी थी। यह स्थिति लगातार गहराती गई। हर साल ओड़िशा को प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता रहा है। ऐसी स्थिति में 1999 के चक्रवात तूफान ने प्रदेश की बुद्धिजीवी वर्ग को झकझोर कर रख दिया। आर्थिक संकट एवं रोजगार जैसे विषयों से जूझते आम आदमी समकालीन विमर्शों से ठीक-ठीक रूबरू नहीं हो पाये। अधिकांश लोग गाँव से जुड़े रहने के कारण स्त्री-विमर्श जैसी संकल्पनाओं का असर प्रभावी ढंग से नहीं पड़ पाया। ऐसी स्थिति में भी प्रतिभा शतपथी, ब्रंहोत्री महांति आदि की कविताओं में स्त्री-वादी दृष्टि देखने को मिलती है। समकालीन ओड़िया कविता में खासकर भूमंडलीकरण के प्रभाव ने ही स्त्री विमर्श की आंतरिक भावभूमि को समृद्ध किया। नब्बे का दशक ओड़िया स्त्री-विमर्श की दृष्टि से आरंभिक तथा क्रांति का दौर था। अपर्णा महांति का प्रथम संकलन 'अव्यक्त आत्मीयता' (1990) ने एक स्त्री के आत्मीय अनुभव एवं आत्मकुंठा को मुक्त आवाज दी। धीरे-धीरे यह यात्रा आगे बढ़ती गई एवं वर्तमान समय में कवियित्रियों के निर्भीक स्वर ने ओड़िया स्त्री विमर्श की परिधि को अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता के साथ व्यापक रूप प्रदान किया।

[1] देव, राहुल. (2018). हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य. पृ. 100

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं वर्तमान समाज से सीधे टकराती हैं। अधिकतर कविताएं स्त्री-पुरुष संबंध में सामाजिक सहभागिता, समानता एवं समरसता पर विशेष बल देती हैं। सामाजिक विसंगतिजन्य जीवन मूल्यों की असमानता को खारिज करते हुए इनकी कविताएं मानवीय मूल्यों की रक्षा करने के पक्ष में विश्वास रखती है। दोनों की कविताओं में भारतीय स्त्री की छवि स्पष्ट रूप से चित्रित हुई है। मुक्ति के स्वर सहित स्त्री मन के विद्रोह की भावाभिव्यक्ति ने समसामयिक समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित किया है।

3.2 रचनाशीलता का क्रमिक विकास

अनामिका का रचना संसार

समकालीन हिंदी काव्य जगत में अनामिका एक संवेदनशील एवं सशक्त रचनाकार हैं। वह सामाजिक यथार्थ एवं जीवनानुभवों को अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से देखने-परखने की कोशिश करती हैं। एक बहुमुखी साहित्यकार के रूप में उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, आलोचना, विमर्शमूलक लेखन, अनुवाद आदि विधाओं में अपनी रचनाशीलता को नए आयाम प्रदान किए। केदारनाथ सिंह के शब्दों में – "वे प्रायः पद्य की जमीन से शब्दों को उठाती हैं और उन्हें कथन की उसी भंगिमा के साथ तट पर जमाती जाती हैं। इसीलिए उनकी भाषा और कविता का पूरा मिज़ाज प्रचलित काव्य भाषा से थोड़ा अलग है। वे अपने परिवेश से बाहर प्रायः नहीं जातीं, लेकिन उस परिवेश में वाश-बेसिन से लेकर मंगल, शनीचर और चौराहे पर अचानक मिट जाने वाले ईश्वर तक शामिल।"[1] स्त्री जीवन के लगभग सभी पहलुओं को स्पर्श करती उनका रचनात्मक सौंदर्य एक अभिनव रचना कौशल को द्योतित करता है।

शीतल स्पर्श एक धूप को (1975) अनामिका का प्रथम कविता संकलन है, जो अमिताभ प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (बिहार) से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में कुल 67 कविताएं संग्रहीत हैं। संकलन की कई कविताएं बाल-मनोविमर्श, स्त्री विमर्श, प्रकृति सौन्दर्य एवं सामाजिक यथार्थ को द्योतित करती है। इस संग्रह में संकलित कविताओं की अंतर्वस्तु पर विचार करें तो इसके वृहद स्वरूप का ज्ञान होता है। बरसात का एक दिन, हवा को एक दिन, अंबर का मलेरिया, ढलती संध्या, इंद्रधनुषी जैसी कविताएं प्रकृति सौन्दर्य के अधिक निकट हैं। इसी प्रकार हथेलियों पर चिबुक टिकाये, असाध्य तू मेरे लिए, अनचाहे का वैधव्य, एक चिरंतन सत्य, कुछ अपने बारे में, कुछ उनकी सफाई में, माँ बनी मैं, मधुर क्षणों की प्रतीक्षा में, 'अमूर्त सत्ता के कानों में' आदि में स्त्री विमर्श ही मुख्य विषय रहा है। सामाजिक यथार्थ से लैस कविताओं में एक प्रतीत, दुर्दिन में, रद्दी की टोकरी, आश्वासन, बिखरे से कुछ प्रश्न, संदर्भ आकाश की,

[1] अनामिका, (2019). कविता में औरत. फ्लेप से

शून्य में हाहाकार, मन चिनक गया, कुछ अनुत्तरित प्रश्न, अभिलाषा, कथा मेरी, आलिंगनबद्ध, वक्त होने की चाह में, धूसर दिन, घृणित संबंध आदि शामिल है।

गलत पते की चिट्ठी (1979) अनामिका का दूसरा कविता संकलन है। यह संकलन बिहार ग्रंथ कुटीर (पटना) से प्रकाशित हुआ है, जिसमें कुल 32 कवितायें संग्रहीत है। इस संकलन में स्थानित कविताओं को अनामिका ने अपने रचना कर्म के प्रारंभिक दौर में लिखा है। अधिकतर कविताओं में भावों की चंचलता सहित बाल्य जीवन के सुखद स्मृति को सहज महसूस किया जा सकता है। मन इधर उड़ा मन उधर उड़ा, मेरा घर दस आयाम, गलत पते की चिट्ठी, परिवर्तन, कोयल नारेबाज, तूफान आ रहा है शायद, बूढ़ा दर्जी, दर्शन परिदर्शन आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इसके अलावा सांस के बटोही, मृदंग बन बजी धरा, राम का अंगोछा, किसकी है बैशाखी चीड़, धुंदराला दिन, मूल्यांकन आदि कविताओं में बाल मनोविज्ञान को समझने का प्रयास किया गया है।

अनामिका का तीसरा संकलन **समय के शहर में (1990)** पराग प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। छह भागों में विभाजित इस संकलन में कुल 118 कविता संग्रहीत है। प्रथम शीर्षिक के रूप में 'बेजिल्द जिंदगी', दूसरा शीर्षक 'दौंगरा', तीसरा शीर्षक 'बातें' तो चतुर्थ एवं पंचम कविता के रूप में 'गृहिणी की डायरी' तथा 'मौसम' एवं अंतिम शीर्षक के रूप में 'दिवाली परदेश' आदि कविताओं को प्रमुख स्थान दिया गया है। स्त्री विमर्श को उजागर करती कई कविताओं में से शीर्ष की टहनी, दादी का जंपर, जिंदगी, जो फूल है कपास का, सूरज का खोमचा, परदेश का एक और दिन, बीमार बच्ची का एकालाप, सपनों की पीढ़ियाँ, माँ, बच्चा, बेटी की चिट्ठी, यूरेको, माँ का बंटवारा, लड़की, जमीन से फरार हूँ आदि को रेखांकित किया जा सकता है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएं स्त्री जीवन, बाजरवाद, शहरीकरण एवं विसंगतिबोध जैसे विषयों पर केन्द्रित हैं।

बीजाक्षर (1993) चौथे संग्रह के रूप में भूमिका प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संकलन में कुल 39 कविताएं संग्रहीत हैं। 'बुआ', 'इंतजार', 'विस्थापन', 'जाड़ा', 'चुप्पी', 'नदी', 'संबद्ध' , 'ऑफ', 'घंटा-घर', 'जादू का पेड़', 'पानी', 'गंद', 'एक दिन', 'होना-न-होना', 'चमक के अलावा', 'कैलेंडर', 'सब ठीक हो जाएगा' तथा 'अग्नि' आदि कविताओं में स्त्री जीवन के त्रासद

अनुभवों को शब्दबद्ध किया गया है। 'समय', 'दांत', 'भूल-चूक', 'दिन, 'सांप-सिढ़ी, 'उड़नखटोला', 'असबाब', 'एक अनुपस्थित शहर', 'कंकड़ियाँ', 'ऊब', 'अंतः सत्वा', 'लोरी की चिड़िया', 'प्रिय गोमती', 'अकेला आदमी' आदि कविताएं प्रसंगानुसार शामिल हैं। मोटे तौर पर कहा जाये तो यह काव्य संग्रह परंपरागत रूढ़ियों के विरुद्ध संवेदना के स्वर को अभिव्यक्ति देता है। 'ईश्वर' नामक कविता में अनामिका का स्त्री मुक्ति प्रसंग निश्चय ही मार्मिक बन गया है।

किताबघर प्रकाशन से प्रकाशित **अनुष्टुप (1998)** कविता संग्रह सात भागों में विभाजित है। इस संकलन का प्रथम प्रकाशन किताबघर प्रकाशन, दिल्ली से हुआ था एवं बाद में इसका नवीनतम संस्करण वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से वर्ष 2019 में हुआ है। स्त्री जीवन एवं उससे जुड़े सवालों से टकराता यह संग्रह विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस संग्रह में कुल 72 कविताएं शामिल हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह में सात भागों में विभाजित शीर्षकों के अंतर्गत अलग-अलग कविताएं स्थानित हैं। 'बीच का साया' शीर्षक से संबंधित कविताओं में 'बीच का समय', 'ढूंढना', 'खोए', 'पत्ते', 'संयुक्त परिवार', 'परम गुरु' आदि कविताएं दर्ज हैं। इसके उपरांत 'आधी दुनिया' शीर्षक के अंतर्गत 'अनुवाद', 'दरवाजा', 'चिट्ठी लिखी हुई औरत', 'जीवन', 'एक औरत का पहला राजकीय प्रवास', 'स्नान', 'आदि प्रश्न', 'सवेरा', 'सेफ्टीपिन', 'पहली पेंशन' आदि कविताएं शामिल हैं। 'कूड़ा बिनते बच्चे' शीर्षक के अंतर्गत 'अंतः सत्वा', 'होमवर्क', 'ब्लाउज', 'लोड शैडिंग', 'कूड़ा बीनते बच्चे' आदि कविताएं संग्रहीत हैं। इसी क्रम में 'प्रागैतिहासिक' शीर्षक के अंतर्गत इंद्रियां, शाम, इच्छाएं, प्रागैतिहासिक माफी, टिकट बूथ पर पब्लिक टेलीफोन, घाव आदि कविता शामिल है। 'प्रदेश का पहला जाड़ा' शीर्षक के अंतर्गत अनामिका ने तैयारी, बारिश और वे घर, खाली बटुआ, कठघरे से कविता का बयान, प्रोक्सी, बोरियत, चुटपुटिया बटन, गंध, सहयात्री, प्रदेश का पहला जाड़ा जैसी कविताओं का सृजन किया है। इसी प्रकार 'बाज लोग' शीर्षक के अंतर्गत बाज लोग, साथी, पटरी, दंगल, विवरण जैसी कविताएं शामिल हैं एवं अंतिम शीर्षक 'बहिनाबाई इक्कीसवीं सदी' के अंतर्गत बहिना-बाई कविता का मर्म उल्लेखनीय है।

कविता में औरत (2002) काव्य संग्रह सर्वप्रथम इतिहास बोध से प्रकाशित हुआ था एवं बाद में उसका नवीन संस्करण वाणी प्रकाशन से सन 2019 में प्रकाशित हुआ है। इस संकलन के अंतर्गत कुल

24 कविताएं शामिल हैं जिनमें मौसम बदलने की आहट, तीसरी दुनिया : स्त्री का अंतर्जगत बनाम बहिर्जगत, बूंद बूंद रिसती महिलाएं : एक वर्ग पहेली, आखरी हिचकी, एक परित्यक्ता की मौत, पार्क में बुढ़ापा, एक अन्तः कथा, कुहनियाँ, केरल की एक लोक धुन पर आधारित, द्वितीया (पक्ष एक), सिनेमाघर, चौदह बरस की दो सेक्स वर्कर्स, अभ्यागत, घूंघट के पट खोल रे, गालियां सुन लेने का शील आदि कविताओं के माध्यम से अनामिका ने पितृसत्ता के तमाम रूढ़िवादी प्रश्नों को उजागर किया है। खासकर विस्थापित समाज की पीड़ा का जीवंत चित्र उनके इस संकलन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

खुरदरी हथेलियां कविता संकलन राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली से सन् 2005 में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 78 कविताओं को 6 भागों में विभाजित किया गया है। 'अन्तः पुरम्' शीर्षक के अंतर्गत स्त्रियां, बेजगह, छप्पर की मालाएं, ऊनी टोपी, महिला कलाकार, स्त्री-काल, वृद्धा धरती का नमक है जैसी स्त्री जीवन से संबंधित कविताएं शामिल हैं। इसके बाद 'दूधकट्टू' शीर्षक के अंतर्गत सत्रह बरस का प्रतियोगी परीक्षार्थी, गणतंत्र दिवस, जलेबियां, हाथ का प्लास्टर, घरेलू नौकर जैसी कविताएं शामिल हैं। इसी प्रकार 'कुछ अनपटी प्रेम कविताएं' के अंतर्गत एक अजब-सा संयोग, बस टिकट, जानना, जिह्वा, बसेरा, धनिया, उसने कहा था आदि कविताओं को स्थानित किया गया है। इसी प्रकार 'आजादी' शीर्षक के अंतर्गत हँसी, पूछताछ कार्यालय, अँगरेजी यूँ भेजती है बमवर्षक बीमा जैसी कविताएं शामिल हैं। 'मुसलमान क्या होते हैं, अम्मा'शीर्षक के अंतर्गत बम, दंगे और हिंसा कांड, खांसी जैसी कविताओं के साथ-साथ 'तोस-भरोस' शीर्षक के अंतर्गत पत्नी, भरोसा, भाईचारा, बेरोजगार, भूख, देश, जिनके लिए लिखी जाती है कविताएं, अनपढ़, खुरदरी हथेलियां, परम गुरु, दलाई लामा आदि महत्वपूर्ण कविताएं शामिल है। इस संकलन की विशेषता यह है कि इस संग्रह में केवल स्त्री विषयक कविता ही नहीं बल्कि जीवन के विभिन्न परिप्रेक्ष्य मसलन बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, भुखमरी, अशिक्षा, आतंकवाद जैसे समसामयिक विषयों पर लिखी गई कविताएं शामिल हैं। अनामिका की रचनाशीलता की विशेषता है कि उन्होंने अपने काव्य-संग्रहों के अंतर्गत विषयों प्रसंगानुसार, आवश्यकता एवं स्पष्टता को ध्यान में रखते हुए उसे अलग-अलग खंडों में विभक्त किया है।

पांच भागों में विभाजित अनामिका का आठवां कविता संग्रह **दूबधान (2007)** भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में कुल 79 कविताएं शामिल हैं। 'जोगिनिया कोठी' शीर्षक के अंतर्गत तुलसी का झूला, राधा की बेटियां जैसे कविताओं को प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह 'पेड़ हरे स्तन है मां के' शीर्षक के अंतर्गत खिलौना, गयी रात का प्लेटफार्म, धनकटनी, दोपहर, डाकिया, शाम, नदी आदि कविताएं स्थानित हैं। 'गृहलक्ष्मी' शीर्षक के अंतर्गत लेडीज संगीत, खंडिता, अभ्यागत, विमान, पत्नी, सर्वजनिन चौका, यौन दासी, जूएँ आदि कविताएं शामिल हैं। अंतिम शीर्षक 'मायानगरी' के अंतर्गत मायानगरी का प्रथम वर्ष, गठरी, घूरा, दीवाली, वर्किंग विमेन हॉस्टल, लंबी छुट्टी पर हैं ईश्वर, अस्तबल जैसी कविताएं द्रष्टव्य हैं।

टोकरी में दिगंत थेरी गाथा : 2014 कविता संग्रह राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से सन् 2015 में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 109 कविताएं शामिल हैं। पुरोवाक् में आम्रपाली, कूड़े में पन्नियाँ, थर्मामीटर, कीमोथेरेपी के बाद, एवं शीर्षक 'थेरियों की बस्ती', 'ये मुजफ्फरपुर नगरी है, सखियों', 'चलो दिल्ली चलो दिल्ली - वैशाली एक्सप्रेस : 2009' आदि कविताओं को इस इस संग्रह की प्रमुख कविताओं के रूप में देखा जा सकता है। केदारनाथ सिंह कहते हैं – "अनामिका के नए संग्रह 'टोकरी में दिगंत थेरी गाथा : 2014' को पूरा पढ़ जाने के बाद मेरे मन पर जो पहला प्रभाव पड़ा वह यह कि यह पूरी काव्य कृति एक लंबी कविता है, जिसमें अनेक छोटे-छोटे दृश्य प्रसंग और थेरियों के रूपक में लिपटी हुई हमारे समय की सामान्य स्त्रियाँ आती हैं।"[1]

हाल ही में वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से अनामिका का कविता संचयन **'एक कस्बाई लड़की की डायरी' (2019)** प्रकाशित हुआ है। यह संकलन उनके आरंभिक दो कविता संग्रह 'शीतल स्पर्श एक धूप को' एवं 'गलत पते की चिट्ठी' का एकत्र संचयन है। इसके अंतर्गत 'नब्बे के बाद की कविता क्षतिपूर्ति सिद्धांत के सामने आई थी' एवं 'स्त्री कविता का ठिकाना' शीर्षक से दो लेख भी उल्लेखनीय हैं।

[1] अनामिका, (2015). टोकरी में दिगन्त थेरीगाथा : 2014. फ्लेप से

पानी को सब याद था (2019) कविता संकलन अनामिका की सद्य: प्रकाशित कृति है। इसका प्रथम संस्करण राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में कुल 62 कविताएं चयनित हैं। इसी संकलन के अंतर्गत 'एक ठो शहर था और एक थी निर्भया' शीर्षक से पाँच अंकों की लंबी कविता प्रकाशित है। कमरधानियाँ, टैगोर को मेरा प्रेमपत्र, सांत्वना पुरस्कार, रूसी औरतें, क़स्बे में शेक्सपियर शिक्षक, अष्टावक्र, निर्भया : उत्तरकांड, विस्थापन बस्ती की माँएँ, वानप्रस्थ, स्त्री सुबोधिनी : उत्तर कथा : शूर्पणखा जैसी कविताएं संकलित हैं।

वैसे तो अनामिका ने साहित्य की दुनिया में अपनी पहचान एक सशक्त कवयित्री के रूप में बनाई है लेकिन इसके अलावा उन्होंने उपन्यास, अनुवाद एवं संस्मरण आदि विधाओं में भी समय-समय पर सार्थक हस्तक्षेप किया है। यह सच है, अनामिका को उपन्यास विधा के क्षेत्र में विशेष पहचान नहीं मिल पाई। उन्होंने अब तक 5 उपन्यास लिखे हैं। सन् 1982 में 'पर कौन सुनेगा' (वाणी प्रकाशन, दिल्ली), 1995 में 'मन कृष्ण मन अर्जुन' (साहित्य रत्नाकर, कानपुर), 2000 में 'अवांतर कथा' (किताबघर प्रकाशन, दिल्ली), 'दस द्वारे का पिंजरा' (2007), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, तिनका तिनके पास' (2007), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली आदि उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में अनामिका ने अत्यंत व्यापक फ़लक पर भारतीय संदर्भ में स्त्रियों की दयनीय स्थितियों की गहरी पड़ताल की है।

'एक ठो शहर था एक थे शेक्सपियर', 'एक थे चार्ल्स डिकेंस' शीर्षक से उन्होंने कुछ संस्मरण भी लिखे हैं। **कहानी संग्रह** के रूप में 'प्रतिनायक' (1979) कहानी संग्रह बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना से प्रकाशित हुई है, जिनमें कुल 11 कहानियां संग्रहीत हैं। यह सभी कहानियां मानव जीवन के गंभीर जीवन प्रसंगों को उद्घाटित करने में सफल हैं। **अनुवाद** के क्षेत्र में अनामिका ने गिरीश कर्नाड के 'नागमंडल' के साथ 'रिल्के की कविताएं', 'एफ्रो इंग्लिश पो पोएम्स', 'मेन ओर नॉट बियोंड रिपेयर', 'अटलांत के आर पार', 'कहती है औरतें' आदि कवियों की चर्चित कविताओं का अनुवाद कार्य किया है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि अनुवाद के क्षेत्र में अनामिका का यह प्रयास एक महिला कवयित्री की भारतीय संदर्भों की समझ को द्योतित करता है।

आलोचना ग्रंथ की ओर गौर करें तो अनामिका ने विशेषकर स्त्री -विमर्श को अपनी रचनाशीलता के आधार के रूप में ज्यादा महत्व दिया है। उनकी कुछ आलोचनात्मक पुस्तकें निम्नलिखित हैं – 'स्त्रीत्व का मानचित्र' (2001), सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 'पानी जो पत्थर पीता है' (2005), प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 'मन मारने की जरूरत' (2006), सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 'स्त्री विमर्श का लोक पक्ष' (2012), वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली , 'मौसम बदलने की आहट' (2012) सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, 'स्त्री विमर्श की उत्तर गाथा' (2012) सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली आदि।

अनामिका ने साहित्य की लगभग विधाओं में अपनी कलम चलाई है। संवेदना के साथ समाज की गहरी समझ को उनके साहित्य में देखा जा सकता है। विशेषकर स्त्री जीवन एवं मुक्ति के प्रसंगों पर उनका साहित्यिक योगदान निःसन्देह प्रशंसनीय है। बहुचर्चित साहित्यकार के रूप में अनामिका को अनेक सम्मान से सम्मानित भी किया गया है। जिनमें राजभाषा परिषद पुरस्कार (1987) : नयी दिल्ली, भारत भूषण अग्रवाल स्मृति का पुरस्कार (1995) : नयी दिल्ली , साहित्यकार सम्मान (1997) : हिंदी अकादमी, दिल्ली , गिरिजा कुमार माथुर सम्मान (1998), परंपरा सम्मान (2001), मुनमुन सरकार पुरस्कार (2003), साहित्य सेतु सम्मान (2004), केदार सम्मान (2008), स्पंदन कृति पुरस्कार (2010) एवं ऋतुराज सम्मान आदि पुरस्कार शामिल है।

अपर्णा महांति की रचनाधर्मिता

समकालीन ओड़िया कविता में अपर्णा महांति अपने समय की चर्चित तथा लोकप्रिय कवयित्री हैं। निस्संदेह वह ओड़िया समकालीन स्त्री कविता आंदोलन की सफल हस्ताक्षर हैं। कविता के साथ-साथ अन्य सृजनात्मक विधाओं संगीत कला में उनकी रुचि रही है। बाबा बैकुंठनाथ के आश्रम से उनकी प्रथम कविता का उद्घोष होता है। पुराने कटक जिला के जलैकावाणी पत्रिका में सन् 1963 में उनकी पहली कविता का 'निवेदन' नाम से एक भक्ति-परक रचना प्रकाशित हुई। वह खुद कहती हैं कि व्यवस्थित रूप से उनका रचना कर्म 1975 के बाद से ही प्रारंभ हुआ। इसके बाद वह लगातार लिखती रहीं। किंतु पुस्तक के रूप में रचनाओं के प्रकाशित होने में एक लंबा समय लग गया। सन् 1991 में उनका प्रथम

कविता संग्रह 'अव्यक्त आत्मीयता' नाम से कटक से प्रकाशित हुआ। कविताओं के माध्यम से पितृसत्ता से सीधे टकराने के कारण शुरुआती दौर में उनको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनकी कविताओं को लंबे समय तक अप्रकाशित रखा जाता रहा। इसी बीच धीरे-धीरे सामाजिक चेतना एवं मुक्त आवाज को लोगों ने पहचानना शुरू किया और उनकी रचनाशीलता को लोगों ने स्वीकार करना शुरू कर दिया।

अव्यक्त आत्मीयता (1991) अपर्णा महांति का प्रथम कविता संकलन है। इस संकलन में कुल 27 कविताएं संग्रहीत हैं। अनुक्रमणिका में सम्पूर्ण कविताओं को दो भागों 'आवेग' एवं 'अंगीकार' के रूप में विभक्त किया गया है। संपर्क, प्रिय सन्निधि, भूल, प्रतीक्षा, स्थितिमय, अभीप्सा, अतिक्रमण, शिमिलिफुलरे, गोपन वर्षा, राधार प्रश्न, स्थिति-अनुपस्थिति, 'समुद्र परी तो' प्रीति, सुख, तनु अतनु, अश्वमेध यज्ञ, मुँ, मुक्ति, भय, स्पष्ट कथन, घर आदि कविताएं इस संकलन में संग्रहीत हैं। इसके अलावा इस संकलन में कई जगहों पर मिथ् का सुंदर प्रयोग हुआ है। राधा, अश्वमेध यज्ञ आदि के प्रतीकात्मक प्रयोग ने कविता के अंतर्मन को एक विराट संभावना से भर दिया है।

असती (1993) अपर्णा महांति का दूसरा कविता संकलन है। यह संग्रह ओड़िशा बुक स्टोर, कटक से प्रकाशित है। इस संकलन में कुल 24 कविताएं संकलित हैं। कुमारी, इच्छामयी, प्रतिरूप, नियंत्रण, आऊ केबे दोष देबी नाई, विश्वास, रूपांतर, प्रतिश्रुति, अयसकांत स्पर्श, अकृतज्ञ, दुईकुल, प्रीतिप्राण, विदाय, आकाश-समुद्र-फूलबन, असती, नित्यरास, किशोर प्रेमिका मोर, कविता, आदि कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने मानव के रूप में एक स्त्री के हृदय-पीड़ा को अभिव्यक्त दी है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की असह्य स्थिति के बीच जिजीविषा का वर्णन का प्रशंसनीय है।

निशब्दरे (1994) अपर्णा महांति का तृतीय काव्य संकलन है। यह संकलन ओड़िशा बुक स्टोर, कटक से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में आघात, लक्ष्मी, जन्हर लुह, बोइत बंदाण, प्रश्न, पाचिरी, धर्ममास, कर्फ्यू, शब्दटीए, कबिर व्यथा, माँ, मो झिअकु, मानस संतान, मंदिर ओ वेश्यालय, स्पर्श, सबा पछ धाडीर स्त्रीलोग, यात्री ,उत्सव, लगाम, कृसबिद्ध आदि कविताएं शामिल हैं। इस संग्रह में स्थित

लगभग कविताओं में मानवीय मूल्य विघटन पर चिंता जताई गई है साथ में अधिकांश कविताओं में स्त्री-वादी दृष्टि देखने को मिलती है।

चतुर्थ काव्य संकलन के रूप में **अतिथि (1997)** ओड़िशा बुक स्टोर, कटक से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में कुल 64 कविताएं संग्रहीत हैं। संग्रह से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यह संकलन एक लंबी कविता है, जहां पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में पिसती एक स्त्री के प्रेम, विच्छेद एवं समसामयिक बौद्धिक चिंतन को सूक्ष्म ढंग से उद्घाटित किया गया है। यह संग्रह बांग्ला तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनूदित है।

पूर्णतमा अपर्णा महांति का पाँचवाँ काव्य संकलन है। वर्ष 2002 में फ्रेंड्स पब्लिशर्स, कटक से यह संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस संकलन में कुल 46 कविताएं संग्रहीत हैं। देह सुख, अन्वेषा, दक्षिणा पवन, भल लागे, आकांक्षा, अमुख्त सुख, उपहार, मिलन, आलाप, चंपाफूल, उधार राहिला नाईं, चित्रकर, सत्यसिद्ध, प्रेमानुभव, अंतिम रमण, मुठाए शून्यता, शुभेच्छा पत्र, पूर्णतमा तथा प्रमाणिता आदि कविताओं को इस संग्रह की प्रमुख कविता के रूप में देखा जा सकता है। लगभग कविताओं में अस्मिता का अन्वेषण ही केंद्रीय विषय के रूप में उभर कर आया है।

झिअ पाईं झर्काटीए (2005) कविता संकलन अपर्णा महांति का छठा काव्य संग्रह है। वर्ष 2007 को इसी संकलन के लिए उन्हें ओड़िया साहित्य अकादमी सम्मान मिला। इस संकलन में कुल 35 कविताएं संग्रहीत हैं। झिअ पाईं झर्काटिए, कुनि झिअ पाईं गीत, जिबाकू दिअ, गंगा, सती, प्रेमहीन, मुक्तिबोध, वर्षा, आत्मरति, संवादपत्र में नारी, कन्या भ्रूण, कवितारे थिबा नारी, अनुकृति, स्वर्ग, अर्पण, नग्नता, प्रेमिकार चिठी, अमृत मृत्यु, असंभव, पगली, अभिसार, चुपचाप नारिटीए, आत्मजननी आदि कविताएं जीवन जगत से गहरे रूप में संपृक्त हैं। इन सभी कविताओं में समकालीन समाज व्यवस्था यथार्थ चित्र एवं स्त्री-मुक्ति का प्रसंग विचारणीय है। बाल मनोविज्ञान के साथ-साथ मिथक का भी सुंदर प्रयोग इन कविताओं में देखा जा सकता है। 'गंगा' कविता में मिथकीय अभिव्यक्ति का सफल सृजन द्रष्टव्य है।

नष्टनारी (2007) के रूप में अपर्णा महांति का सातवां संकलन प्रकाशित हुआ। संकलन की भूमिका में आलोचक महापात्र नीलमणि साहू द्वारा की गई काव्य टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है। इसका द्वितीय संस्करण टाइमपास, भुवनेश्वर से 2009 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह महेंद्र शर्मा द्वारा किए गए हिंदी अनुवाद के रूप में ज्ञानयुग पब्लिकेशन, भुवनेश्वर से प्रकाशित हुआ । इस संकलन में कुल 40 कविताएं संग्रहीत हैं। उसे, क्षण क्षण, चतुर्थ रमण, समर्पण, ध्वंस की वैतरिणी, पद्म सुवास, पहचान रखो, कष्ट दे बहुत, श्रावण में, एक देह में, दांपत्य, सभी नारी अंग की तरह, अपुरुष – कापुरूष – पुरुष, कविता छूने से, कापुरूष देवत्व आदि कविताएं प्रस्तुत संकलन में प्रमुख कविता के रूप में देखी जा सकती है।

आठवें कविता संकलन के रूप में **तीर्थयात्रा** वर्ष 2009 में ज्ञानयुग पब्लिकेशन, भुवनेश्वर से प्रकाशित हुआ। इस संकलन में कुल 40 कविता संकलित हैं। तीर्थयात्रा, निर्वाण, उड़ान, निःसंग ईश्वरी, कविता ओ स्त्री लोक, प्रतियोगी, मो भीतरर निरबता, अदृश्य अश्रु, विदेशी पक्षी पाईं, स्वकीया-परकीया, जणे ठाकुराणीन्क आत्मकाहाणी, देवी, प्रत्याख्यान, असमर्थ, अनावृत, निजा परि निजे आदि इस संग्रह की प्रमुख कविताएँ हैं। आलोचक आशुतोष परिडा के शब्दों में- "कवयित्री अपर्णा महांति प्रेम को देह से अलग कर नहीं देखती हैं। देह यहां प्रेम का तीर्थ है।"[1]

माँ र कांदणा गीत (2010) अपर्णा महांति का नौवाँ कविता संकलन टाइमपास, भुवनेश्वर से प्रकाशित है। इस संकलन में कुल 45 कविता संग्रहीत हैं। पुअ माँ, माआर कांदणा गीत, झिअ सुखरे अछि, इमराना, पत्नी, भावांतर, अस्पष्ट अलसी कन्या, अद्वितीय, निर्वासन, कविर व्यथा, गोटिए विज्ञापन, मुक्ति सकाल, युद्धम देही आदि आदि कविताओं को इस संग्रह की प्रमुख कविताओं के रूप में देखा जा सकता है।

अगले संकलन के रूप में **'निजकु खोजिला बेले'(2012)** कविता संग्रह प्रभा प्रकाशनी, जाजपुर से प्रकाशित हुआ। लेखालेखी करुठीबा स्त्री लोको, आमेमाने, स्त्री लोकोर स्वाधीनता, देख सरकार, पितृसत्यर इतिकथा, कहि हेउनथिबा कथा, नीज-निज सीमारेखा, निजकु खोजिला बेले आदि

[1] परिडा, आशुतोष.(2013).अस्मितार अन्वेषण – 'तीर्थयात्रा'.(संपा – डॉ. गिरीश चंद्र साहू, डॉ. भुवनानंद साहू).अपर्णा पूर्णतमा.पृ.165

इस संग्रह में संकलित कविताएं अस्मिता की खोज करती हुई नजर आती हैं। समसामयिक घटनाओं को अभिव्यक्ति देने के क्रम में संपूर्ण संग्रह अस्मिता की खोज करता हुआ दिखाई देता है।

जोगिनी गीत (2015) अपर्णा महांति का ग्यारवाँ काव्य संकलन है। यह संकलन टाइमपास, भुवनेश्वर से प्रकाशित है। इसमें कुल 38 कविताओं का समाहार है। लंबी कविता के रूप में लिखा गया इस संग्रह ने एक विराट काव्य भूमि को समेटा हुआ है। प्रेम केंद्रीय भाव होते हुए भी देह एवं द्रोह के बीच संघर्ष की कथा इस संग्रह का मुख्य प्रतिपाद्य है। योगी एवं योगिनी का प्रतीकात्मक प्रयोग निःसन्देह कविता के अंतर्लोक को और मजबूत कर देता है। प्रथम कविता में अपर्णा "जननी, भगिनी, जाया / सभी अंश केवल भग्नांश।" कह कर समाज के' रूढ़िवादी चिंतन एवं स्त्री की असहाय स्थिति को दिखाने का प्रयास करती हैं।

अपर्णा का बारहवाँ संकलन **ऐबे मुं प्रेमरे (2016)**, पक्षीघर प्रकाशनी, भुवनेश्वर से प्रकाशित हुआ है। इस संकलन कुल 44 कविताओं का समाहार है। एबे मुं प्रेमरे, जाअ, प्रेमद्रोह, पुरुणा चिठी, ऐते अंधार काहिंकि आजि ?, हाटबाहुडा, पुष्पित जातना, एइ अशिणरे, राधापाद, असहाय ईश्वर, तू सीना चुप हाइजाऊ आदि कविताएँ प्रस्तुत संग्रह में संकलित है।

अग्नि कमलिनी (2017) अपर्णा महांति का अपने समय का महत्त्वपूर्ण कविता संकलन है। यह संकलन टाइमपास, भुवनेश्वर से प्रकाशित है। इस संकलन में कुल 34 कविताएं संग्रहीत हैं। इस संग्रह में मुँ जदि बुझिपारंति, आजी श्रीराम राज्यरे, वाह मर्द !, आऊ केते थर ?, नारीर दुःख, बषरि नारी देह, देहेश्वरी, मुक्ति संसार, अग्नि कमलिनी, एमिति किए ? आदि कविताओं को संकलित किया गया है।

इसके पश्चात **अपर्णा महांति मानक पाई कविता (2019)**, ओड़िशा बुक स्टोर, कटक से प्रकाशित हुआ। समसामयिक जीवन संघर्ष से संबंधित इस संकलन में समाज में एक स्त्री की वास्तविक स्थिति को दर्शाया गया है। संकलन में निर्भया,आसिफा, बेबीना, गौरी लंकेश आदि चरित्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त नारी की दयनीय स्थिति पर प्रश्न एवं बेखौफ प्रतिरोध की भावना प्रतिबिंबित है।

न्यू वेभ पब्लिकेशन, डब्लिन द्वारा अपर्णा का प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह **निःसंग ईश्वरी ओ अन्यान्य कविता (2019)** नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल 50 कविताएं चयनित हैं।

अनुवाद के क्षेत्र में डॉ. महांति के कई पुस्तकों का अनुवाद कार्य किया है, जैसे –गुलजार की कविता का ओड़िया भाषा में अनुवाद 'पोखराज' संग्रह के रूप में, हिंदी कवि कुँवर नारायण की कविताओं का अनुवाद 'आउ केहि नुहें' संग्रह के रूप में एवं 'मो भीतरर स्त्री लोको' संग्रह के रूप में हिंदी कवि पवन करण की कविताओं का अनुवाद द्रष्टव्य है।

अपर्णा ने निबन्ध, पुस्तक संपादन व कई आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें प्रमुख रूप से 'ओड़िआ उपन्यासरे नारी चरित्र', 'अस्मितार परंपरा' (साहित्य अकादमी), एवं अंतरंग आलोचना (ओड़िशा बूक स्टोर, कटक) जैसी पुस्तकों को रेखांकित किया जा सकता है।

समकालीन ओड़िया कवयित्री अपर्णा महांति को ओड़िशा साहित्य अकादमी पुरस्कार (2007) के अलावा कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। जिनमें प्रमुख रूप से 1992 में केंद्रपड़ा द्वारा अभिनन्दन कविता सम्मान, 1993 में गोकर्णिका कविता सम्मान एवं स्वागतिका कविता सम्मान, 1994 में बसंत मुदुलि कविता सम्मान (भद्रक), 1999 में चलापथ पुरस्कार (भुवनेश्वर), सुचरिता श्रेष्ठ कवि पुरस्कार (1999), उपेन्द्रभंज फाउंडेसन कविता सम्मान (2002) : भुवनेश्वर, ध्वनि – प्रतिध्वनि कविता सम्मान (2004) : बालेश्वर, पुनर्नवा कविता सम्मान (2007), विषुव सम्मान (2003) : राउरकेला, साहित्य दर्पण कविता सम्मान (2012), फकीर मोहन साहित्य परिषद कविता सम्मान (2013) : बालेश्वर, कोरापुट सम्मान (2017) : कोरापुट आदि शामिल हैं।

अपर्णा महांति की कविताओं का अनुवाद अंग्रेजी सहित अन्य भारतीय भाषा, जैसे - मराठी, कन्नड़, असमिया, गुजुराती, तेलुगु तथा हिंदी आदि में हुआ है। इसके साथ कई महत्वपूर्ण उपक्रम जैसे केंद्र साहित्य अकादमी की अनुवाद समीक्षक, ज्ञानपीठ चयन समिति में सदस्य के रूप में महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन का कार्य भी अपर्णा करती रही हैं।

3.3 समकालीन स्त्री कविता लेखन

समकालीन हिंदी कविता के परिप्रेक्ष्य में-

समकालीन कविता का फ़लक बहुत व्यापक है। समग्र भारतीय साहित्य ने इस कालखंड को मानव जीवन के विविध रूपों के साथ आत्मसात करने की चेष्टा की है। इसी प्रकार हिंदी एवं समकालीन ओड़िया कविता भी समसामयिक यथार्थ जीवन के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों को व्याख्यायित करती नजर आती है। अस्सी का दशक खासकर हिंदी कविता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस समय तमाम विमर्शों ने कविता सहित अन्य विधाओं को भी समृद्ध किया है। स्त्री, आदिवासी एवं दलित विमर्श ने तो समकालीन कविता को आत्मक्रांति के रूप में स्थापित करने की कोशिश की। अस्तित्व व अस्मिता के सवालों ने नब्बे के दशक को व्यवस्थित रूप प्रदान किया एवं स्त्री कविता लेखन को भी सचेतन दृष्टि मिली। इस समय की महत्वपूर्ण स्त्री रचनाकारों में अमृता प्रीतम, नीलेश रघुवंशी, गगन गिल, अनामिका, कात्यायनी, अनीता वर्मा, निर्मला पुतुल, सुशीला टाकभोरे आदि हैं। समकालीन हिंदी की स्त्री कविता लेखन की परंपरा में नीलेश रघुवंशी का स्वतंत्र स्थान है। प्रार्थना, घर से निकलना, बच्चा संभालने वाली लड़की, फ़ेशियल, जन्म और जातना आदि कवितायें के जरिए निलेश ने समकालीन स्त्री लेखन को समृद्ध किया है। 'जन्म और जातना' कविता में वह लिखती हैं-

"अब तो जैसे नसें फटने लगी हैं आजकल

पीड़ा ही पीड़ा है अभी तो, जाने कब सुख मिलेगा

सब कुछ तुम्हारे हिसाब से चल रहा है"[1]

समकालीन स्त्री विमर्श की चर्चित कवयित्री निर्मला पुतुल आदिवासी समाज से संबद्ध दोहरी पीड़ा एवं शोषण से आहत हैं। इसी प्रकार ग्रेस कुजूर, सरिता बड़ाइक, उज्ज्वला ज्योति तिग्गा, बंदना टेटे,

[1] रघुवंशी, नीलेश.(2015). जन्म और यातना. (संपा.अनामिका). बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन. खंड. 2. पृ. 329

फ्रान्सिस्का कुजूर एवं जासिंता केरकेट्टा आदि की कविताएं खासकर विस्थापन एवं स्त्री समस्याओं को रेखांकित करती हैं। निर्मला पुतुल लिखती हैं-

"क्या तुम जानते हो

पुरुष से भिन्न एक स्त्री का एकांत ?

तन के भूगोल से परे

एक स्त्री के

मन की गांठ खोलकर

कभी पढ़ा है तुमने

उसके भीतर का खोखला इतिहास ?"[1]

समकालीन हिंदी कविता में कात्यायनी अपनी स्वतंत्र पहचान रखती हैं। सिंहावलोकन, मुख़्तसर-सी कुछ बातें, नहीं हो सकता तेरा भला, सात भाइयों के बीच चंपा, हॉकी खेलती लड़कियाँ, दाहक जीवन दाह आदि कविताओं के माध्यम से उन्होंने पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रहार किया है। सीधे और सरल शब्दों में वह अपनी स्थिति को मजबूत करती हैं –

"मौत की दया पर

जीने से / बेहतर है

जिंदा रहने की ख़्वाहिश

के हाथों मारा जाना।"[2]

[1] सिंह, रसाल. (2013). आदिवासी कविता और स्त्री. (संपा. सुधीश पचौरी). वाक्. अंक. 14. पृ. 46

[2] देव, राहुल. (2018). हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य. पृ. 96

कीर्ति चौधरी समकालीन स्त्री कविता लेखन की चर्चित एवं अग्रणी लेखिकाओं में शामिल हैं। बरसते हैं मेघ झर-झर, सोचता हूँ, मौन, कंगाली, दीठ न मिलाओ, कंपनी बाग, अनुपस्थित जैसी कविताएं उनकी गहरी सोच एवं अभिव्यक्ति की तटस्थता को दर्शाती है। इसी क्रम में सुनीता जैन, ज्योत्सना मिलन, स्नेहमयी चौधरी, इंदु जैन आदि कवयित्रियाँ भी वर्तमान पीढ़ी के सफल हस्ताक्षर हैं। इंदु जैन एक मुक्त लड़की की आवाज से आश्वस्त होती हैं, 'लड़की' कविता के माध्यम से वह कहती हैं –

"ये लड़की

हालात को हादसे में बदलने नहीं देगी

उम्मीद को बंजर, जमीन पर

नहीं छिटकाया मैंने"[1]

अनामिका की कविताएं समकालीन स्त्री कविता लेखन को एक वृहत्तर परिप्रेक्ष से संबोध्य करती है। स्त्री जीवन के लगभग सभी पहलुओं को स्पर्श करती उनकी कविताएं सरल एवं बोधगम्य होने के कारण साधारण जन मानस के हृदय को सहजता से प्रभावित करती है। वीणा सिन्हा, वंदना केंगरानी, रति सक्सेना, अनीता वर्मा, संध्या गुप्ता आदि की कविताओं ने आज की स्त्री विषयक रचनाशीलता को नया आयाम देने का कार्य किया है। समकालीन स्त्री कवयित्रियों ने दलित चेतना का नया परिचय दिया है। सुशीला टाकभौरे की ओ वाल्मीकि, सुनो विक्रम, धृतराष्ट्र ने कहा, तुमने उसे कब पहचाना, अनुत्तरित प्रश्न जैसी कविताएं समकालीन स्त्री काव्यधारा को सुदृढ़ बनाती है। इसी प्रकार रजनी तिलक, शांति यादव, अनीता भारती, हेमलता माहेश्वर आदि कवयित्रियों ने इस क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा की हैं। रजनी तिलक की कविता 'औरत-औरत में अंतर है' में वर्तमान नारी की वास्तविक स्थिति को दर्शाया गया है, जैसे –

[1] गुप्ता, रमणिका. (2010). स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने. पृ. 83

"औरत, औरत होती है,

उसका न कोई धर्म

न कोई जाति होती है,

वह सुबह से शाम खटती है,

घर में मर्द से पिटती है

सड़कों पर शोहदों से छिड़ती है।"[1]

हिंदी स्त्री कविता लेखन के कई महत्वपूर्ण कवयित्रियाँ अपने कथा साहित्य के माध्यम से ज्यादा चर्चा में रही हैं। इन कथाकारों ने कविता की दुनिया में भी सार्थक हस्तक्षेप किया है। मसलन ममता कालिया की कविता खाँटी घरेलू औरत : कुछ कविताएं, नवंबर की बारिश, उम्मीद जैसी कविताएं तो अर्चना वर्मा की आजाद, कोचुमोल्लु, आईना, ताजमहल एवं आदि स्त्रीवादी चिंतन की द्योतक हैं। अमृता प्रीतम, कमल कुमार, राजी सेठ, शीला सिद्धांतकर, तेजी ग्रोवर, इला कुमार आदि इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनाकार हैं।

समकालीन हिंदी स्त्री कविता लेखन में शुभा, निर्मला गर्ग, क्षमा कौल, अनुभूति चतुर्वेदी आदि की कविताएं समाज के अधिक निकट हैं। शुभा ने अपनी कविता 'हमें जल्दी है' में बलात्कार समस्या पर अपनी प्रतिक्रिया इस रूप में दर्ज की है-

"बलात्कार के शास्त्र

हमने ही रचे थे

हमने ही बनाया निरंकुशों को

[1] तिलक, रजनी. (2015). औरत-औरत में अंतर है. (संपा. अनामिका). बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन. खंड. 2 पृ. 344

ईश्वर

और फिर उसी ईश्वर की तरह

अंधा विज्ञान भी हमने ही बनाया।"[1]

प्रज्ञा रावत, राजुला शाह, अल्पना मिश्र, रंजना जायसवाल, अंजना बख़्शी, मंजरी श्रीवास्तव, प्रज्ञा तिवारी, पूनम सिंह नीलिमा झा, शशि, रंजनी गुप्त आदि समकालीन स्त्री कविता लेखन की अग्रणी लेखिकाओं में शुमार की जाती हैं। शशि अपनी 'स्त्री' कविता के माध्यम से लिखती हैं –

"गढ़ रही थीं स्त्रियाँ उँगलियों के नोक से

नया इतिहास

चेहरे युद्धों में, पौधे हथियारों में

बदल चुके थे"[2]

कल्पना सिंह लड़कियों को मानवी के रूप में देखना चाहती हैं। 'स्ट्रीट की लड़कियाँ' में वह लिखती हैं–

"लड़कियों ने सहसा पौध

और फिर पौध से सहसा

वृक्षों में बदल जाती हैं

और ईश्वर जाने…"[3]

इस प्रकार समकालीन हिंदी स्त्री कविता लेखन को नया स्वरूप एवं वृहद आयाम देने में कई महिला रचनाकारों का नाम विशेष रूप से ध्यान में आता है। इन कवयित्रियों में किरण अग्रवाल, रश्मिरेखा,

[1] शुभा, (2015). हमें जल्दी हैं. (संपा. अनामिका). बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन. खंड. 2 पृ. 191

[2] शशि, (2015). स्त्री. (संपा. अनामिका). बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन. खंड. 2. पृ 409

[3] गुप्ता, रमणिका. (2010). स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने. पृ. 85

सुषमा सिन्हा, मंजरी दुबे, माया, वाजदा ख़ान, असीमा भट्ट, सुजाता आदि शामिल हैं। इनके साथ आभा बोधिसत्व, अमिता शर्मा, रंजना श्रीवास्तव, लीना मेहेरोत्रा, वंदना शर्मा, विपिन चौधरी, सोनी पाण्डेय, मोनिका कुमार, दोपदी सिंघार आदि की कविताओं में स्त्री विषयक दृष्टि देखने को मिलती है।

समकालीन ओड़िया कविता के परिप्रेक्ष्य में-

80 का दशक समकालीन ओड़िया स्त्री कविता का आरंभिक दौर है। इस समय के आरंभ में प्रतिभा शतपथी, गिरिबाला महांति आदि की कुछ रचनाओं में स्त्रीवादी दृष्टि देखने को मिलती है। 'खुद भी नहीं करेगा साहस' कविता में वह एक स्त्री की नियति को समझने की कोशिश करती हैं –

"इस विशाल देश में

दक्षिण में

औरत जैसे ही साठ वर्ष की होती है

वह चौराहों पर बेताबी से कुछ ढूंढती फिरती हैं।"[1]

इस समय की महत्त्वपूर्ण कवयित्रियों में संघमित्रा मिश्र, सरोजिनी षडंगी, अमीयबाला पट्टनायक, बंदना महापात्रा, अन्नपूर्णा नंद, शुभश्री लेंका, भारती महांति, अनुजानंद आदि प्रमुख हैं। इनके अलावा अर्चना नायक, सुलोचना दास, प्राची मिश्र, सुस्मिता महापात्रा, प्रज्ञाश्री रथ, रत्नबाला स्वाईं इस कड़ी की महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। इनकी कविताओं में स्त्री की जीवनानुभाव एवं प्रतिरोध की वैप्लविक स्वर मुखर है। समकालीन ओड़िया स्त्री कवयित्री गिरिबाला महांति की कवितायें मानवीय मूल्यों को सहेजने के साथ पितृसत्ता से मुठभेड़ करने में समर्थ हैं। 'एक कविता : खुद के विरुद्ध' में वह लिखती हैं-

"ऐसी सांझ में उत्पीड़ित / पर शून्य

खोज रही हूँ मैं अपना रास्ता… / कभी तेज गति से चलती

[1] शतपथी, प्रतिभा. (2011). खुदा भी नहीं करेगा साहस. (अनुवाद & संपा. रमणिका गुप्ता). युद्धरत आम आदमी. स्त्री मुक्ति विशेषांक. पृ. 368

और कभी खुद ही अपने गिर्द चक्कर काटती हुई / अंधी हिरण सी जो

सूंघकर अपनी देह हो जाती है उत्तेजित और अंधी

शांत सौम्य अंधेरे में / मेरे लिए एक मरीचिका है दुनिया

मैं एक यायावर औरत हूँ / वारिस

जिंदगी और मृत्यु के / बाद की जिंदगी की।"[1]

शकुंतला बलियार सिंह, मनोरमा विश्वाल महापात्र, ब्रंहोत्री महांति, रंजीता नायक, विद्युत प्रभा गंतायत, सुजाता चौधरी, अपर्णा महांति, सुचेता मिश्र, ममता दास आदि की रचनाओं में स्त्रीवादी दृष्टि स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। अपर्णा महांति की अधिकतर कविता प्रेम, देह-मुक्ति तथा प्रतिरोध का स्वर अत्यंत तीव्र एवं हृदयस्पर्शी है। 'एक देह में' वह लिखती हैं –

"एक देह में / कितनी न कितनी

देह का अनुभव / भोगी है भोग रही / नष्टनारी

नष्टनारी / कविता की तरह

देह को गढ़ रही, पढ़ रही है

कभी उसकी देह / माटी खिलौने सा

तुच्छ असहाय"[2]

समकालीन ओड़िया स्त्री कविता लेखन की सशक्त कवयित्री गायत्री बाला पंडा की अधिकतर कविताएँ स्त्री जीवन के वास्तविक सत्य को सूक्ष्म ढंग से उद्घाटित करती हैं। मिथकों का सुंदर प्रयोग उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। वह अपनी कविता 'पांचाली' में लिखती हैं –

[1] मोहंती, गिरिबाला. (2011). एक कविता : खुद के विरुद्ध. (अनुवाद & संपा. रमणिका गुप्ता). युद्धरत आम आदमी. स्त्री मुक्ति विशेषांक. पृ. 368

[2] महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा) पृ. 69

"युद्ध और ईश्वर का सामना करने

की स्वभाविकता में स्वच्छल था समय उनका

अपने दीर्घश्वास सहित जूझ-जूझ

एक धार हंसी में बदल जाना / नियति थी मेरी।"[1]

समकालीन ओड़िया स्त्री लेखन की परंपरा में सुचेता मिश्र की कविताएं समाज में मानवीय समता की अपील करती है। अनेक कविताओं में मर्दवादी मानसिकता के विरुद्ध उनकी रचनाएँ विद्रोह करती है। 'आत्मसत्य' में वह लिखती हैं–

"अपमान क्या है मालूम है तुम्हें / जिंदा रहने के लिए

मौन दर्शक दीर्घा भीतर से / जानबूझकर एक बार तुम्हें

चिल्लाना होगा / सौगंध है / फिर मैं

कविता लिखना छोड़ दूँगी।"[2]

इसी प्रकार सुनीति मुंड, सुनंदा प्रधान, प्रीतिधारा सामल, अंगूर बाला परिड़ा, ममतामयी चौधुरी, ओम ईश्वरी कविकन्या, सरोजिनी षडांगी, शर्मिष्ठा साहू, प्रीतिलेखा दास आदि की अधिकतर कविताएं स्त्री समानता, मुक्ति प्रसंग, नैराश्य भाव, जीवन-मूल्य, मृत्य-बोध जैसे केंद्रीय भावों को समेटे हुए है। अंगूर बाला परिड़ा की 'उर्द्ध्व', प्रीतिधारा सामल की 'दर्पणरे नारी' आदि इसी कोटि की रचना है। समकालीन कवयित्रियों ने खासकर गाँव से लेकर अंतराष्ट्रीय स्तर की स्त्रियों की समस्या एवं निदान को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। प्रीतिधारा सामल की कविता 'तिनिथर' में उक्त संदर्भ द्रष्टव्य है –

"सेथर प्रथम थर निंदिली भाग्यकु

जेऊं दिन मो बुढ़िमा कहिला

[1] पंडा, गायत्री बाला, (2006). धूप को रंग. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 61

[2] मिश्र, सुचेता. (2007). मोह अशेष. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 71

झिअ पिलाटा, अंडीरा चंडीन्क परि काहीन्कि हेउछू

संठणा शिख, गछरे चढ़ना, पाणीरे बुड़ना

सेदिन जाणिलि मनीष दुई प्रकारर

मो भाई आकाशरे गुड़ी होई उड़ुथिला

मुं अराए घास, माटी कामुड़ी पड़िथिलि तले।"[1]

समकालीन ओड़िया स्त्री कविता लेखन की वर्तमान पीढ़ी की चर्चित तथा युवा लेखिकाओं में बिजयलक्ष्मी परिड़ा, प्रतीक्षा जेना, मुकुल मिश्र, रिंकि पधान, मानिनी मिश्र, खीरोदिनी बेहेरा, शुभश्री शुभस्मिता, भास्वती बसू, संघमित्रा रायगुरु आदि चर्चित हैं। इनकी कविताओं में पुरुषसवादी मानसिकता के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना ने कविता के अंतर्जगत को जिजीविषा के स्वर से ध्वनित किया है। रिंकि पधान का 'मधुलग्न', मुकुल मिश्र का 'अपूर्णा' तथा प्रतीक्षा जेना की 'स्त्री लोकर शब्दार्थ' जैसे कविता संकलन ने स्त्री के विविध रूपों को पाठक के सामने रखकर स्त्री के वास्तविक जीवन का चित्र खीचा है। समाज की रूढ़िवादी मानसिकता के विरोध में इनकी कविताएँ अस्मिता की खोज करती ओर उन्मुख हैं। मुकुल मिश्र की कविता 'अचिन्हा अस्तित्व' कविता की यह पंक्तियाँ उल्लेखनीय है –

"निजकु चीन्ही पारिलिनी बोली त

आजि / अव्यक्त आवेगर

जंत्रणामय ऋतुश्राब परि / रक्ताक्त

मोर प्रतिटि कबिता, / प्रतिटि शब्द !"[2]

प्रतीक्षा जेना की कविता में स्त्रीवादी दृष्टि स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। कविता संकलन 'स्त्री लोकर शब्दार्थ' में वह पितृसत्ता को खुली चुनौती देती हैं। मुक्ति संकल्प उनकी कविताओं में विस्फोट

[1] सामल, प्रीतिधारा. (2013). दर्पणरे नारी. पृ. 13

[2] मिश्र, मुकुल. (2015). अपूर्णा. पृ. 21

का रूप धारण कर लेता है। एक स्त्री की आत्मकुंठा को उनकी कविताओं से सहज अनुभव किया जा सकता है-

"जा युद्ध ओल्हेइदे कवितारु !!

मादलर तालरे चाल

जा' प्रेम कर।

जाहा बि हेऊ आजी रातिर परिणति !!"[1]

समकालीन ओड़िया स्त्री कविता के अन्य मुखर स्वरों में रंजिता पंडा, अन्नपूर्णा महांति, लिपिका दास, जोस्ना कुमारी नायक, नमिता दास, निरुपमा बेहेरा, अनीता पाणि, एलि महांति, सुस्मिता बेहेरा, कनक मंजरी पट्टनायक आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इनकी कविताओं में स्त्री केंद्रीय विषय के रूप में देखने को मिलती है। समकालीन ओड़िया स्त्री कविता लेखन को खासकर 21वीं सदी की लेखिकाओं के द्वारा काफी प्रोत्साहन मिला है। इस समय की कविताएं नारी जीवन की प्रत्येक समस्याओं को रेखांकित करते हुए गंभीर प्रतिरोध चेतना से प्रभावित एवं संघर्षरत हैं।

[1] जेना, प्रतीक्षा. (2018). स्त्री लोकर शब्दार्थ. पृ.42.

विमर्श की दृष्टि से 80 का दशक काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। 'स्त्री विमर्श' जैसी अवधारणा ने एक अभूतपूर्व दर्शन के रूप में तथाकथित मूल्यों को चुनौती देते हुए नारी मुक्ति आंदोलन को जन्म दिया। लगभग हर प्रांतीय भाषा के लिए यह समय विमर्शमूलक लेखन के आरंभिक दौर के रूप में प्रकाश में आया। स्त्री विमर्श के नजरिए से हिंदी तथा ओड़िया भाषा में भी इसी समय कई रचनाकारों ने अपनी आवाज को मुखर किया। नब्बे के बाद यह स्वर और अधिक व्यापक होने लगा। भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद से प्रभावित समाज में एक स्त्री के अस्तित्व से संबंधित सवालों ने उसे सोचने-समझने को मजबूर कर दिया। यही कारण था इस समय की कवयित्रियों ने अपनी वेदना एवं संघर्ष को व्यापक फ़लक पर देखना शुरू किया। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कारण समय सापेक्ष अपने युगीन लगभग सभी विशेषताओं को आत्मसात करती नजर आती हैं। इस वैशिष्ट्य को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है।

4.1 पितृसत्ता की चुनौतियों के बीच स्त्री स्वर

विमर्श ने स्त्री जीवन एवं संघर्ष से जुड़े सभी प्रसंगों को चिंतन-मनन के क्रम में नए-नए पद्धतियों के साथ विश्लेषित किया है। ध्यातव्य है, पितृसत्ता को स्त्री के व्यक्तित्व विकास में सबसे बड़ी बाधक मनःप्रवृत्ति के रूप में भी स्वीकार किया गया है। साधारण अर्थ में विचार किया जाये तो पितृसत्ता का शाब्दिक अर्थ पुरुष प्रधान समाज से है, जहाँ उत्तराधिकार के लिहाज़ से शक्ति या संपत्ति पर सर्वस्व अधिकार पिता से पुत्र को मिलता है। गौरतलब है कि स्त्रीवादी दृष्टि से इसकी अवधारणा अत्यंत व्यापक तथा विस्तृत है। यह केवल पुरुष वर्चस्ववादी समाज से संबंधित नहीं है, अपितु इसका संबंध उस सामाजिक ढाँचे से है जहाँ समाज एक शक्तिशाली वर्ग के विचारधारा से प्रभावित है। चाहे पुरुष हो या स्त्री, पितृसत्तात्मक समाज सदैव दोनों को प्रभावित करता है। 'स्त्री अस्मिता के विविध पक्ष' पुस्तक में बृजेश कुमार इसी चिंतन को अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं – "भारतीय समाज में स्त्री की पीड़ा का कारण केवल पुरुष ही नहीं, पुरुषवादी दृष्टि के समर्थन में खड़ी स्त्रियाँ भी है, जो अपनी ही बहू और

बेटियों को घृणापूर्ण नजर से देखती हैं।"[1] साधारणतः स्त्रीवादी विमर्श को भारतीय बुद्धिजीवियों ने पाश्चात्य मूल्यों के साथ विचार करने का अधिक प्रयास किया है, जबकि इसे भारतीय दृष्टिकोण से भी समझने की आवश्यकता है। वेदों तथा पुराणों में वर्णित भारतीय नारी देवी, शक्ति तथा मातृस्वरूपा है। बावजूद इसके प्राचीन समय से स्त्री को पुरुष के समकक्ष दर्जा नहीं मिल पाया है। इतना ही नहीं पुरुष हमेशा से ही एक स्त्री को भोग की वस्तु, दासी, अबला आदि रूपों में ही स्वीकार करता आया है। प्रायः यह देखा गया है कि रोजगार व उपार्जन के क्षेत्र में भारतीय उच्च तथा मध्यम वर्ग की स्त्री की भूमिका नगण्य थी। यही कारण है कि रोजगार से सक्षम पुरुषों के लिए एक स्त्री भोग्य वस्तु बन जाती थी। इसका स्पष्ट प्रमाण प्राचीन एवं मध्ययुगीन कविताओं में देखने को मिलता है। नख-शिख वर्णन, स्तन-यौवन तथा स्त्री देह को तुलनीय वस्तु के रूप में अभिव्यक्त किया गया। यही मनः प्रवृत्तियाँ ही पितृसत्तात्मक समाज को संरक्षित करती आई हैं। इसके विरुद्ध आरंभ से ही वह एक गौण चरित्र के रूप में स्त्री समाज में अपने हक एवं अधिकार को दबे आवाज में प्रकट करती आई रही। यह कहना तर्कसंगत है कि जाति, धर्म, वर्ण, लिंग आदि विभेदों में एक स्त्री अपनी स्वतंत्रता खो देती है। स्त्री की यही पराधीनता भारतीय समाज का वास्तविक चित्र है। कई आलोचकों ने इसे 'ब्राह्मणवादी पितृसत्ता' कहकर इसे मौजूदा समस्याओं के आधार पर विश्लेषित करने की चेष्टा की है।

स्त्री विमर्श की दृष्टि से 'पितृसत्ता' सामाजिक शोषण की एक नियोजित व्यवस्था है, जो उत्तराधिकार के समान पिता से पुरुष की ओर अग्रसर होती है। या यूं कहें, पुरुषवादी मानसिकता की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर है जहाँ शोषक ही सत्ताधीश है। पितृसत्तात्मक समाज की एक विचारणीय मान्यता है कि यह मनुष्य को एक समान न मानकर जाति, धर्म, वर्ण आदि से भेद करते हुए उनको ऊंच-नीच वर्गाधारित कर बांटा जाये। इसमें भी कई भेद हैं, जैसे हमारा समाज (भारतीय समाज) एक ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक समाज से संबंध रखता है। इसका अर्थ सामाजिक ढाँचे के अंतर्गत जाति-व्यवस्था के आधार पर ऊंच-नीच का भेद है। इसीलिए इस पद-सोपानीय प्रणाली में सवर्ण पुरुष सबसे ऊपर एवं

[1]कुमार,बृजेश. (2015). स्त्री अस्मिता के विविध पक्ष. वागर्थ. (संपा. एकांत श्रीवास्तव & कुसुम खेमानी). अंक- 239. पृ- 30

दलित स्त्री सबसे निचले पायदान पर है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ऐसे समाज की ओर संकेत करती है जहाँ पुरुष अपने आधिपत्य का विस्तार करता है।

पितृसत्ता का सीधा संबंध पारंपारिक मानसिकता से है। यहाँ एक ओर पुरुषों की शक्ति, उनका आधिपत्य आदि है, तो वहीं दूसरी ओर स्त्रियों की अवमानना, अधीनता आदि से जुड़ा हुआ है। सरल अर्थ में यह एक पुरुषवादी प्रभुत्व संपन्न विचारधारा है एवं आदिकाल से ही यह विचारधारा स्त्री को मनुष्य के रूप में देखने से अस्वीकार करता आया है। आरंभ से ही पुरुष स्त्री को हमेशा एक संपत्ति तथा भोग की वस्तु के रूप में देखता आया है। इसका प्रभाव इतना व्यापक है कि खुद स्त्री भी अपने पति को ईश्वर मान लेती है। पितृसत्ता को समाज की समस्या के रूप में व्याख्यायित करते हुए उसके समाधान पर रमणिका गुप्ता कहती हैं – "कोई एक दूसरे पर राज करे या वर्चस्व जमाए, तो इसे स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकता। दोनों बराबर साथ-साथ चलें, इसी में दोनों की मुक्ति है, अर्थात् स्त्री न देवी, न दासी, बस साथी और पुरुष न देव, न राजा, न स्वामी, बस साथी। यही एक समाधान है, जो स्त्री और पुरुष दोनों के प्रयास से ही संभव है।"[1]

नब्बे का दशक भारतीय स्त्री कविता के लिए असीम आत्मविश्वास के साथ उभरकर आया था। भारत में विचारधारा के स्तर पर स्त्री चेतना एवं विसंगतियों से गुजरती हुई एक मुकम्मल नारी की तस्वीर तैयार कर रही थी। लगभग बीसवीं सदी के अंतिम दशक की कवयित्रियों ने साहस एवं आत्मविश्वास के साथ पितृसत्तात्मक समाज को मजबूती से चुनौती दी। हिंदी एवं ओड़िया साहित्य में इसी समय कई कवयित्रियों ने अपनी आवाज को मुखर किया है। हिंदी में एक ओर जहां गगन गिल,ज्योत्सना मिलन, अनामिका, निर्मला पुतुल, अमृता प्रीतम एवं कात्यायनी आदि ने अपने समाज एवं साहित्य को प्रभावित किया वहीं ओड़िया साहित्य में गिरिबाला महांति, सुचेता मिश्र तथा अपर्णा महांति आदि कवयित्रियों ने रूढ़िवादी समाज व्यवस्था को चुनौती देते हुए मजबूत दस्तक दी।

[1]गुप्ता, रमणिका. (2017). स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास. पृ. 110

हिंदी साहित्य के लिए इस दशक में अनामिका का प्रवेश स्त्री जीवन से संबंधित विचार वैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उनकी कविताएं स्त्री-पुरुष संबंध को बेहतर ढंग से समझती हुई पितृसत्ता पर अपना आक्रोश व्यक्त करती हैं। 'बेजगह' कविता में अनामिका ने अपने समाज के पुरुषवादीमनःप्रवृत्ति को रेखांकित करने का प्रयास किया है। यह कविता पितृसत्तात्मक समाज की मुकम्मल तस्वीर है। जैसे –

"अपनी जगह से गिरकर

कहीं के नहीं रहते

केश, औरतें और नाखून"-

अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे

हमारे संस्कृत टीचर

और मारे डर के जम जाती थीं

हम लड़कियाँ

अपनी जगह पर !"[1]

'डर' शब्द का सूक्ष्म प्रयोग करती हुई अनामिका प्रस्तुत कविता में स्त्री प्रतिरोध की चेतना को स्पष्ट करती हैं। पितृसत्ता के विरुद्ध उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति 'खंडिता' कविता में व्यंग्यात्मकता के साथ एक स्त्री को देवी या ईश्वरी रूप के छद्म सम्मान को दिखाया है। यह कविता परोक्ष रूप से वर्षों से चली आ रही पुरुषवादी मानसिकता को भी नकारती है। -

"अच्छा, सुनो देवि

अब तुम ही मेरी प्रतीक्षा करो

[1]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 15

सदियों से बंद पड़ी हो मूर्तियों में

अकड़ गयी होगी यह पीठ तुम्हारी

एक मुद्रा धारे-धारे।"[1]

वर्तमान समाज में स्त्री-संवेदना के गहरे आत्मबोध को स्वीकार करते हुए अनामिका 'बहाने' कविता के माध्यम से समग्र पुरुषवादी सोच पर प्रतिक्रिया स्वरूप लिखती हैं-

"लाज और लिहाज,पर्दादारी

शाइस्तगी –

भूले-बिसरे इन एहसासों का

मर्म समझते हैं बहाने,

किसी विनम्र इल्तजा के प्रत्युत्तर में

कम-से-कम

मुँह पर ये नहीं थूकते !"[2]

अनामिका की कविताएं पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सीधे तथा सरल शब्दों में चुनौती देती हैं। नए विचार, संस्कार एवं शिक्षा के साथ भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण की प्रवृत्ति उनकी कविताओं को प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद एक संवेदनशील ऊर्जा से भर देती है। पितृसत्ता की जकड़न में भी अनामिका अपनी आवाज को पूर्ण रूप से 'कुहनियाँ' कविता में व्यक्त करती हैं। एक लड़की की शादी उससे पूछे बिना किया जाना एवं ससुराल में उसकी ज़बान बंद हो जाना कितना दूर्भाग्यपूर्ण है; कविता की मूल संवेदना है। ऐसी स्थिति में अनामिका लिखती हैं –

[1]अनामिका. (2019). दूब-धान. पृ. 48

[2]अनामिका. (2019). पानी को सब याद था. पृ. 17

"अच्छा लगता है हमें होना शेषनाग

'आदमी का सर' नामक धरती का।

करवट बदलते हैं हम / तब ही आता है भूचाल।"[1]

समकालीन भारतीय समाज में पितृसत्ता के विरुद्ध मुहिम चलाने वाली कवयित्रियों में अनामिका का स्थान सर्वोपरि है। "अनामिका की स्त्रीवादी दृष्टि रचनात्मक है जो स्त्री-पुरुष संबंधों में सहकार के पक्ष में खड़ी है। वे पितृसत्ता के विरुद्ध असहमति की बेहद मुखर आवाज हैं लेकिन उनके 'मुखर होने' में आक्रोश से ज्यादा जोर तर्क, विश्लेषण और तर्क पर है।"[2]

समकालीन ओड़िया स्त्री कविता में बीसवीं सदी का अंतिम दशक अपने पारंपरिक मूल्यों को चुनौती देते हुए नजर आता है। ऐसे समय में ओड़िया काव्य जगत में अपर्णा का आगमन साहित्य के क्षेत्र में एक विमर्शमूलक लेखन को गति देने के साथ सामंती मूल्यों खारिज करता है। ओड़िशा की आत्मा गाँव में बसती है। यह निर्विवाद सत्य है कि गाँव में पितृसत्तात्मक समाज की अवधारणा को एक खुला मंच मिलता है। पितृसत्ता के चलते गाँव की स्त्रियाँ भेद-भाव की आदत बचपन से ही डाल लेती हैं। मध्यवर्गीय समाज के विसंगतिपूर्ण जीवन में पारिवारिक हिंसा एवं मानसिक तनावों ने अत्याचार की सीमा अतिक्रमण कर दिया है। गाँव में लड़कियों का ससुराल जाना परम सौभाग्य के रूप में देखा जाता है। लगभग देश के हर अंचल विशेष में इसकी सहर्ष स्वीकृति है। दुःख तो तब होता है, जब एक लड़की अत्याचार के कारण ससुराल से पिता के घर आती है और माता - पिता उसे फिर से उनके घर वापस जाने को समझाते हैं। उनका मानना है, अगर वह रहेगी तो यह समाज के नियमों के विरुद्ध होगा। इस प्रकार सामाजिक मनः प्रवृत्ति के विरुद्ध अपर्णा ने अपनी कलम चलाई। स्वानुभूति को उन्होंने अपने विचारों एवं काव्यिक कुशलता के जरिए स्त्री आंदोलनों को नया रूप दिया।

[1] अनामिका. (2019). कविता में औरत. पृ. 87

[2]कश्यप, अभिषेक (संपा.). (2013). अनामिका : एक मूल्यांकन (फ्लैप से)

अपर्णा महांति ने स्त्री जीवन के लगभग हर सुख-दुःख तथा आनंद-विषाद आदि को अपनी कविताओं में जगह दी। पितृसत्ता के विरुद्ध उनका स्वर सदैव प्रबल आत्मविश्वास के साथ विद्रोही है। अपर्णा के काव्य सौष्ठव पर कवि डॉ. सीताकांत महापात्र कहते हैं – "कविता भी अपेक्षा रखती है कवि के आत्मान्वेषण और आत्मविश्वास पर। एक अच्छा कवि अपने अंदर झाँकता है, देखता है बाहर के वैचित्रमय दुनिया को और फिर लिखता है कविता। उसकी असली प्रतिबद्धता रहती है कविता के प्रति। इसीलिए जब उसे आवश्यकता होती है तब वह प्रतिवाद करता है। प्रतिवाद करता है सामाजिक वैकल्य के विरुद्ध में, अपनी सीमित सत्ता के विरुद्ध में; यहाँ तक स्वयं विश्वनियंता के विरुद्ध में।"[1]अपर्णा महांति की यही प्रतिरोधी चेतना पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध खड़ी है। 'जाने दो' कविता में वह लिखती हैं –

"अब जाने दो / मुझे गढ़नी होंगी

विदुषी कन्याओं के गाँव /इच्छामयी पत्नियों के देश

और मनस्विनी/जननियों की पृथ्वी…

केवल / वंश रक्षा की आड़ में / हयवदन वर्ण संकरों को

देह में धारण की बार-बार

मुझे / पुत्रवती होने की

अभिशाप से मुक्त कर दो।"[2]

पितृसत्तात्मक समाज का वास्तव चित्र खींचती अपर्णा ने देह प्रसंग को अपनी कविता में स्थान दिया है। साम्यवादी नारीवाद का प्रभाव उनकी कई कविताओं में देखने को मिलता है। उनकी कविताएं देह, मन तथा यौवन के यथार्थ चित्र के साथ पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था पर कठोर प्रहार करती है। वह लिखती हैं –

[1]महापात्र, सीताकांत. (2013). कवितारे स्नेह ओ साहासर अनबद्य स्वर. अपर्णा पूर्णतमा. (संपा. डॉ. गिरीश चन्द्र साहू & डॉ. भुवनानन्द साहू). पृ. 23

[2]महांति, अपर्णा. (2019). झिअपाँईंझर्कांटिए. पृ. 06-07

"वही / पाँच के संग / भौ नचाते

एक और एक के / कान में कहे

-चरित्रहीन है जी …

अमुक कह रहा था / समुक के संग

इसे केलि करते / उन्होंने देखा था

अमुक रात …।"[1]

अपर्णा की कविता पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित समाज की उस वर्ग के साथ खड़ी है, जहाँ प्रेम एवं यौन संबंधों को सही एवं ठीक-ठीक नहीं समझा गया है। इस दृष्टि में उनकी 'पुनरावृत्ति' कविता को उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होता है। भारतीय लोकतंत्र की वास्तव स्थिति को उजागर करती उनकी यह कविता सामूहिक बलात्कार के खिलाफ शक्त नियम व कानून की माँग करती है। यह कविता उन लोगों की मानसिकता पर प्रहार करती है जो इस दुर्व्यवस्था के साथ खड़े हैं–

"यौन संबंध के साथ

प्रेम को छंदबद्ध किया है, इसीलिए तो

मनुष्य की प्रवृत्ति को

प्रकृति बंधनमुक्त की है।"[2]

'सती' कविता में अपर्णा महांति ने एक स्त्री के त्रासद अनुभवों को शब्दबद्ध करने का सफल प्रयास किया गया है। प्रभुत्ववादी सोच के अंतर्गत स्त्री-पुरुष संपर्क में सतीत्व का परीक्षण पुराणों में भगवान राम के द्वारा भी किया गया है। इस कविता में सती शब्द के अंतर्गत एक स्त्री की अंतर्मन में दबी

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. पृ. 17

[2]महांति, अपर्णा. (2017). अग्नि कमलिनी. पृ. 67

आवाजों को तथा उसमें निहित एक पुंसवादी विचारधारा को पारिभाषित किया गया है। उदाहरणस्वरूप कविता द्रष्टव्य है–

"सतीत्व जाने के भय से

एक स्त्री / कभी भी

सच नहीं कह पाती है।"[1]

गौरतलब है कि अनामिका की 'नारी', 'अनुवाद','चीख', 'विसंगति', 'ईश्वर' आदि एवं अपर्णा की 'पहचान रखो', 'आजिश्रीरामराज्यरे', 'देहेश्वरी', 'मुक्ति संहार', 'जननीरस्वीकारोक्ति', 'लेखालेखिकरुथिबा स्त्रीलोक' आदि कविताओं में पितृसत्ता एवं प्रतिरोध के स्वर को प्रमुखता से देखा जा सकता है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को पुरुष के हित साधन के रूप में देखा जाता रहा है। देवी, शक्ति आदि छद्म नामों से तथाकथित रूप में स्वीकार करने का ढोंग रचते हुए बाल्यावस्था से ही उसकी इच्छाओं को दमित किया जाता रहा है। उनके सभी अधिकारों को पुरुष के हाथों प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में हस्तांतर किया जाता रहा। इस प्रकार की मानसिकता एवं विसंगति के विरुद्ध अनामिका एवं अपर्णा महांति दोनों रचनाकारों ने अपनी कविताओं में पुरजोर विरोध किया है।

[1]महांति, अपर्णा. (2019). झिअपाँईंझर्काटिए. पृ. 17

4.2 निजता में सामाजिकता की प्रतिध्वनि

अनामिका एवं अपर्णा महांति का रचना संसार में 'वसुधैवकुटुंबकम' की संकल्पना दृष्टिगत होती है। वर्तमान समाज में धर्म के नाम पर हिंसा को बढ़ावा दिया जा रहा है। भारत में खासकर हिंदू-मुस्लिम विवाद काफी गहराता जा रहा है। लोग धर्म व मजहब की मूल भावना से दूर हो रहे हैं। अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में स्त्री को केवल स्त्री की दृष्टि से ही देखना उचित होगा। सनातन धर्म का मूल संस्कार तथा विचारधारा महोपनिषद के चौथे अध्याय में उल्लिखित है –

"अयंनिजःपरोवेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानांतुवसुधैवकुटुंबकम् ॥"[1]

'स्व' की चेतना समग्र भारतीय स्त्री को प्रेरणा देती है। आत्मालोचन की प्रवृत्ति अपने बहिर्जगत एवं सही रिश्ते की खोज के लिए विकसित दृष्टि प्रदान करती है। निजता में सामाजिकता की अनुगूँज ही इसका मूल मंत्र है। इस विषय में अजय तिवारी का मंतव्य है – "बहिर्जगत संबंधों और संस्थाओं से निर्मित है, अंतर्जगत नैसर्गिक और आवेगात्मक है ;बहिर्जगत (कम से कम स्त्री के) अंतर्जगत पर हावी होने का प्रयास करता है, स्त्री का अंतर्जगत इस प्रयास का (व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर) प्रतिरोध करता है। जब यह सुध नहीं रहती कि हमारा कोई अंतर्जगत है और उसका होना महत्वपूर्ण है, तब बहिर्जगत हावी होता है, हम उसके प्रभुत्व में होते हैं, उसके सांचे में ढल चुके रहते हैं।"[2]

निःसंदेह दोनों रचनाकारों ने अपनी वेदना, संघर्ष एवं विचारधारा को कविता में अभिव्यक्ति दी है। विशेषकर 'मैं', 'तुम' और 'हम' जैसे संबोधन के साथ दोनों कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री मुक्ति ही मानव मुक्ति के उत्स के रूप में उभरकर आयी है। जब वे कविताओं में 'मैं' या 'तुम' जैसी

[1] https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B5%E0%A4%B8%E0%A5%81%E0%A4%A7%E0%A5%88%E0%A4%B5_%E0%A4%95%E0%A5%81%E0%A4%9F%E0%A5%81%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AC%E0%A4%95%E0%A4%AE%E0%A5%8D

[2] तिवारी, अजय. (2013). अनामिका : एक मूल्यांकन. (संपा. अभिषेक कश्यप). पृ. 28-29

अवधारणाओं के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में निजता को द्योतित करती हैं, वही उनकी कविता के आंतरिक विन्यास में संपूर्ण स्त्री जाति के अन्तर्मन का प्रतिनिधित्व करता है।

जब उनकी कविताओं में 'मैं' का संबोधन आता है, तब यह ध्यान देने योग्य है कि उनका 'मैं' समग्र नारी जाति से संबंध स्थापित करता है। जब वे 'तुम' या 'हम' आदि शब्दों के जरिये अपने अनुभव, पीड़ा, संघर्ष व क्रांति की बात करती हैं, तब उनका संबोध्य सार्वजनिक रूप में देखा जा सकता है। 'हम' शब्द के प्रयोग से अनामिका स्त्रीत्व की चेतना तथा अपने अधिकार की मांग करती नजर आती हैं। वह बड़े ही सरल तथा मार्मिक ढंग से प्रतिवाद करती हुई लिखती हैं -

"एक दिन हमने कहा

हम भी इंसान हैं –

हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर

जैसे पढ़ा होगा बीए के बाद

नौकरी का पहला विज्ञापन !"[1]

अपर्णा महांति का 'नष्टनारी' संकलन इसी निजता में सामाजिकता के उद्देश्यों को समेटा हुआ है। यह एक तथाकथित नष्ट नारी से परे समाज में स्थित स्त्री के वास्तविक जीवन का चित्र है। यहाँ नष्टनारी के रूप में 'मैं' का भाव स्वतः आ जाता है। 'देखो संगिनी' कविता के माध्यम से एक साधारण स्त्री पीड़ा को व्यक्त करती हुई अपर्णा सामाजिक कटु सत्य को उद्घाटित करती हैं-

"देख री संगीनी/ मेरी नग्नता

कितनी सचमुच / निष्पाप निरीह

देखो तो / कैसा ब्याधि-जर्जरित

[1]अनामिका. (2019). स्त्रियाँ. खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 13-14

असहाय, / परित्यक्त / मेरा गर्भाशय।"[1]

'मैं' शब्द के प्रयोग से अनामिका ने भी समसामयिक स्त्री जीवन के सबसे दुःखद अनुभवों को साझा करने का प्रयास किया है। बलात्कार एक घृणित मानसिक विकार है। कविता के जरिये यह प्रसंग हमारे निजी जीवन के अधिक निकट है। जैसे –

"आप सोचते होंगे मैं कौन हूँ !

निर्भया का साथी

जो उस दिन था उसके पास,

साथ था उस दिन भी

जब उसने देह की चप्पल उतारी

और डूब गई एक अनंत चक्र छोड़ती हुई

पानियों में"[2]

जब कोई स्त्री अपने अस्मिता व अस्तित्व का अन्वेषण करती है, तब वह दुविधा में पड़ती है। पितृसत्ता का उपदेश, सामाजिक संस्कार तथा मानसिक दबावों के कारण एक स्त्री असहाय हो जाती है। अपनी दुविधा को प्रकट करती अपर्णा के 'मैं' शब्द के प्रयोग को समष्टिगत अर्थ में देख सकते हैं –

"मैं जानती हूँ

एक नारी को

सबसे बड़ा संकट कब होता है

खुद को ढूंढते वक्त !

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. पृ. 49

[2]अनामिका. (2019). निर्भया : उत्तर कांड. पानी को सब याद था. पृ. 163

किसी के आदेश / उपदेश, शास्त्र-पुराण

सही-गलत रास्तों को न मानते हुए

खुद को ढूँढने के क्षण में "[1]

अनामिका का काव्य संग्रह 'खुरदुरी हथेलियाँ' में निजता से सामाजिकता की प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है। उनकी लगभग कविताओं में अपने अस्तित्व व अस्मिता की अभिव्यक्ति में जनतांत्रिक चरित्रों का वही अंतर्विरोध है, जहां पर एक स्त्री रूढ़िगत मान्यताओं एवं परंपरा को त्यागने के लिए तैयार नहीं है। 'पतिव्रता' कविता में यह चित्र स्पष्ट है। जैसे –

"स्वामी जहाँ नहीं भी होते थे –

होते थे उनके वहाँ पंजे,

मुहर, तौलिए, डंडे,

स्टैंप-पेपर, चप्पल-जूते"[2]

यही पंजे, डंडे, चप्पल-जूते की मानसिकता ही सामाजिक वास्तविकता है, जहाँ कवयित्री निजता में इसे आत्मसात करने की चेष्टा करती है। उनकी गृहलक्ष्मी-कड़ी की कविताएं इस दृष्टि में काफी मायने रखती हैं। जहाँ उनकी कविता पति के पंजे में निहित स्त्री जीवन की व्यथा है वहीं गृहलक्ष्मी कविता इसकी सामाजिक विसंगति की ओर इशारा करती है। 'गृहलक्षी-2' में वह लिखती हैं –

"मैं कैसेरॉल की अंतिम रोटी हूँ !

कैसेरॉल में ही मैं बंद रही हूँ अब तक !"[3]

अनामिका 'गृहलक्षी- 3' में एक स्त्री की सच्ची एवं गहरी संवेदनाओं को व्यक्त करती हैं-

[1]महांति,अपर्णा. (2017). अग्नि कमलिनी. पृ. 75
[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 27
[3]अनामिका. (2019). दूब-धान. पृ. 67

"मुझमें है बंद पड़ी एक दीवार-घड़ी भी !

वो भी हूँ मैं ही !

मेरी चाभी गायब है !"[1]

अपर्णा महांति की 'पद्म सुवास' कविता निजता के आलोक में सामाजिकता को बखूबी ध्वनित करती हैं। नष्टनारी के प्रतीकात्मक प्रयोग में एक स्त्री की यथार्थ उपस्थिति को कविता के माध्यम से व्यक्त करती हैं। वह लिखती हैं –

"नष्ट नारी धीरे-धीरे समझे

कविता में

सामाजिक असामाजिक प्रश्न

कितने अवांतर।

जननी भोगिनी जाया

सभी झूठ माया…"[2]

अनामिका की इस तरह की शैली एवं रचनात्मकता के संदर्भ में अजय तिवारी की यह टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है- "अनामिका का रचना-संसार वास्तविकता के सांचे में निजता को ढालने का रास्ता नहीं चुनता, क्योंकि उनके अनुसार बहिर्जगत पुरुष सत्ता का क्षेत्र है। संभवतः वे न संघर्ष व टकराव के रास्ते पर जाती हैं, न समाज में लड़ती हुई स्त्री की अनेक छवियां उभारती हैं। वे अपनी अभिव्यक्ति के लिए संवेदनशीलता का क्षेत्र चुनती हैं, इसीलिए उनका स्वर प्रधानतः अंतर्मुखी है – लगभग एकालाप की तरह।"[3]

[1]अनामिका. (2019). दूब-धान. पृ. 68

[2]महांति, अपर्णा. (2007).नष्ट नारी (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 26

[3]तिवारी, अजय. (2013). निजता में सामाजिकता का रचाव. अनामिका : एक मूल्यांकन. (संपा. अभिषेक कश्यप). पृ. 32

कुल मिलाकर अनामिका अपनी निजी अनुभूति से बाहर आकर समाज की वास्तविकता को स्पर्श करती हैं। इस दृष्टि से देखें तो अपर्णा की कविताओं में जहाँ प्रेम का स्वर मुखर है वहीं दूसरी ओर अस्मिता की खोज में देह-मुक्ति, लैंगिक विभेद एवं संबंधों से मुक्त होना सन्निहित है। कहने का आशय यह कि उनकी कविता प्रेम के मार्ग पर चलते हुए सामाजिक क्रांति में विश्वास रखती है। 'अतिथि' काव्य संकलन में जहाँ एक ओर प्रेम ही मुख्य प्रतिपाद्य है, वहीं दूसरी ओर परंपरा से मुठभेड़ करने की सामर्थ्य भी दृष्टिगत होता है। कहीं न कहीं अपर्णा की कविताओं में वह विरोधाभास है जहाँ एक प्रेम के साथ द्रोह का एकीकरण है। निजता में सामाजिकता का समन्वय 'मुं' (मैं) कविता में देखा जा सकता है। वह लिखती हैं –

"मैं चुप रही हूँ

चुप रहने को

मेरा चरित्र स्थिर किया है

तुम्हारे समर्पित एक गर्भाश्रय के बाद

मेरा और कोई

सम्मानित परिचय न होने के बावजूद।"[1]

समकालीन हिंदी एवं ओडिया कविता में अनामिका एवं अपर्णा महांति दोनों अपने समय की महत्त्वपूर्ण कवयित्री हैं। उनकी कविताओं में सामाजिकता का विस्तार सहज एवं स्वाभाविक है। चूंकि दोनों समकालीन लेखिका हैं, तो इस प्रसंग में रुस्तम राय की यह टिप्पणी बेहद समीचीन प्रतीत होती है– "वास्तव में, समकालीन कविता में भावसत्य के साथ वस्तुसत्य पर भी ज़ोर दिया जाता है।

[1]महांति,अपर्णा. (2019). निःसंग ईश्वरी ओ अन्यान्य कविता. पृ. 17.

समकालीन कवियों की सौंदर्य-दृष्टि उनकी सामाजिक-दृष्टि की विरोधी नहीं है और उनका जीवन संघर्ष भी उनके सामाजिक संघर्ष से पृथक नहीं है।"[1]

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के गठन में मनुष्य अपने विचार, बुद्धि एवं आपसी सौहार्द्र से इसका सम्पूर्ण ताना-बाना बुनता है। समाज में हो रही घटनाओं का प्रतिबिंब साहित्य में निश्चित रूप से पड़ता है एवं साहित्य का समाज पर। ऐसे में मनुष्य अपने विचार, सुख-दुःख आदि को समाज से साझा करता है एवं साथ ही सामाजिकता के एहसासों से जुड़ जाता है। यही उद्देश्य अनामिका एवं अपर्णा महांति की रचनाओं में स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है।

[1]राय,रुस्तम. (2014). समकालीन कविता में प्रतिरोध का सौंदर्य. वागर्थ. (संपा- एकांत श्रीवास्तव & कुसुम खेमानी). अंक – 231. पृ. 32

4.3 नैतिक मूल्यों की कसौटी पर वैयक्तिक चेतना

समकालीन समाज तमाम अंतर्विरोधों एवं पारंपारिक मूल्य विघटन से प्रभावित है। सामाजिक शोषण, भ्रष्टाचार, उत्पीड़न, लब-जिहाद आदि पहले से काफी आधिक बढ़ चुका है। देश की सांस्कृतिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों की सर्वत्र हत्या हो रही है। संपूर्ण समाज में बर्बरता तथा भय का माहौल है। नैतिक ज़िम्मेदारी से पलायनवादी मानसिक प्रवृत्ति एवं कलुषित राजनीति ने शांति, मैत्री, न्यायिक प्रक्रिया तथा शिक्षण-संस्थानों को दुर्गति के राह पर खड़ा कर दिया है। देश के हर क्षेत्र में मानसिक गुलामी का जहर साधारण मनुष्य के वैयक्तिक चेतना को जहरीला कर दिया है। स्त्रियों के प्रति हो रहे अत्याचारों के मध्य विशेषकर समकालीन भारतीय कवयित्रियों ने अपने गंभीर उत्तरदायित्व को समझा है। इस परिप्रेक्ष्य में समसामयिक हिंदी एवं ओड़िया साहित्य में अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं ने वैयक्तिक चेतना को परिष्कृत तथा परिमार्जित करने का अभिनव प्रयास किया है।

साहित्य सृजन के मूल प्रेरणास्रोत में आत्मप्रकाश की कामना, व्यक्ति एवं समाज की गतिविधियों के प्रति आग्रह, वास्तविक जगत एवं कल्पना जगत के प्रति मोह तथा सौंदर्यप्रियता जैसे कई विषय हैं। सामाजिक जीवन से संबंधित मूल्य-दृष्टि की प्रासंगिकता और सार्थकता के सवालों को अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं एक विमर्शमूलक अनुभव के तहत उजागर करती हुई दिखाई देती हैं।

मानवीय अर्थ में 'मूल्य' मनुष्य की सबसे बड़ी सांस्कृतिक उपलब्धि है। परंतु शाब्दिक अर्थ में यह किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला बाजार भाव, धन, दाम आदि इसी के पर्याय तक सीमित है। अँग्रेजी में 'वैल्यू', जर्मन में 'वैट' तथा फ्रांसीसी में इसे 'वालेर' कहा जाता है। मानवीय मूल्यों के तमाम क्षेत्र हैं। हर क्षेत्र के लिए अलग-अलग मूल्य की संकल्पना की गई है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ मूल्यों को हमारी आवश्यकतानुसार स्थापित किया जाता है एवं कुछ अपने आप हमारे संशयों का समाधान करते हैं। साधारणतः मूल्यों को संस्कृति से जोड़ा जाता रहा बाद में इसका सरोकार पारिवारिक मूल्यों के साथ हुआ और यह कई रूपों में बंट गया। जैसे – नैतिक मूल्य,

सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, राजनीतिक-राष्ट्रीय मूल्य, आर्थिक-आध्यात्मिक मूल्य, सौंदर्यपरक मूल्य आदि।

नैतिक मूल्यों की एक खास विशेषता है कि जब भी वह स्थापित होता है, उसको संदेह की नजर से देखा जाता है। इसी क्रम में जब भी मूल्य अपने ही मूल उद्देश्यों से च्युत होता है, तब वह केवल एक प्रतिक्रियाहीन शब्द की भाँति पड़ा रह जाता है। यहीं पर वह असहमति, ध्वंस, अनास्था, विरोध आदि को जन्म भी देता है। मूल्यों का सीधा संबंध जीवन, परिवेश, समाज, संस्कृति, आदर्शों तथा आध्यात्मिक चिंतनों से है। उत्तम तथा उच्चतर मूल्यों को पारिभाषित करने के क्रम में 'नैतिक मूल्य' ही सर्वोपरि के रूप में स्वीकार किया जाता है। अनुभूति ही इसका आधार है। प्राचीन समय में नैतिक मूल्यों के अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर को समझा जाता था एवं पंडित या पोप उनके प्रतिनिधि के रूप में। उनके प्रदेय नियम ही अंतिम होते थे।

वेदों व उपनिषदों में भी नैतिक मूल्य के रूप में तमाम उपदेश वर्णित है। चतुराश्रम में अलग-अलग नियम व आदर्शों की बात कही गई है। यहाँ परिवर्तित समय एवं जीवन के साथ भी स्त्री परिप्रेक्ष्य का मूल्य सिद्धांत निश्चित रूप में निराशाजनक है। बाद में गांधी, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती आदि ने समय के अनुकूल नैतिक मूल्यों को वैयक्तिक चेतना के स्पर्श से पुनर्जीवित करने की चेष्टा की है।

मानवीय उन्नति तथा विकास के लिए प्रेरणा के क्रम में मनुष्य नैतिक मूल्यों का निर्माण करता है। समय सापेक्ष सामाजिक बदलाव के कारण नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन होते रहे हैं। 21वीं सदी का मानवतावाद नैतिक मूल्यों को सजोने के बजाय विघटन की ओर अग्रसर है। "आधुनिक नारी सजग आत्मचेतना और आत्म-निर्णय से लैस होकर न केवल सामंती परिवेश और रूढ़ मर्यादाओं के गढ़ को तोड़ती है, बल्कि सकारात्मक ढंग से अपने व्यक्तित्व की रचना करती है।.... पति के रूप में पुरुष स्त्री को उतनी ही स्वतंत्रता देना चाहता है, जितना एक बड़े पिंजरे में एक पक्षी को दिया जाता है।"[1] अनामिका एवं अपर्णा महांति ने इन्हीं पारंपारिक तथाकथित नैतिक मूल्यों को मुक्ति संघर्ष की कसौटी पर परखने

[1]त्रिपाठी, डॉ. किरण. (2017). समकालीन हिंदी साहित्य और स्त्री विमर्श. समकालीन साहित्य : वैचारिक चुनौतियाँ. (संपा. मनोज पाण्डेय). पृ. 246

की कोशिश की है। उनकी कविताएं नए स्त्री जीवन के नए शब्दार्थ के साथ प्रतिबद्ध हैं। सामाजिक संबंधों के अंतर्गत स्थापित पारंपारिक पुरुषवादी मानसिकता को दोनों कवयित्री अस्वीकार करती हैं। उनकी कविताओं में एक स्त्री तमाम प्रतिबंधों को तोड़ती हुई अस्मिता की लड़ाई में खुद शामिल होने की जद्दोजहद में है। 'दंगे और कर्मकांड' कविता में अनामिका लिखती हैं –

"बम के धुएँ से लहालोट लगता है

अगरबत्तियों का धुआँ !

अश्लील लगते हैं धार्मिक प्रपंच

उतने ही जितने की हीरे"[1]

दर्शन के मूल भाव को बिना छेड़े वैयक्तिक चेतना के बल पर नैतिक मूल्यों को अनुकूल बनाने में अपर्णा एक सफल हस्ताक्षर के रूप में विस्मरणीय हैं। उनकी 'चतुर्थ रमण' कविता निश्चित ही मनोविज्ञान से संबंधित है। यहाँ मानवीय मन की वैयक्तिक चेतना को इड़, ईगो और सुपर-ईगो से स्वतंत्र कर आत्म-उत्थान की संकल्पना से जोड़ने की कोशिश की गई है। 'हीरे से बंधाए छाती' कहकर वे नैतिक मूल्यों की कसौटी पर व्यक्तिगत चिंतनशीलता पर प्रतिबद्ध रहती हैं। इसी आलोक में वह लिखती हैं –

"प्रेम के

उद्भासित दिगंत से

बुझ-बुझ जाए

राति रति रीति,

नष्ट नारी

हीरे से बंधाए छाती

[1]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 123

रमने

चतुर्थ रमण"[1]

इस संदर्भ में अनामिका की कविता 'लंबी छुट्टी पर है ईश्वर कविता देखी जा सकती है। जैसे –

"लंबी छुट्टी पर

चला गया है ईश्वर !

ख़ुश-ख़ुश तरोताजा लौटेगा

श्रमजीवी एक्सप्रेस से !

आते ही लेकिन गाज गिरेगी सर पर-"[2]

सदियों से प्रताड़ित स्त्री की विद्रोह भावना जागने लगी है। चेतना के विस्फोट में वह अपने पैरों की बेड़ियों को तोड़कर मुक्त होना चाहती है। यही मुक्ति भावना नारी के मन में व्यक्तिगत स्तर तक सीमित न होकर सामाजिक चेतना को विस्तार देती है। नैतिक मानदंडों में स्त्री अपनी स्वतंत्र परिधि से मुक्त होना चाहती है। अनामिका की कविताएं इस बात की मुकम्मल गवाह हैं –

"ये किसकी चीख की तरह पसरे हैं जंगल ?

एक चीख मेरे भीतर दबी है !

उसका बस चले अगर तो

मेरी पसलियाँ तोड़ती

निकल आए बाहर !"[3]

[1]महांति,अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 09

[2]अनामिका. (2019).दूब-धान. पृ. 139

[3]अनामिका. (2019). चीख. खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 43

इसी संदर्भ को सार्थक करती अपर्णा की 'प्रीति से कविता' सामंती मूल्यों के यथार्थ को उजागर करती हैं। वह लिखती हैं –

"प्रीति से कविता

कविता से प्रीति

नष्ट नारी राज्य में

इतनी राजनीति।"[1]

प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार पूजा में प्रयुक्त पत्तियाँ, फूल आदि पर झाड़ू लगाना नियम के विरुद्ध है। उसे नदी में बहा दिया जाता है या फिर छप्पर पर अटका दिया जाता है ताकि हवा, धूप तथा बारिश आदि में उसका तत्व विलीन हो जाए। यही सूक्ष्म अवधारणा को स्त्री जीवन से जोड़ कर अनामिका देखने की चेष्टा करती हैं। 'छप्पर की मालाएँ' में वह लिखती हैं –

"छप्पर के कौओं से ही

कर लूँगी दोस्ती, … …

और एक दिन किसी मनपसंद

कौए के

पंखों पर उड़ जाऊँगी

सारी हद-बेहद के पार।"

अनामिका एवं अपर्णा की कविताएं वैयक्तिक चेतना के आधार पर नैतिक मूल्यों को चुनौती देती हैं। उनकी कविताओं में समकालीन स्त्री की जीवन शैली को समझने के साथ-साथ परिवेश व परिस्थिति को बेहतर बनाने की चेष्टा व निष्ठा है। जहाँ विरोधाभास की प्रकृति है, वहीं नैतिकता का

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. पृ. 22

रूढ़िवादी आवरण तोड़ कर समसामयिक घटनाओं से रूबरू करती उनकी कविताएं सामने आती हैं। व्यक्तिगत चिंतनों में दोनों रचनाकार अलग भले ही हैं लेकिन जहाँ रूढ़ विचारधारा को तोड़ने की बात हो, दोनों की कविताएं संघर्ष को बल देती है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि अनामिका की कविताएं साधारण जनजीवन से जुड़ते प्रसंगों को व्यापक दृष्टि देती हैं वहीं विमर्श के नजरिए से देखें दोनों कवयित्रियों में काफी हद तक समता है। जहां तक अपर्णा की कविताओं में विषय चयन का प्रश्न है, वहाँ वह सजग है। उनकी कविताओं से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कविताएं थोड़ी रहस्यात्मक हैं।

निष्कर्ष के रूप विचार किया जाये तो अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं पारंपारिक नैतिक मूल्यों को अपनी गहरी समझ एवं अनुभव से परिष्कृत करने की कोशिश करती हैं। कविताओं में स्त्री जीवन को परिस्थिति के अनुकूल सही प्रमाणित करने के उद्देश्य से उनकी कविताएं वैयक्तिक चेतना को महत्व देतीं हैं। इस दृष्टि से देखें तो अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं अपनी-अपनी चेतना के उत्स के साथ रूढ़िवादी नैतिक मूल्यों के विरुद्ध संघर्ष करती हैं।

4.4 अस्तित्व बनाम बेजुबान औरत की त्रासदी

समकालीन कविता संवेदना और भाषा दोनों स्तरों पर अपनी गहरी एवं सूक्ष्म विचारधारा को प्रस्तुत करती हुई नजर आती है। अपने समय की चुनौतियों को समझने एवं उससे जूझते समय इस दौर की कविता पारंपरिक रूढ़ियों का सामना करने से नहीं डरती। उसकी समझ उन जरूरी जरूरतों से है, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व व त्रासद अनुभवों से सीधे जुड़ने का प्रयास करता है। वर्तमान की अधिकतर स्त्री विषयक कविताओं में भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण आदि के आर्थिक संबंध स्त्री को निश्चित रूप में वैश्विक बनाने की जद्दोजहद में है। बावजूद इसके स्त्री को और अधिक संघर्ष करना पड़ रहा है। संघर्ष का यह दायरा और अधिक विस्तृत होता जा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो निःसन्देह एक स्त्री मानसिक एवं शारीरिक दोनों स्तरों पर हिंसा का शिकार होती दिखाई देती है। उससे उबरने का प्रयास तो करती है, परंतु समाज की बढ़ती तमाम विसंगतियों एवं पितृसत्तात्मक समाज में वह बेजुबान हो जाती है। यहाँ पितृसत्ता के विकृत सभ्यता के बीच वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है। शिव प्रसाद शुक्ल के अनुसार – "समय के नैरंतर्य को भले ही सुविधानुसार कालक्रमों में निरूपित करके समझा जाए, परंतु स्वर एवं व्यंजनों की संयुक्त अन्वितियों ने युगानुयुग नए शब्दों को गढ़कर बेजुबान के दर्द, पीड़ा, त्रास एवं जिजीविषा को नया अभिगम देकर दलित एवं नारी विमर्श के नए अध्याय की शुरुआत की है।"[1] अनामिका की कविता 'बेजगह' में इसे बखूबी देखा जा सकता है –

"हे परमपिताओं

परमपुरुषों–

बख्शो, बख्शो अब हमें बख्शो !"[2]

समय एवं समाज का प्रभाव अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं से स्पष्ट अनुभूत हैं। दोनों कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री अपने अस्तित्व की तलाश में है। समकालीन कविताओं की

[1]शुक्ल, शिव प्रसाद. (2013). बेजुबान औरतों की त्रासदी. अनामिका : एक मूल्यांकन. (संपा. अभिषेक कश्यप). पृ. 80

[2]अनामिका, (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 14

विशेषता को ध्यान में रखकर देखें तों डॉ. दीपक प्रसाद त्यागी का कथन समीचीन प्रतीत होता है। वह कहते हैं – "यदि मुझसे पूछा जाये कि आज की कविता में क्या देखा जाना चाहिए तो मैं कहूँगा कि आदमी के अस्तित्व और उसके सामने खड़े सारे संकटों को लेकर चिंता और प्रतिबद्धता, मानव होने के मामले में गहरी दिलचस्पी, जीवन और रिश्तों के अनंत वैविध्य के प्रति उत्सुकता और इन सबको अपनी भाषा और शैली में कह पाने की क्षमता"[1]अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में भी यही अस्तित्व की खोज संबंधी विशेषताएँ सफलतापूर्वक प्रस्तुत है। उनकी कविताओं का अन्तःसंघर्ष स्त्री जीवन के त्रासद स्थितियों से भली-भाँति परिचित कराता है। दोहरे शोषण का शिकार होती दलित व आदिवासी स्त्रियों की समस्याओं को सफलतापूर्वक उठाने में दोनों कवयित्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रतिकूल परिवेश में एक स्त्री की मुक्त आवाज को हमेशा दबाने का प्रयास किया जाता रहा है। अपर्णा ने अपनी कविता 'दया कर' में यह सवाल उठाने का प्रयत्न किया है। इसके साथ-साथ प्रस्तुत कविता तत्कालीन ओड़िशा में स्त्री-स्वर के प्रति हो रहे अशालीन मनोभाव की ओर इशारा करती है। जैसे –

"दया कर / कोई उसे / कहो मत

वह कैसे हँसे / बैठे, /कैसे प्रेम करे

कविता में कौन शब्द

दे न दे।"[2]

कहा जाता है कि "यदि बीसवीं शताब्दी गाँधी और मार्क्स के नाम रही तो इक्कीसवीं सदी डॉ. अंबेडकर की शताब्दी है।"[3] यहाँ गौर करने वाली बात है कि विचारधारा का प्रभाव समकालीन

[1]त्यागी, डॉ. दीपक प्रकाश. (2017). हमारा समय और कविता. समकालीन साहित्य : वैचारिक चुनौतियाँ. (संपा. मनोज पाण्डेय). पृ. 46

[2]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 105

[3]पाठक, गजेंद्र. (2017). उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज. समकालीन साहित्य : वैचारिक चुनौनियाँ. (संपा. मनोज पाण्डेय). पृ. 58

कविताओं की मूल अभिव्यंजना को प्रेरणास्रोत के रूप में सदा से प्रभावित किया है। व्यक्तित्व विकास के क्रम में अस्तित्व की पहचान एवं उसकी उपादेयता के संरक्षण के प्रश्न पर गाँधी और अंबेडकर की विचारधारा एक रही है। मार्क्स का वर्ग-विभेद में भी यह एक जड़वादी समस्या के रूप में स्वीकार्य है। अतः एक स्त्री की स्वतंत्रता की व्याख्या समाज के हर वर्ग-विशेष से संबंधित है। लोहिया दर्शन भी इसी संकलपना की चर्चा करता है। एक स्त्री कई रूपों में बेजुबान होती है। माता, पत्नी, बहन आदि विभाजक अस्तित्व में अलग-अलग चुप्पी के चलते व्यक्तित्व के विकास में बाधक समस्याएँ उत्पन्न होती है। वृद्ध विमर्श, बालिका विमर्श आदि में हम एक साधारण स्त्री की अन्तः वेदना को समझ सकते हैं। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि पितृसता का दमनचक्र एक स्त्री की अभिव्यक्ति की सीमा निश्चित ही संकुचित करता है।

अस्तित्व अन्वेषण संबंधी दोहरी पीड़ा को अनामिका ने साक्षात्कार में खूब सहजता व्यक्त किया है। वह मानती हैं कि– "कोढ़ में खाज की तरह अभिशाप दोहरे भी होते हैं। वैसे तो स्त्री होना अभिशाप नहीं, कई अर्थों में वरदानमयी है, पर स्त्री शरीर में पैदा होना कई झमेले भी पैदा करता है: भ्रूणहत्या, यांत्रिक संभोग, बलात्कार, डायन-दहन, मार-पीट, गाली-गलौज, ट्रेफिकिंग आदि सभी वर्गों, नस्लों, वर्णों, धर्मों की स्त्रियाँ इस दृष्टि से बहनें हैं कि देह से जुड़े दुःख और सुख उनके साझा हैं और इस सुख-दुख की अभिव्यक्ति की भाषा भी एक ही तरह से उच्छल है, पर दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, अश्वेत और विकलांग होने की स्थितियाँ दोहरे शोषण की ओर संकेत करती हैं। स्त्री शरीर को श्रम-दोहन और यौन-दोहन के अलावा जातीय/ नस्ली/ धार्मिक पूर्वाग्रह का घटाटोप मनुष्य के रूप में उनकी पहचान भी धूमिल करता है।"[1] केवल इतना ही नहीं इन सभी प्रसंगों पर उनकी रचनाशीलता अपनी विशिष्टता को सूचित करती है।

अनामिका की कविताओं में कई स्थान पर परित्यक्ता स्त्री की त्रासद स्थिति को समझाने का प्रयास किया गया है। 'तुलसी का झोला' इस प्रसंग में बेहद संवेदनशील कविता है। कविता में एक परित्यक्ता स्त्री / पत्नी (रतना) अपने पति से शिकायत करने के साथ-साथ उनको याद करती है। जैसे –

[1]अनामिका. (2019). साक्षात्कार. परिशिष्ट से उद्धृत

"मैंने तुम्हें डाँटा ! / डाँटा तो सुन लेते

जैसे सुना करती थी मैं तुम्हारी…

पर तुमने दिशा ही बदल दी !

थोड़ी-सी फुर्सत चाही थी !

फुर्सत नमक ही है, चाहिए थोड़ी-सी,

तुमने तो सारा समुंदर ही फुर्सत का

सर पर पटक डाला !"[1]

कविता वस्तुतः मिथकीय अभिव्यक्ति के रूप में तुलसी दास एवं पत्नी रत्नावली के प्रसंग को प्रासंगिक बनाने की चेष्टा करती है।

अपर्णा महांति का प्रथम कविता संकलन 'अव्यक्त आत्मीयता' एक स्त्री जीवन के विभिन्न त्रासद अनुभवों का समाहार है। संकलन का नामकरण ही इसी अर्थ को द्योतित करता है। पारिवारिक घुटन एवं संत्रास में व्यथित उनकी कविताएं मानवीय मुक्ति के सभी आयामों को स्पर्श करती है।'दृशअदृश' कविता बेजुबान औरत के त्रासद अनुभवों में अस्तित्व का अन्वेषण करती है। वह कविता में वह कहती हैं कि चाहे दिखे या न दिखे, स्वार्थ-सुविधा, शंका, संशय, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, इंगित आघात, अलंघ्य सामाजिकता आदि से परे जिज्ञासा की आत्मघाती छुरी में से टुकड़े-टुकड़े कट जाने के बाद भी पहले की भाँति अत्यंत आत्मविश्वास के साथ एक स्त्री खुद का अन्वेषण करती है। कविता में एक स्त्री खुद को संबोधित करती हुई कहती है –

"जिज्ञासा की / आत्मघाती छुरी से

टुकड़े टुकड़े में / कट जाने के बाद

एक अपूर्व ठाँव / अपने को

आविष्कारे नष्ट नारी।"[1]

[1]अनामिका. (2019). तुलसी का झोला. दूब-धान. पृ. 20-21

तुलनात्मक रूप में हम इस पंक्ति को अनामिका की 'गृहलक्ष्मी' कविता के माध्यम से समझ सकते हैं। एक स्त्री टुकड़े-टुकड़े में कट जाने के बाद भी नहीं टूटती है। यही उसका अस्तित्व है। अनामिका अपने इसी अहसास को कुछ इस प्रकार व्यक्त करती हैं-

"जैसे की मजदूरनी / तोड़ती है पत्थर –

मैंने तोड़ा खुद को / कूट-कूट कर !

धूल-धूल, कंकड़ी-कंकड़ी हुई।"[2]

कविता में आत्मविश्वास के स्वर होते हुए भी एक नैराश्य का भाव है। मृत्यु संकेत से पूर्व कविता करुण रस से भर जाती है। कहने का अभिप्राय स्त्री जीवन के त्रासद अनुभवों के बीच अस्तित्व को बचा पाना एक नारी के लिए अत्यंत कठिन कार्य है। कविता में इसकी प्रतिध्वनि है -

"आकुल से ऊर्ध्व को / दोनों हाथ उठा

वही ऊभचूभ होती रहे / उसे / डुबाए बहाए

सभ्यता के आरंभ से / अब तक गच्छित

अथल थल / जितनी अश्रुवारि।...

जुबान न खोले / किसी बात से / इधर उसी के कारण

पृथ्वी नष्ट / हो गई कहते / चारों ओर / हो जाये हल्ला।"[3]

अनामिका एवं अपर्णा की कविताएं स्त्री उपेक्षित एवं दोयम दर्जे की पीड़ा के प्रति व्यथित है। 'खुरदुरी हथेलियाँ' कविता संग्रह की पहली कविता 'स्त्रियाँ' पर टिप्पणी करते हुए हरदयाल कहते हैं – "स्त्री जीवन के उन अनुभवों, भावों एवं विचारों को व्यक्त किया गया है, जो पुरुष सत्तात्मक समाज में

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 28

[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 42

[3]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 30

पुरुषाधीन स्त्री अनुभव करती है। जैसे स्त्री उपेक्षित है और उसमें अपनी स्थिति को लेकर विद्रोह का भाव है, लड़कियों की अपनी कोई जगह नहीं है, स्त्री में साहचर्य की निरंतर आकांक्षा होती है, जिसकी कीमत उसे चुकानी होती है, बच्चे और पति के बीच उसका व्यक्तित्व विभक्त होने के कारण वह आत्महत्या भी नहीं कर सकती इत्यादि।"[1] इसी प्रकार 'वृद्धाएँ धरती का नमक हैं' में अनामिका एक बेजुबान वृद्धा की संवेदनशील स्थिति को रेखांकित करती हैं –

"रहती हैं वृद्धाएँ, घर में रहती हैं

लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हों क्षमाप्रार्थी

लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती,

छुप-छुपकर रहती हैं छाया-सी, माया-सी !"[2]

'पहचान रखो' कविता में अपर्णा महांति अपने अस्तित्व की पहचान करवाती हैं। युगों से बेजुबान होती रही नारी का अस्तित्व को वह समझती हैं। इसी सत्य को उद्घाटित करते वह लिखती हैं –

"अपर्णा महांति / पहचान रखों / एक साधारण नारी के हस्ताक्षर

मिटाने से मिट जाएंगे / पलक झपकते

पढ़ने बैठो पढ़ते रहोगे / युग-युग

सभ्यता के प्रथम दिन से अब तक …।"[3]

इसी कविता में ही बेजुबान होने की स्थिति को दर्शाती हुई अपर्णा कहती हैं –

"प्रेमी पति पुरुष के / विलास स्वार्थ अहंकार को

काल-काल भोगने के बाद भी / जुबान खोली नहीं

[1]रुस्तगी, मंजु. (2018). अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री विमर्श. पृ. 110

[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 49

[3]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 38

अपने भीतर / खुद को खोज-खोज

असंख्य संबंध / और संस्कार जंजीरों को / खुद से अलग किया है।

ढेर-ढेर / कटी जीभ / कटे हाथ पाँव / ढेर-ढेर जली चमड़ी में

रसाणित अपरिचय के / स्वर्ण फ़लक पर

रत्न से जड़ित न हुई / आत्म निर्वासित इस / अस्मिता में"

'बेजुबान औरत की त्रासदी' निःसहाय, दलित, आदिवासी व अल्पसंख्यक आदि स्त्रियों के लिए विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। वृद्धाएँ, विस्थापित औरतें आदि के अनुभवों को भी मुक्ति के सवालों से जोड़ कर देखना चाहिए। अपर्णा महांति का मंतव्य है– "संभ्रांत श्रेणी की नारियों के बरक्स दलित एवं आदिवासियों की समस्या ही कुछ अलग है। मजदूरी, विस्थापन जैसी समस्याओं को इन्होंने अधिक भोगा है। तथाकथित सभ्य समाज के मनुष्यों ने इन्हें व्यवहार योग्य वस्तु के रूप में विवेचित किया है। दलित नारियों को साधारण दलित वर्ग के सामाजिक शोषण सहित उच्च वर्ग के यौन शोषण को भी सहना पड़ता है। आदिवासी नारियां प्रायः सामाजिक स्वाधीन विचार की अधिकारिणी होने के बावजूद सभ्य समाज के छल द्वारा प्रताड़ित और लुंठित होती हैं। इसीलिए इन सब के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण रखना भी स्त्री-विमर्श का मुख्य उद्देश्य है।"[1]

'अनुष्टुप' संकलन में 'बहिनाबाई' एक लंबी कविता है। यह कविता संवाद शैली में लिखी गई है। वास्तव में कविता एक साधारण बेजुबान स्त्री का एकालाप है। उसके अन्तर्मन की विराट गाथा है। सदियों से हो रहे अत्याचार की साक्षी है। उदाहरण के रूप में कविता की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है-

"मैं सूखा कपड़ा नहीं थी,

मुझमें बहुत बूँदें बाक़ी बची थीं-

[1]महांति,अपर्णा. (2019). साक्षात्कार. परिशिष्ट से उद्धृत

यह मैंने जाना उसी दिन

उसकी भीगी बाँहें, गीले कंधे देखकर !"[1]

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकास के क्रम में बेजुबान औरत के त्रासद अनुभवों को दोनों कवयित्रियों ने अपने दृष्टिकोण से कविता में सृजित किया है। खासकर उन्होंने एक स्त्री के शारीरिक व मानसिक शोषण को ज्यादा महत्व दिया है। दलित, आदिवासी व अल्पसंख्यक स्त्रियों के वास्तविक जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य को दोनों रचनाकारों ने अपेक्षाकृत कम चयनित किया है। यद्यपि पागल औरत, विस्थापन की स्त्रियाँ,वृद्धा आदि विषय पर दोनों लेखिकाओं का सृजन उल्लेखनीय है।

[1]अनामिका. (2019). अनुष्टुप. पृ. 146

4.5 प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह का सामंजस्य

समाज परिवर्तनशील है। यही कारण है कि समय के साथ मनुष्य के तमाम मूल्यों का विलय एवं उसका नवोदय होता है। स्त्री विमर्श का उद्देश्य व औचित्य यह है कि स्त्री अपने वास्तविक रूप को स्वतंत्रता एवं नवीन परिकल्पनाओं के तहत पूर्णतया सफल बना सके। इस संदर्भ में स्त्री और पुरुष दोनों के सामंजस्य और सह-अस्तित्व में वास्तव रूप में प्रायः भेद दिखाई देता है। प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह जैसी चेतना एक साथ संघर्ष करती नजर आती है। विडंबना है कि वर्तमान दौर की स्त्रियों को अपनी आजादी और अधिकारों के लिए आंदोलन करना पड़ रहा है। परंपरा की समझ, प्रेम के प्रति जागरूकता, शिक्षा व सूचना क्रांति का प्रसार-प्रचार एवं पितृसत्ता के प्रति विद्रोह जैसे-जैसे बढ़ा है, वैसे-वैसे स्त्रियों की हालत बद से बदतर होती जा रही है। प्रतिदिन के अखबारों, न्यूज़ चैनेलों में स्त्रियों के विरुद्ध हो रहे अत्याचारों की सूचना अत्यंत निराशाजनक है।

समकालीन कवयित्री अनामिका एवं अपर्णा की अधिकतर कविताओं में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह का अद्भुत सामंजस्य देखने को मिलता है। दोनों की समझ समसामयिक जीवन चित्र एवं गहरे आत्मबोध से संपृक्त होने के कारण कविताओं में इसकी अनुगूँज स्पष्ट है। इतिहास से संवाद करें तो समझ में आता है कि हमारा समाज सदियों से किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत आजादी, प्रेम करने की आज़ादी, निर्णय लेने की पूर्ण स्वतंत्रता जैसे संवेदनशील विषयों के विरुद्ध एक निष्ठुर सामाजिक संरचना के ताने-बाने से बुना हुआ है। समकालीन कविताओं जहाँ प्रेम का प्रसंग है, वह कई दृष्टियों से पूर्ववर्ती संकल्पनाओं से पृथक है। विशेषतः 'प्रेम' एक दार्शनिक अवधारणा है। दर्शन शास्त्र से इसका गहरा संबंध है। भारतीय काव्य इतिहास में प्रेम तत्त्व का सूक्ष्म प्रयोग स्वकीया-परकीया प्रीति से भी जोड़ा जाता है। यहाँ स्पष्टतः देखा जा सकता है कि प्रेम अपने परंपरा के साथ समसामयिक प्रवृत्तियों का अतिक्रमण न करते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन चर्या के अधिक निकट है। प्रतिरोध की भावना कविता में परंपरा व प्रेम के विरुद्ध नहीं साथ में है। राजेश जोशी कहते हैं – "प्रेम कविता मनुष्यों के मूल रागों का दमन करने वाली स्थितियों का विरोध करती है। साथ ही उन व्यवस्थाओं के चरित्र के आंतरिक खोट को भी उजागर करती है जो नैसर्गिक प्रेम और सृजन की विरोधी है। लोक-लाज तजकर

नाच उठने वाली मीरा हो या मेघदूत का यक्ष हो। प्रेम प्रकृति और प्रतिरोध से जुड़कर व्यापक और उदात्त हो जाता है।"[1]

वर्तमान समय में हम कहते हैं कि समकालीन स्त्री कविता ने पूर्णतः सारे रूढ़िवादी चिंतन व परंपरा आदि को नकार दिया है, तो यह कथन पूर्णतया गलत होगा। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में एक अंतर्द्वंद्व है, जहाँ कविता न तो परंपरा का त्याग करती है और न ही विद्रोह में प्रेम की उपस्थिति को। कहीं न कहीं लगभग कविताओं में विरोधाभाष की प्रकृति है। यह एक साधारण पाठक के लिए चुनौतीपूर्ण है कि कविताओं में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह की उपस्थिति को कैसे सरलीकृत करते हुए मूल पाठ के अंतर्वस्तु का उद्घाटन करे। इस संदर्भ में अनामिका की 'गृहलक्ष्मी' कविता विचारणीय है।

कात्यायनी कविता में प्रेम, परंपरा व विद्रोह की उपस्थिति पर टिप्पणी करती हुई कहती हैं कि – "प्रेम की आज़ादी का सवाल रूढ़ियों से विद्रोह का प्रश्न है। यह जाति-प्रथा के विरुद्ध भी विद्रोह है। सच्चे अर्थों में प्रेम की आज़ादी का प्रश्न स्त्री की आज़ादी के प्रश्न से भी जुड़ा है, क्योंकि प्रेम आजाद और समान लोगों के बीच ही वास्तव में संभव है। प्रेम के प्रश्न को हम सामाजिक-आर्थिक मुक्ति के बुनियादी प्रश्न से अलग काटकर नहीं देख सकते। सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति के एजेंडा से हम इस प्रश्न को अलग नहीं कर सकते।"[2] कात्यायनी का यह कथन अपर्णा महांति की कविताओं पर पूर्णतः लागू होता है। उनकी कविताओं में प्रेम में वह विरोधात्मक रूप है, जहाँ से मुक्ति प्रसंग को नया आयाम मिलता है। प्रेम एक दार्शनिक सत्य है, परंतु जमीनी स्तर पर इसका प्रयोग, जहाँ पितृसत्ता हावी हो और उसमें परंपरा का एक द्वन्द्वात्मक समाज चक्र हो, वहीं पर दोनों कवयित्रियों का समाज को ऐसा विकल्प देना ; प्रशंसनीय है। अपर्णा के 'अतिथि','असती','ऐबे मुं प्रेमरे','जोगिनी गीत' जैसे संकलन इस विशेषता की सफल अभिव्यक्ति है।

[1]जोशी, राजेश. (2004). एक कवि की नोटबुक. पृ. 156

[2]कात्यायनी. (2017). प्रेम, परंपरा और विद्रोह. पृ. 18

'किशोर प्रेमिक मोर' कविता में अपर्णा महांति ने प्रेम एवं विद्रोह को एक साथ समझने की चेष्टा की है। यहाँ यह बताने का प्रयास किया है कि प्रेम का अनुभव आत्ममुक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। कविता में शृंगार रस की प्रधानता होने के बावजूद करुण रस की उपस्थिति को भी नजरंदाज नहीं किया जाना चाहिए। कविता में परंपरा को तोड़ा गया है। प्रेम के लिए कोई बंधन नहीं है, यही कविता का प्रतिपाद्य है। वह लिखती हैं –

"जटिला जंजाल

आऊ कुटिलार कटाल भीतरे

मृत्युकु अपेक्षा करि बसे ।

युग परे युग बितुथाए

ता' श्यामल शरीरर छाई पड़िगले।"[1]

'माँ' र कांदणागीत' में संकलित 'आहामो उदार पक्षी' कविता पितृसत्तात्मक मनःस्थिति के प्रति एक तमाचा है। जो लोग मानते हैं कि स्त्रियों का कविता लिखना, प्रेम करना, स्वच्छंद में घूमने का भी निर्दिष्ट समय होता है, यह कविता प्रतीकात्मक रूप में उसका विरोध करती है। मुक्ति के प्रश्न को उससे जोड़ती है। जैसे –

"आहामो उदार पक्षी / ता' प्रसारित डेणातलु

चतुर स्वार्थपरतार / जेऊँ निष्ठुर पवन

मोआत्मारे बाजे / ताहाहिंमते

अतिक्रम कराइदिए / बहू अलंघ्य क्षुद्रता।"[2]

[1]महांति,अपर्णा. (1993). असती. पृ. 82-83

[2]महांति,अपर्णा. (2010). माँ' र काँदणा गीत. पृ. 36-37

अनामिका की कई कविताओं में स्त्री मुक्ति का प्रसंग प्रेम से शुरू होता है। वह अपनी कविता 'प्रेम' में इसकी सही व्याख्या करती हुई लिखती हैं –

"प्रेम में ही संभव है करना

हर सरहद पार !

प्रेम से बड़ी है प्रेम कहानियाँ,

प्रेम के या खुदा के बारे में सबसे

खूबसूरत बात ये है कि :

आदमी ने गढ़ा उनको या उन्होंने आदमी को –

ताल ठोंक कर आप कह ही नहीं सकते।"[1]

यही प्रेम का वास्तविक स्वरूप है। जहाँ कविता का आभ्यांतर जगत मुक्ति संकल्पों से रूबरू होता है। इस प्रकार अनामिका की कविता 'गृहलक्षी' में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह का भाव स्पष्टतः दिखाई देता है। वैवाहिक संबंधों में प्रेम की परिभाषा कहीं न कहीं उद्विग्नता व आवेग से हटकर आपसी समझदारी के तत्वों से घुल-मिल जाता है। प्रेम के संदर्भ अनामिका की कविताओं में स्त्री-पुरुष की भूमिका और उसमें दमित व शोषित के रूप-विन्यास को ज्यादा महत्व दिया गया है। अनामिका की कविताओं में प्रेम तत्त्व की पुष्टि करते हुए अशोक गुप्ता कहते हैं – "अनामिका के यहां प्रेम का ऐसा निरूपण नहीं मिलता, जिसे पुरुष मानसिकता में 'चटपटा' कहा जाता है। इनके प्रेम निरूपण में अतिरिक्त आवेश और आवेश के स्थान पर समझदारी का तत्त्व है। प्रेम स्त्री-पुरुष दोनों की आवश्यकता है कहीं भी मुखर न होते हुए अनामिका की कविताएं इस तथ्य को उद्घाटित करती है।"[2]

[1]अनामिका. (2015). टोकरी में दिगंत : थेरी गाथा : 2014. पृ. 133

[2]गुप्ता, अशोक. (2013). विमर्श के बहाने. अनामिका : एक मूल्यांकन. पृ. 68

अनामिका की कविताएं प्रेम के अलावा परंपरा के अधिक निकट है। उनकी कविता पारंपरिक जीवन चर्या में रहते हुए रूढ़ विचारधारा को तोड़ने की कविता है।अनामिका जिस धरातल पर परंपरा को उकेरती हैं, वह एक स्त्री की वैवाहिक संबंधों की ओर स्पष्ट संकेत करती है। 'गृहलक्ष्मी' शृंखला की कविताओं में वह एक पुरुष एवं स्त्री का मनोविश्लेषण करती हुई प्रेम के प्रसंगों से दूर चली जाती हैं। इस प्रकार प्रेम एवं परंपरा के संदर्भ में उनकी कविता विरोधाभाषी तो है, किंतु इस विरोधाभाष में भी जो प्रमुख बात है, वह है –'विद्रोह'। 'बेजगह' कविता में अनामिका लिखती हैं –

"परंपरा से छूटकर बस यह लगता है –

किसी बड़े क्लासिक से

पास कोर्स बीए के प्रश्नपत्र पर छिटकी

छोटी-सी-पंक्ति हूँ- / चाहती नहीं लेकिन

कोई करने बैठे / मेरी व्याख्या सप्रसंग !"[1]

अनामिका की कविताओं में विद्रोह का भाव ही सर्वत्र विद्यमान है। यही उनकी कविताओं की विशेषता है। परंपरा से संवाद स्थापित करती कविताओं में अनामिका अपनी प्रतिक्रिया देती हैं। दीदी के माध्यम से वह अपनी विमर्शमूलक लेखन की ओर स्पष्ट संकेत करती हैं। जैसे –

"दीदी कहती है - " क्या ? परंपरा ?

परंपरा खुद ही तो टोपी है।

बड़े मजे में इसको सिर धारो

जब धूप हो, / वरना इसमें खाओ खाजा,

चटपट भाजा –

[1]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 23

कोई नहीं आएगा रोकने को।"[1]

अपर्णा महांति की अधिकतर कविता परंपरा के बरक्स प्रेम के अधिक निकट हैं। प्रेम में जो सरहद से परे होता है, वही कविता में अपर्णा का उद्बोधन है। तथा-कथिक पुरुष वर्ग के द्वारा स्त्री को समय-समय पर 'नष्ट नारी' की परिभाषा से व्याख्यायित किया जाता है। नष्ट नारी के लिए प्रेम क्या है ? 'प्रेम संपर्क' कविता इसका सशक्त उदाहरण है –

"नष्ट नारी जाने / प्रेम कोई संपर्क नहीं

प्रेम / क्रम विकसित एक / दिव्य अनुभव"[2]

विद्रोह की भाव भूमि पर प्रेम की एकनिष्ठता ही विमर्श के सभी अवयवों की निर्दिष्ट परिभाषा देता है। इस संदर्भ यह प्रश्न आना स्वाभाविक है कि क्या एक स्त्री प्रेम से समझौता करते हुए मुक्ति के प्रश्नों से टकरा सकती है ? अपर्णा की लगभग कविताओं में इस विषय पर ज़ोर दिया गया है कि प्रेम ही स्त्री मुक्ति के लिए उपयुक्त साधन है। जैसे –

"नष्ट नारी का प्रेम / प्रथम प्रार्थना / और शेष समर्पण

बीच / कृतज्ञ कुछ पल के / शर्तहीन विरह मिलन....

प्रेम 'समझौता' नहीं कि / खिलाफ होने के भय से

वह आनंद लहरी में / टटोले घाट पत्थर

संकुचित कर दे / देह... मन... प्राण...।

वरण करे / आवेग के उन्मत्त अंगीकार को

प्रेम में उच्छन्न / उसके अस्त व्यस्त

जवाकुसुमी पाँव के पास / पड़े सभी पगचिन्ह

[1]अनामिका. (2019). अनुष्टुप. पृ. 30

[2]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. पृ. 36

दिखें देवोपाम / अक्षय अम्लान।"[1]

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह के सामंजस्य को स्वतंत्र दृष्टि में देखने की कोशिश की गई है। अनामिका की कविताओं की विशेषता है कि उनकी स्त्रियाँ भारतीय पारिवारिक संबंधों में विश्वास रखती हैं। ऐसे में उनकी 'पतिव्रता' जैसी कविताएं इस संदर्भ में सटीक सिद्ध होती हैं। अधिकतर कविताओं में स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधों के बीच यौनिकता का बहिष्कार किया गया है। प्रेम की ऐंद्रिकता एवं आध्यात्मिक अतिवादों से मुक्त उनकी कविताएं प्रासंगिक हैं। अपर्णा की कविताओं पर ध्यान देने से यह ज्ञात होता है कि लगभग कविताएं प्रेम एवं विद्रोह के अधिक निकट हैं। स्त्री-पुरुष प्रेम प्रसंग में 'यौनिकता' शब्द चित्र उनकी विद्रोह भावना को दर्शाता है। कुछ कविताएं आध्यात्मिक रहस्यवाद एवं साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित है। प्रेम में पूर्ण विश्वास, आत्मीयता की तलाश करती उनकी कविताएं प्रेममय भविष्य के लिए प्रतीक्षारत है। दोनों कवयित्रियों की कविताओं में एक साम्यता है, जहां कविता में अंतर्विरोध व विरोधाभास प्रकृति की बात हो। पितृसत्ता के विरोध में जब कविता प्रेम पर ही विश्वास रखती है वहीं दूसरी ओर कविता में परंपरा के साथ उसका एकीकरण देखने को मिलता है। जहां समर्पण का भाव है, वहीं विद्रोह की उपस्थिति है। इस दृष्टि से दोनों कवयित्रियों की रचनाओं में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह की संकल्पना साम्य के धरातल पर अधिक निकट है।

[1]महांति,अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 54-55

4.6 लैंगिक असमानता, यौन-कुंठा एवं वेश्या-वृत्ति के प्रश्न

समकालीन कविता ने अपनी पुरानी रूढ़ विचारधारा से मुक्त होकर स्त्री के छोटे-बड़े संदर्भ तथा लगभग सभी समस्याओं को मानवीय धरातल पर समझने की कौशिश की है। वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण, भूमंडलीकरण आदि ने स्त्री को आर्थिक संघर्ष के साथ जोड़ दिया है। बावजूद इसके स्त्री की समस्या जरा भी क्षीण नहीं हुई है, अपितु बढ़ी ही है। उपभोक्तावादी समाज में पुरुष के सामने स्त्री केवल सौंदर्य का पैमाना बनकर रह गई है। साधारण जीवन से दूर हटकर तथा संवेदनाओं के गहरे आत्मसम्मान के परिधि से कटकर विशेषतः मीडिया मसलन विज्ञापन आदि में एक वस्तु के रूप में ही उभरी है। समाज की विडंबनाओं से लैस लैंगिक असमानता, यौन कुंठा, एवं वेश्या-वृत्ति आदि के प्रश्नों ने कविता को नई जीवंतता प्रदान की है। केवल हिंदी या ओड़िया भाषा के साहित्य में ही नहीं, समग्र भारतीय कविता में यह एक आंदोलन के रूप में पुरुष वर्चस्ववादी मानसिक षडयंत्रों के खिलाफ पूरी ईमानदारी से चिंतन करती है। अनामिका एवं अपर्णा की कविताएं इन्हीं संकल्पनाओं के साथ अपनी उपस्थिति को दर्ज कराती रहीं हैं।

अनामिका एवं अपर्णा महांति कविताओं में अपने समाज के स्त्री संबंधी सभी मनोभावों को उभारने का भरपूर प्रयास देखने को मिलता है। विपरीत परिस्थितियों में एक स्त्री की तमाम समस्याएँ, चिंताएँ, आत्मकुंठाएँ, आकांक्षा, निराशा, अंतर्विरोध एवं मानसिकता आदि प्रतिबिंबित है। आलोचक डॉ. शंभु गुप्त यह स्वीकार करते हैं कि – "किसी चरित्र के अभाव में कवि आत्मवाद की ओर बढ़ता है, अपने में केन्द्रित होता है। ऐसा नहीं है कि कविता में आत्मकेंद्रित नहीं होना चाहिए बल्कि जन से जुड़कर होना चाहिए जिससे पाठक या श्रोता की उसमें खुद के होने की संभावना बरकरार रहे नहीं तो कवि अपने भावों के ऊहापोह, जुगाली या कुंठा में रह जाएगा, ऐसे में कविता कोरी भाववाद या विचारवाद का प्रतिरूप हो जाएगी।"[1]

[1]श्रीवास्तव, डॉ. सरिता. (2014). समकालीन कविता की समझ. पृ. 34

गौर करें तो लैंगिक असमानता, यौन कुंठा एवं वेश्या-वृत्ति जैसे प्रश्नों का संदर्भ सीधे साम्यवादी नारीवाद (समाजवादी व मार्क्सवादी नारीवाद) से जुड़ता है। मार्क्स, लेलिन, स्तालिन, माओ-से-तुंग, एंजेल्स आदि के वर्ग सिद्धांत से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि औद्यगिक पूंजीवाद से लैस पुरुषवादी विचार ने समाज को लैंगिक असमानता, वर्ग, जाति तथा नस्ल के आधार पर विभाजित किया है। इस विभाजन को बनाए रखने में लिंग (जेंडर) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। उदारवादियों के साथ समाजवादी नारीवाद का मानना है कि स्त्रियों के इस परिवर्तनकारी आंदोलन में पुरुष की अहम भूमिका है।

वर्तमान समाज में स्त्री-पुरुष के बीच दूरियाँ बढ़ती जा रही है। लगातार यौन हिंसा, पति-पत्नी विवाद, अलगाव, आदि के कारण यह समस्या और अधिक भयावह होती जा रही है। कमलाकांत त्रिपाठी के शब्दों में कहें तो - "भारतीय स्त्री भी आज इस विश्वव्यापी सौंदर्य उद्योग की बुरी तरह चपेट में है। यह मनुष्य का संकट है और शारीरिक और उसके चलते कुछ आनुषंगिक मानसिक भेदों के बावजूद स्त्री और पुरुष दोनों की नियति मनुष्य की नियति है। जब स्त्री के बदलते चेहरे की बात की जाती है तो उसे मनुष्य के बदलते चेहरे के बृहत्तर परिप्रेक्ष्य से अलग नहीं किया जा सकता। लेकिन विषय का अंतर्निहित स्वर पुरुष की सहभागिता में नहीं बल्कि पुरुष के बरक्स, एक स्वतंत्र इकाई के रूप में, स्त्री में आए बदलाव की ओर इशारा करता प्रतीत होता है। तब यह नारीवाद और उसके मुक्त यौनवाद तक की उछाल का लेखा-जोखा भी मांगने लगता है।"[1] इन सब के बीच भारत में बढ़ती सांप्रदायिक हिंसा ने भारत की एकता और अखंडता को अंदर से तोड़ने की भरपूर कौशिश की है। इसी बीच अनामिका एवं अपर्णा ने अपनी कविताओं के माध्यम से वेश्या-वृत्ति जैसे प्रश्नों को बारीकी से समझने का प्रयास किया है। अनामिका की कविताओं से गुजरते हुए संजीव कौशल लिखते हैं– "अनामिका लगातार ऐसी

[1]त्रिपाठी, कमला कांत. (2013). समाज में स्त्री का बदलता चेहरा और हिंदी की स्त्री उपन्यासकारों में मुक्त यौनवाद. दस्तावेज़. (संपा. रणजीत साह). वर्ष- 35. अंक- 02. पृ.03

जिंदगियों में प्रवेश करती हैं, जिनमें झाँकने तक की फुर्सत नहीं है हमें। वे उन स्पेसिज में जाती हैं, जो सदियों से रीते पड़े हैं, एक आवाज के इंतजार में।"[1]

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में यौन कुंठा के स्वर गंभीर भावभिव्यक्ति के साथ सुनाई देता है। अनामिका अपनी 'स्त्रियाँ' कविता में लिखती हैं –

"भोगा गया हमको

बहुत दूर के रिश्तेदारों के

दुःख की तरह !"[2]

तुलनात्मक रूप में विचार करें तो अपर्णा की 'खुद-ब-खुद' कविता अनामिका की 'स्त्रियाँ' कविता के निकट है। भावाभिव्यक्ति का तेवर एवं शब्दों का चयन आदि सभी दृष्टियों से यह कविता महत्वपूर्ण है। जैसे –

"रति-बंध में आलोड़ित मंथित

जानु-यौवन / तुमने भोगा मुझे

बधू में बारंगना में / वस्त्र में निर्वस्त्र में

शिल्प में शास्त्र में / तुम्हारी दृष्टि में

मेरी नग्नता की / कलाकृति में अंतरण की बेला

मेरा खुद को खुद देखना / केवल निषिद्ध न था

था असुंदर / असामाजिक / और अशालीन"[3]

[1]कौशल, संजीव. (2013). हाथों का पुल बनाती कवयित्री. अनामिका : एक मूल्यांकन. (संपा. अभिषेक कश्यप). पृ. 129

[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 13

[3]महांति, अपर्णा. (2011). खुद-ब-खुद. युद्धरत आम आदमी. (संपा. रमणिका गुप्ता). विशेषांक -108. पृ. 379

अनामिका एवं अपर्णा ने अपनी कविताओं में वेश्याओं के दर्द को समझने का प्रयास किया गया है। पुरुष के मनोविकार से दंशित एवं समाज की उपेक्षित वर्ग की स्त्री के रूप में एक वैश्या की उपस्थिति कविता के भावपक्ष को अधिक हृदयस्पर्शी बना देती है। प्राचीन भारत में देवदासियों की प्रथा प्रचलन में थी। मंजु रुस्तोगी लिखती हैं कि – "भारत में मंदिरों की देवदासियाँ-इतिहास की पहली वेश्याएँ रहीं। कुर्बानी के रूप में यह आत्मसमर्पण पहले सभी स्त्रियों के लिए करना जरूरी था। बाद में मंदिरों की यह पुजारिनें ही दूसरी स्त्रियों की तरफ से आत्मसमर्पण करने लगीं। यही आत्मसमर्पण कालांतर में वैश्यावृत्ति के रूप में फैल गया, जो सभ्यता के विकास के क्रम में समाज के साथ एक काली छाया के रूप में अब भी मानवता के पीछे-पीछे चला आ रहा है।"[1] इस प्रकार देखा जाए तो अनामिका की कई कविताओं में वेश्याओं का दर्द एवं आक्रोश का भाव दिखाई देता है। 'यौन दासी' कविता में यह चित्र स्पष्ट है। जैसे –

"एक गुफा है / मेरे नाभि के नीचे
अपनी ही खूंखारिता से थके / शेर-चीते-अजगर
आते हैं कुछ देर सोने यहाँ पर !
एक नए आखेट की ख़ातिर / जाते हैं सब अगले दिन बाहर,
उनके वे टूटे नाखून, / राल, केंचुल
एक अजब बहनापे में देखते हैं मुझे !
मकड़ी के जालों से आती हुई / सूरज की पहली किरण
पड़ती है बुझी हुई धूनी पर !"[2]

[1]रुस्तगी, मंजु. (2018). अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री-विमर्श. पृ. 119

[2]अनामिका. (2019). दूब-धान. पृ. 55

पुरुषों द्वारा दुष्कर्म (बलात्कार) भी हर साल बढ़ता जा रहा है। संचार माध्यमों का बढ़ता दुरुपयोग यौन अपराधों के बढ़ने में 'प्रेरक शक्ति' का काम कर रहा है। यह भी एक विडंबना है कि जब-जब स्त्री संघर्ष एवं मुक्ति के स्वर को पहले से अधिक मुखर किया है, तब-तब नारी के विरुद्ध हिंसा बढ़ी है। जितना प्रतिरोध बढ़ रहा है, उससे ज्यादा यौन-अपराध बढ़ रहे हैं। इसी का प्रतिबिंब अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में देखने को मिलता है। तुलनात्मक रूप में विचार करें तों अनामिका की 'यौन दासी' की तरह अपर्णा की कविता 'वह क्या और' में केवल वेश्या ही नहीं, एक स्त्री की आत्मकुंठा व अंतःवेदना की स्पष्टोक्ति है –

"प्रश्नाकुलित / उन्मुक्त / अवारित /

वह रूब-ब-रू हुआ / जब …

मूलाधार / योनि, / नाभि / स्तन मंडल

कंठ से… कपाल / सबने सोचा / उसे पथ…।"[1]

अपर्णा महांति की कई कविता रहस्यात्मकता के धरातल पर लिखी गई है। वैश्यालय में एक स्त्री के भी कुछ सपने होते हैं। उन सपनों के बारे में सोचने-समझने वाले समाज में कोई नहीं है। अपर्णा ने वेश्याओं की स्थिति का संदर्भ उनकी आर्थिक परिस्थिति से जोड़कर देखा है। उनके यहाँ भी लज्जा है, भय है, शंकाएँ हैं। उन सब को एकत्र कर वह अपनी कविता 'अंधेरी रात' के माध्यम अपना भाव व्यक्त करती हैं–

"एक बार / सत के इलाके में

पाँव का अभिसार / सभी सपने / सच कर दे।

चोरी छिपे जीतने सब / अँधेरे दरवाजे

दिखें टूटे- फूटे / दरिद्र-दरिद्र"[1]

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 94

तुलनात्मक दृष्टि अनामिका की 'गणिका गली' कविता की प्रस्तुत पंक्ति का उल्लेख इस संदर्भ में उचित प्रतीत होता है। जैसे –

"लेटी हुई छत निहारती

अपभ्रंश का विरह गीत देखती हैं यह गणिकाएँ

पुराने शहर के लालटेन बाजार में

लालटेन तो नहीं जलती पर / ये जलती हैं

लालटेन वाली / धुंदली टिमक से !"[2]

मनोविज्ञान की दृष्टि से यौन प्रवृत्ति (sex instinct) मनुष्यों के प्रबलतम आवेगों में से एक है। सिगमंड फ्रएड कहते हैं कि यह जीव-धर्म की सबसे बड़ी आवश्यकता के रूप में संसार में विद्यमान है। यह चेतना मनुष्यों के मानसिक क्रियाओं को भिन्न-भिन्न रूपों में नियंत्रित करता है। उनके शिष्य 'यूंग' भी इसी मनःप्रकृति को चेतन, अवचेतन एवं अचेतन मन की आत्मकुंठा के रूप में स्वीकार करते हैं। यही चिंतन अपर्णा की कविताओं में स्पष्टतः रूप से दृष्टिगत है-

"प्रथम रमण निद्रा

द्वितीय रमण स्वप्न

तृतीय रमण

पूर्ण जागरण।"[3]

देह / शरीर एक चेतना-उत्स के रूप में समग्र विश्व साहित्य में प्रतिबिंबित है। 21वीं सदी में स्त्री तमाम रूढ़िवादी नैतिक मूल्य व आदर्शों को तोड़ती है। उसके मौन-भंग ने यौन विचार की आदिम

---

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 112

[2]अनामिका. (2015). टोकरी में दिगंत : थेरी गाथा : 2014. पृ. 70

[3]महांति, अपर्णा. (2007). चतुर्थ रमण. नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 07

प्रवृत्तियों को नकार दिया है। उसकी इच्छा, आशा व आकांक्षा की अभिव्यक्ति ने समाज से यौन संबंधी भ्रष्ट धारणाओं को परिवर्तित करने की ओर उन्मुख है। अपर्णा महांति इस संदर्भ में काफी सचेत हैं। वह लिखती हैं–

"मैं गढ़ रही हूँ / मेरा स्वच्छतम

आत्मा अवयव / और नूतन

मेरा निज का / यौन-अनुराग

तुम्हारे मन दर्पण में / सती और सुंदरी

दिखी नहीं सो / माफ करो।"[1]

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं के कैनवास के केंद्र में स्त्री होने के कारण लैंगिक असमानता, यौन-कुंठा एवं वैश्या-वृत्ति जैसे प्रश्नों को उठाने का पूर्णतःप्रयास किया गया है। कविताओं में स्त्री-पुरुष के बीच बढ़ रही दूरी को समझने के साथ पितृसत्ता की विकृत मानसिकता को, अपनी आत्मकुंठा को एवं उससे जुड़े सभी सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को सामने लाने की कोशिश की गई है। शब्द चयन एवं अभिव्यक्ति के तेवर को ध्यान में रखते हुए यह ज्ञात होता है कि अनामिका के बरक्स अपर्णा की कविताओं में दह संबंधी कुंठाभिव्यक्ति अधिक मुखर है। जैसे अपर्णा के शब्दों में कहें तो –

"संभोग क्या / काया सह माया का

क्षण-क्षण / युक्त वियुक्त का

अनाहत अतिक्रमण / सप्रेम समर्पण !!"[2]

[1]महांति,अपर्णा. 2011). खुद-ब-खुद. युद्धरत आम आदमी. (संपा. रमणिका गुप्ता). विशेषांक -108. पृ. 380

[2]महांति,अपर्णा. (2007). क्षण-क्षण. नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 05

अपर्णा महांति की कविताओं में चाहे प्रेम हो, मुक्ति के अध्यात्म हो या फिर सहभागिता के साथ मुक्ति का स्वर हो सबमें यौन शोषण का चित्र ही मुख्य है। अनामिका की 'गणिका गली' कविता के साथ 'चौदह बरस की सेक्स वर्कर्स', यौन दासी','काजल','पतिव्रता' आदि तथा अपर्णा की 'क्षण क्षण','चतुर्थ रमण' के साथ-साथ 'मंदिर और वैश्यालय','देह-सुख','नग्नता' आदि कविताओं में स्त्री-पुरुष संबंधी वैयक्तिक व सामाजिक प्रश्नों टटोला गया है। समसामयिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो अनामिका की कविताएं संवेदना के अधिक निकट हैं। करुणा के साथ विद्रोह का भाव उनकी कविताओं की सबसे बड़ी ताकत है।

4.7 बाल मनोविमर्श एवं मिथकीय चेतना

समकालीन कविता हमारे यथार्थ जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है। सूक्ष्म विचारधारा एवं समसामयिक संघर्ष से प्रतिस्पर्धा करती कविता जीवन के हर पहलुओं को बारीकी से विश्लेषित करने की कोशिश करती रही है। जीवन का आरंभ, गर्भावस्था से लेकर मृत्योपरांत संघर्ष-चक्र में एक स्त्री सदा से उपेक्षित ही रही है। आज भारतीय काव्य जगत में जरूर उनकी समस्याओं को विचार-विनिमय के माध्यम से हल करने की भरपूर प्रयास हो रही हो, परंतु प्रयोगात्मक रूप में जमीनी स्तर पर यह प्रभावशाली प्रतीत नहीं होता है। अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में, विशेषकर बालिकाओं की मानसिक क्रियाओं का वर्णन सूक्ष्म विचारधारा के तहत किया गया है। उनकी कविताओं में बालिकाओं के अंतः एवं बाह्य व्यवहारों का निरीक्षण करते हुए स्त्री-जीवन के तमाम मूल्य और सामाजिकता के रचाव में उनकी भूमिका को महत्व दिया गया है।

एक स्त्री स्वयं संपूर्ण होती है, इसका कारण है कि वह केवल पत्नी के रूप नहीं माता के रूप में भी शोषण की व्यथा को समझती है। मदर टेरेसा मानती हैं कि – "सबको प्यार देना यह खूबी, यह शक्ति औरत में तब और उभर कर आती है, जब वे माँ बनती हैं। माँ बनना, यह औरत को भगवान का वरदान

है।"[1] कहने का अभिप्राय- एक औरत 'माँ' बनने के बाद बच्चों के सभी समस्याओं के प्रति अधिक सजग हो जाती है। यही कारण है कि अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में जहाँ एक स्त्री की शोषण की व्यथा व संघर्ष की गाथा है, वहीं बाल मनोविमर्श की कोमल एवं युक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति है। संवेदना के धरातल पर संघर्ष की कथा है। पितृसता की मानसिकता में एक लड़की की क्या अहमियत है? उसे किस नजरिए से समाज देखता है, उसका विस्तृत विश्लेषण अनामिका की कविताओं के माध्यम से देखने को मिलता है। 'बेजगह' कविता इसका सबसे सशक्त उदाहरण है-

"ओ पगली,

लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं

उनका कोई घर नहीं होता।

जिनका कोई घर नहीं होता –

उनकी होती है भला कौन-सी जगह ?"[2]

समकालीन हिंदी स्त्रीवादी कविताओं में बच्चों की भूमिका को सर्वोपरि रखने में अनामिका की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे बड़ी आत्मीयता के साथ बच्चों के नए-नए अनुभवों को विमर्श की कसौटी पर रखकर समाज से उसका परिचय कराती हैं। इस दृष्टि से उनकी 'मौसियाँ' कविता काफी महत्त्वपूर्ण है। वह स्पष्ट शब्दों में लिखती हैं –

"बाल के बहाने वे गाँठें सुलझाती है जीवन की !

करती हैं परिहास, सुनाती हैं किस्से

और फिर हँसती-हँसाती

दबी-सधी आवाज में / बताती जाती हैं"[1]

[1]रुस्तगी, मंजु. (2018). अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री विमर्श. पृ. 103

[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 15-16

वर्तमान समय में स्त्रीवादी ने कविता मातृत्व को ही जीवन की परम उपलब्धि मानने से इनकार कर दिया है। जहां अनामिका की कविताओं में माँ और बच्चे का संबंध शाश्वत प्रेम का प्रतीक बनकर उभरा है, वहीं अपर्णा की कविताओं में केवल वात्सल्य ही निस्वार्थ प्रेम का प्रतीक नहीं हैं। वह अपनी कविता 'जाने दो' में लिखती हैं –

"आगामी शताब्दी में
मानस-गर्भ वेदना / भोगने को
प्रस्तुत होंगी / करोड़ों बालिकाएँ
उनको ही निर्माण करने
मेरे रक्त-मांस / अस्थि-चर्बी-मेधा
विनियोग करूंगी मैं
मुझे पुत्रवती होने के / अभिशाप से मुक्त कर दो।"[2]

बाल मनोविमर्श संबंधी कविताओं में अनामिका की 'ऋषिका','खिदमत','सत्रह बरस की प्रतियोगी परीक्षार्थी','पत्ता-पत्ता','बूटा-बूटा','ब्लाउज','कूड़े बीनते बच्चे','गलत पते की चिट्ठी','घड़ी के नाम','ढ़ोल','चमकता पत्थर','एक ठो समय था-और एक थी निर्भया' आदि शामिल है। अपर्णा महांति की 'मोझिअकु', 'झिअ पाईं झर्काटिए', 'जय मातादी…', 'पुअ माँ', 'एथर उझाली दिअ कुअ', 'पृथा', 'मुक्ति सकाल' जैसी कविताओं में यह स्वर स्पष्ट देखने को मिलता है।

समकालीन कविता में मिथकों का प्रयोग आरंभिक समय से हो रहा है। प्राचीन पुराकथाओं के तत्त्व जब नए अर्थों के साथ वर्तमान को ध्वनित करता है, उसे मिथक कहा जाता है। मिथकों का जन्म मानवीय आघात एवं आतंक को कम करने, सामाजिक व्यवस्था को मजबूत करने और आदर्शवादी जीवन-मूल्यों को संरक्षित करने के उद्देश्य से हुआ है। जीवन में अलगाव की पीड़ा एवं उससे मुक्ति के स्वप्नों को सार्थक करने के लक्ष्य से मिथक को प्रकृति, परंपरा, व प्राचीन-विश्वासों के नवीन कल्पनाओं

---

[1]वही. पृ. 21

[2]महांति, अपर्णा. (2019). झिअपाईं झर्काटिए. पृ. 07

द्वारा गढ़ा जाता है। मिथक के संदर्भ में अज्ञेय का कथन बेहद समीचीन प्रतीत होता है। वे लिखते हैं – "दिक् काल का प्रस्तार जब मुट्ठी से फिसलने लगता है तब उसको पकड़ में लाने के लायक बनाने के लिए हमें खास मगर अत्यंत लचकीली दूरी की आवश्यकता होती है। वह दूरी और दूरी वह नमनीयता, हमें मिथक बना देता है।"[1]

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया स्त्री कवयित्रियों ने भारतीय प्राचीन मिथकीय स्त्री-पात्रों के माध्यम से वर्तमान नारी को और अधिक सशक्त करने का कार्य किया है। उन्होंने प्रायः सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, पार्वती, गंगा, कुंती, अहल्या, माधवी, शकुंतला, यशोधरा, द्रोपदी, सावित्री जैसी स्त्रियों के माध्यम से आज की नारी को सही दिशा दिखाने की चेष्टा की है। 21 वीं सदी के दो प्रमुख भारतीय स्त्री कवयित्रियों में अनामिका एवं अपर्णा महांति ने अपने-अपने ढंग से मिथकों का प्रयोग किया है। अनामिका मानती हैं कि मिथक हमारी संभावनाओं का उत्कर्ष है। वह कहती हैं – "मिथक एक तरह के ब्लूप्रिंट हैं, जैसे कि ईश्वर भी एक ब्लूप्रिंट है: आदर्श का एक खाका, एक प्रारूप, हमारी संभावनाओं का उत्कर्ष!"[2]'सत्रह बरस का प्रतियोगी परीक्षार्थी' कविता में उन्होंने मिथक का बखूबी प्रयोग किया है। जैसे –

"उस दूध की तरह होता है, बेटे / पहली विफलता का स्वाद !
भग्न मनोरथ भी तो रथ ही है- / भागीरथी जानते थे, जानता था कर्ण,
जानते थे राजा ब्रूसमकड़ जाल वाले / और तुम भी जान जाओगे –
कुछ होने से कुछ नहीं होता / कुछ खोने से कुछ नहीं खोता !
पूर्ण विराम कल्पना है / निष्काम होने की कामना / भी आखिर तो कामना है !"[3]

एक स्त्री की संपूर्ण जीवन प्रक्रिया की आहट को व्यक्त करने के लिए अनामिका द्रोपदी, सीता आदि मिथकों का प्रयोग करती हैं। जैसे –

[1]श्रीवास्तव, डॉ. सविता. (2014). समकालीन कविता की समझ. पृ. 166
[2]अनामिका. (2019). अनामिका से साक्षात्कार. परिशिष्ट से
[3]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 53

"द्रोपदी की साड़ी हो जाती हैं / बातें उनकी ?

चिट्ठी लिखती हुई औरत / पी. सी सरकार का जादू है।"[1]

'अजंता गुफा में एक बालभिक्षु' कविता में अनामिका लिखती हैं –

"दूसरी गुफा की बाईं दीवार पर

धनदेव श्रीकुवेर की पत्नी, देवी हरीतिमा

अपने उन पंद्रह सौ बच्चों की खातिर

एक छड़ी वाला शिक्षक बिठाये हैं"[2]

अनामिका की कविताओं में मिथकों के प्रयोग को विश्लेषित करते हुए दिविक रमेश लिखते हैं कि- "अनामिका की भी एक कविता है – शकुंतला (समय के शहर में) आज के स्त्री विमर्श में अपने तब के आचरण के कारण आज के दुष्यंत आखेटक ही नजर आते हैं और उनसे नज़र बचाने में ही गनीमत है। वैसे भी अनामिका का काव्यानुभव तो आज की शकुंतला का और भी विडंबनायुक्त यथार्थ सामने लाता है।"[3] अपर्णा महांति की कविताओं में मिथकों का प्रयोग स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है। 'कष्ट दे बहुत' कविता इसी भाव का उद्दीपक है। जैसे –

"नष्ट नारी / उसे पुरुष से साधक

साधक से प्रेमी / प्रेमी से शिव रूप में

अपनी शक्ति पीठ में / आवाहन… / संस्थापन करे।"[4]

मिथकों का सबसे उत्कृष्ट प्रयोग अपर्णा ने 'योगिनी गीत' कविता संकलन में किया है। लैंगिक असमानता के विरुद्ध प्रेम का मार्ग ही सबसे उत्तम है, यही प्रमाणित करना संकलन का ध्येय रहा है। हमारे प्राचीन शक्ति-तंत्र के परंपरा में 64 योगिनी, 10 महाविद्याओं के साथ दुर्गा, चंडी, योगमाया, तारा, महाभैरवी आदि कई देवी-देवताओं पर विश्वास है। योगी एवं योगिनी के स्वरूप दर्शन में अपर्णा ने इस

[1]अनामिका. (2019). कविता में औरत. पृ. 38

[2]अनामिका. (2019). दूब-धान. पृ. 102

[3]रमेश, दिविक. (2014). महिला काव्य लेखन और सामाजिक सरोकार. आजकल. (संपा. फरहतपरवीन). पृ. 24

[4]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 45

बात की ओर संकेत किया है कि योगिनी स्वरूपा नारी तथाकथित 'नर्क के द्वार' नहीं है। साथ में यह संकलन जगन्नाथ संकृति की प्राचीन अर्थवत्ता को समेटती है। इस संकलन से पूर्व स्त्री की वैश्विक छवि का संदर्भ (बलराम दास कृत 'लक्ष्मी पुराण' से) जगन्नाथ संकृति से जोड़ा जाता है। परंतु प्रस्तुत संकलन के माध्यम से एक स्त्री की मर्यादा एवं स्त्री-पुरुष दोनों के मुक्ति प्रसंग को एक ही भावभूमि पर समझने का प्रयास किया गया है। प्रेम ही कविता का मूल उत्स है। जैसे -

"जननी, / भगिनी, / जाया

सभी अंश / केवल भग्नांश

पूर्ण-नारी के रूप में / योगिनी

जहाँ विचरण करती है / उस प्रदेश का नाम है प्रेमिका का देश।"[1]

'गंगा' कविता अपर्णा की चर्चित मिथकीय अभिव्यक्ति है। हमारे धार्मिक विश्वासों में गंगा पाप पापनाशिनी है। मोक्ष प्रदानकारी है। कविता के माध्यम से अपर्णा पितृसत्तात्मक समाज से यह पूछना चाहती है कि क्या गंगा जैसी पवित्र नारी (जो सदा पवित्र है) को क्या घर-संसार की चारदीवारी रूपी कुएँ में आबद्ध रखी जा सकती है ? कविता में यह स्वर और अधिक स्पष्ट है-

"एक नारी का गंगा हो जाना

कोई चाहते नहीं,

वह सबकी प्यास मिटाती है

देह की / मन-संसार की,

कोई भी उसकी मोक्ष प्रदायिनी रूप को

नहीं करते हैं स्थापना / अपनी तृषित आत्म-मंदिर में।"[1]

[1]महांति,अपर्णा. (2015). योगिनी गीत. पृ. 09

इसके अलावा अपर्णा महांति की 'जणे ठाकुराणीन्क आत्मकाहाणी', 'निःसंग ईश्वरी','आजि श्रीराम राज्यरे' आदि कविताओं में भी मिथक का अद्भुत प्रयोग हुआ है। 'पहचान रखो' कविता में मिथकों का प्रयोग गंभीर प्रसंगों के तहत किया गया है। जैसे –

"चेतना शिलाखंड पर / खोदने के बाद

कोई नष्ट नारी साहस कर / आखिर लिखी है / ये कुछ अक्षर।

तैंतीस कोटि देव देवी के आगे

दुर्गा के विवसन होने से आरंभ कर

अहल्या के पत्थर होने / वैदेही बार-बार

अग्नि पाताल में घुसने / पांचाली जुए में बाजी बनी

आदि जानी सुनी / असाधारण असहायता सहित।"[2]

निष्कर्ष के रूप में विचार करें तो अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में बाल मनोविमर्श और मिथकीय चरित्रों का उपयुक्त मूल्यांकन हुआ है। परंपरा, प्राचीन विश्वास एवं पुराकथाओं के माध्यम से दोनों रचनाकारों की अपनी-अपनी समझ कविताओं के माध्यम से प्रतिबिंबित है। मिथकों का पुनर्मूल्यांकन करती अनामिका की कविताएं समकालीन जीवन के अधिक निकट हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि अनामिका की तुलना में अपर्णा मिथकों का अधिक प्रयोग करती नजर आती है। दोनों रचनाकारों की एक विशेषता है कि रचना प्रक्रिया के तहत वे कविता की मूल संवेदना से दूर नहीं जाती हैं। स्त्री जीवन को व्यापक फ़लक पर देखने का नजरिया उनके काव्य सौष्ठव की उपलब्धि है।

---

[1]महांति,अपर्णा. (2019). झिअ पाईं झर्काटिए. पृ. 15

[2]महांति,अपर्णा. पहचान रखो. नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 39

4.8 अनामिका एवं अपर्णामहांति की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदना का साम्य एवं वैषम्य

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया स्त्री-विमर्शमूलक कवयित्रियों में अनामिका एवं अपर्णा महांति का भारतीय साहित्य जगत में चर्चित एवं अग्रणी रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित स्थान है। गौरतलब है, समाज की परिवर्तनशील प्रकृति में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक मूल्यों पर प्रहार हुआ है। ऐसे में दुनिया की 'विश्वग्राम' की अवधारणा में भारतीय समाज के वैश्विक परिवर्तन निश्चित रूप में समकालीन हिंदी एवं ओड़िया साहित्य को प्रभावित किया है। स्पष्ट है कि अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदना के केंद्र में स्त्री-स्वतन्त्रता, स्त्री-पुरुष संबंध में समता एवं विश्व-बंधुत्व की भावना है। दोनों कवयित्री आधुनिकता के साथ परंपरा का अद्भुत एकीकरण करने में सफल हैं। उन्होंने प्रायः लोक-व्यवहार, इतिहास की समझ को ध्यान में रखकर स्त्री-वेदना एवं संघर्ष को क्रांति के नए मूल्यों के साथ पुनःस्थापित करने की अभिनव प्रयास किया है। 21 वीं सदी के मानवतावाद ने अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में स्त्री की मानवीय छवि को यथोचित सम्मान प्राप्ति के संघर्ष सहित उसके मौलिक अधिकारों पर विशद चर्चा की है।

अनामिका की रचनाशीलता ने उन्हें सर्वप्रथम एक कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठा दी है। जब-जब उन्हें या उनकी कविताओं को याद किया जाता है, एक स्त्रीवादी लेखिका के रूप में वह हमारे सामने हमेशा नई चुनौती और संभावनाओं के साथ उपस्थित रही हैं। ठीक इसी प्रकार समकालीन ओड़िया स्त्री-विषयक कविताओं को नए दिग्दर्शन देने में अपर्णा महांति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने विशेषतः ओड़िया स्त्रीवादी कवयित्रियों की वह चुप्पी तोड़ीं,जो सदियों से मुक्ति अभिव्यक्ति की तलाश में रही हैं।

पितृसत्ता के चुनौतियों के बीच स्त्री स्वर को मुखर अभिव्यक्ति देने में अनामिका एवं अपर्णा महांति की क्रांतिकारी भूमिका रही है। भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद के इस दौर में तमाम रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध उनके स्वर अपने युग-बोध के प्रति अप्रतिम निष्ठा को दर्शाता है। विशेषतःअनामिका की कविताओं में पितृसत्ता के विरुद्ध स्त्री स्वर विचार वैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण

है। पितृसत्ता के दमन चक्र में भारतीय स्त्री का वास्तव चित्र खींचती उनकी कविताएं इस व्यवस्था (पितृसत्ता) के विरुद्ध आवाज उठाती हैं। सरल एवं बोधगम्य शब्दों के साथ समाज के हर वर्ग की महिलाओं की समस्याओं को उठाने के साथ-साथ उसकी मन की व्यथा को प्रतिरोध की भावभूमि पर संस्थापित करने में वह सफल रही हैं। 'स्त्रियाँ','बेजगह','कुहनियाँ' जैसी कविताएं इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहाँ अपर्णा महांति की कविताओं पर गौर किया जाये तो यह प्रतीत होता है कि पितृसत्ता के विरुद्ध उनका स्वर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के निकट है। उनके प्रथम संकलन (अव्यक्त आत्मीयता) में प्रतिरोध का स्वर उतना तीव्र नहीं है, जो बाद के संग्रहों में देखने को मिलता है। यह संकलन प्रेम, आत्म-जागृति एवं स्त्री जीवन की यथार्थ मनःस्थिति को द्योतित करता है। उनकी अधिकतर, आरंभिक कविताओं में प्रेम एवं विद्रोह की वह रहस्यात्मकता है, जो महादेवी और अमृता प्रीतम की कविताओं में है। बाद में प्रतिरोध का तेवर देह मुक्ति के साथ जुड़ता चला गया। अनामिका की 'नारी', 'अनुवाद','चीख','विसंगति','ईश्वर' आदि एवं अपर्णा की 'पहचान रखो', 'आजिश्रीरामराज्येरे', 'देहेश्वरी', 'मुक्ति संहार', 'जननीरस्वीकारोक्ति','लेखालेखिकरुथिबास्त्रीलोक' आदि कविताओं में पितृसत्ता एवं प्रतिरोध के स्वर को प्रमुखता से देखा जा सकता है।

संवेदना के स्तर पर विचार किया जाये तो निजता में सामाजिकता की प्रतिध्वनि दोनों कवयित्रियों की सबसे बड़ी विशेषता रही है। व्यष्टि से समष्टि का बोध उनकी काव्यगत प्रेरणा स्रोत के रूप में कविताओं को झकझोरता है। एक स्त्री जीवन के त्रासद अनुभवों को स्वानुभूति के तहत एक विराट स्पेस मिला है, जहाँ कवितायें अपनी-अपनी युगीन रूढ़ प्रवृतियों के विरुद्ध मुठभेड़ करती नजर आती है। 'स्व' की चेतना ने दोनों कवयित्रियों की रचना प्रक्रिया को समान रूप में प्रभावित किया है। 'मैं','तुम' और 'हम' जैसी शब्दावलियों के साथ हर वर्ग की महिलाओं की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं से रूबरू होती कविताएं स्त्री की अंतर्जगत को बहिर्जगत से जोड़ती है। तुलनात्मक रूप में 'मैं' का प्रयोग दोनों रचनाकारों ने समान रूप से किया है, कुछ दृष्टांत उल्लेखनीय है –

"मैंने उसे गौर से देखा, / फिर ख़ुद पर नज़र गई –

ये लो, / मैं भी तो मैं नहीं रही थी,

बची रह गई थी मैं / एक हरी पत्ती-भर-

बारिश की / बूंद-बूंद लोकती, / सिहरती !"[1]

अपर्णा महांति के शब्दों में कहें तो –

"मेरे तन में / सभी एकाकार।

मेरे भीतर / 'तू' / और तेरे भीतर 'मैं'

आकार को सुख-सिंधु में / विसर्जन करते-करते

हमारे आराधना में / मग्न रहती / एक बूंद निराकार।"[2]

अपर्णा के बरक्स अनामिका की कविताएं सामाजिकता की अधिक स्पेस घेरती हैं। उनकी कविताओं में केवल एक साधारण स्त्री की ही नहीं अपितु विस्थापित, दलित, आदिवासी जैसे हाशिये वर्ग के साथ-साथ समाज से प्रताड़ित वर्ग को आवाज देती है। विचार वैविध्य एवं सामाजिकता की दृष्टि से अनामिका की कविताएं नए युग-बोध को अपने आत्मानुभव से संबोधित करती है।

मानवीय उन्नति एवं विकास के लिए प्रेरणा के क्रम में मनुष्य नैतिक मूल्यों का निर्माण करता है। समय सापेक्ष सामाजिक बदलाव के कारण मनुष्य के नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन होते हैं। दोनों कवयित्रियों ने तथाकथित नैतिक मूल्यों को चुनौती देते हुए वैयक्तिक चेतना पर विशेष बल दिया है। परंपरा, नीति व आदर्श अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी के साथ उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। निश्चित ही विरोध का स्वर तुलनीय है। जैसे अनामिका लिखती हैं –

"अश्लील लगते हैं धार्मिक प्रपंच

उतने ही जीतने की हीरे"[1]

[1]अनामिका. (2019). मेरे मुहल्ले का राबिया फ़कीर. पानी को सब याद था. पृ. 64

[2]महांति,अपर्णा. (2019). स्पर्श. झिअ पाई झर्काटिए. पृ. 59-60

ठीक इसी प्रकार 'हीरे' का व्यंग्यात्मक प्रयोग अपर्णा की कविताओं में देखा जा सकता है। जैसे –

"नष्ट नारी / हीरों से बंधाए छाती

रमने / चतुर्थ रमण।"[2]

वर्तमान सदी का मानवतावाद नैतिक मूल्यों को सँजोने के बजाए विघटन की ओर अग्रसर है। इस स्थिति में अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं अपनी वैयक्तिक चेतना के आलोक में स्त्री की पितृसत्तात्मक मानसिक रूढ़िवादी नैतिक मूल्यों को तोड़ती है।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं संवेदना और भाषा दोनों स्तरों पर अपनी गहरी एवं सूक्ष्म विचारधारा को प्रस्तुत करती है। एक स्त्री की समसामयिक चुनौतियों को समझने एवं उससे जूझते समय उनकी कविताएं पारंपरिक रूढ़ियों का सामना करने से नहीं डरती। अनामिका की कविताओं पर गौर करें तो प्रतीत होता है उनकी समझ उन जरूरी जरूरतों से है, जहाँ स्त्री अपनी अस्तित्व व त्रासद अनुभवों से सीधे जुड़ने का प्रयास करती है। भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण आदि के आर्थिक संबंध स्त्री को निश्चित रूप में वैश्विक बनाने की जद्दोजहद में है। अनामिका की कविताओं का यही उत्स है। इस परिप्रेक्ष्य पर विचार करें तो अपर्णा महांति स्वीकारती हैं कि स्त्री मानसिक एवं शारीरिक दोनों तरह से हिंसा का शिकार होती है। उससे उबरने का प्रयास तो करती है, परंतु समाज की बढ़ती तमाम विसंगतियों में वह बेजुवान हो जाती है। इसी अवधारणा का प्रतिरोध करती उनकी कविताएं विशेषतः यौन कुंठा की ओर इशारा करती है। मार्क्सवादी नारीवाद के तहत उनकी कविताएं वर्ग विभाजन के विरुद्ध संघर्षरत है।

संवेदना के स्तर पर अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह का अद्भुत सामंजस्य है। कविताओं में समय सापेक्ष बदलती प्रेम एवं परंपरा की कसौटी पर स्त्री का संघर्ष ही सर्वोपरि उभरकर आया है। यहाँ विचार किया जाये तो अपर्णा की कविताओं में प्रेम का अधिक महत्व

---

[1]अनामिका. (2019). दंगे और कर्मकांड. खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 123

[2]महांति,अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 09

है। वह मानती हैं कि प्रेम वही सार्थक होता है जहां एक पुरुष और एक स्त्री, दोनों को बराबर का अधिकार और आत्मसम्मान मिलता है। इस दृष्टि से उनकी कविताओं में विद्रोह की भावना होते हुए भी प्रेम को अधिक महत्व मिला है। प्रेम के माध्यम से वह अपनी कविताओं में समानता की बात करती हैं। अनामिका की कविताओं पर गौर किया जाये तो इस संदर्भ में वह अपर्णा महांति से भिन्न प्रतीत होती हैं। उनकी अधिकतर कविताएं परंपरा के निकट हैं। वह स्त्री-पुरुष संबंध में न तो परंपरा का पूरी तरह से विरोध करती हैं और न ही उसे त्यागने का। उनकी कविताएं रूढ़ परंपरा का विरोध करती है और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में उसके पुनर्विचार को भी महत्व देती हुई प्रतीत होती हैं।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में लैंगिक असमानता, यौन कुंठा और वेश्या-वृत्ति के प्रश्नों को बारीकी से उठाया गया है। संवेदनाओं के कैनवास के केंद्र में स्त्री होने के कारण कविताओं में स्त्री-पुरुष के बीच बढ़ रही दूरी को समझने के साथ पितृसत्ता के विकृत मानसिकता को, आत्मकुंठा को एवं उससे जुड़े सभी सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को सामने लाने का प्रयास किया गया है। शब्द चयन एवं अभिव्यक्ति के तेवर को ध्यान में रखते हुए यह ज्ञात होता है कि अनामिका के बरक्स अपर्णा की कविताओं में देह संबंधी कुंठाभिव्यक्ति अधिक मुखर है। अभिव्यक्ति की आजादी को वह अपनी कुंठाओं के माध्यम से व्यक्त करती है। जैसे –

"सभी नारी अंग की तरह

स्तन, जाँघें / यौवन के / अतिरिक्त

जीभ एक टुकड़ा रखी है / नष्टनारी।"[1]

अनामिका की 'गणिका गली', 'चौदह बरस की सेक्स वर्कर्स', यौन दासी', 'काजल', 'पतिव्रता' आदि तो अपर्णा महांति की 'क्षण क्षण', 'चतुर्थ रमण' के साथ-साथ 'मंदिर और वैश्यालय', 'देह-सुख','नग्नता' आदि कविताओं में यह प्रतिबिंबित है।

[1]महांति, अपर्णा. (2007). सभी नारी अंग की तरह. नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 76

बाल मनोविमर्श पर विचार किया जाए तो अनामिका की सूक्ष्म दृष्टि एवं गंभीर विषय चयन ने बालिकाओं के शारीरिक एवं मानसिक तमाम समस्याओं की ओर इशारा करती है। हिंसा, बलात्कार जैसे मुद्दों के साथ उनकी परिधान की परिपाटी आदि विषयों पर दोनों रचनाकारों की कविताओं में प्रतिक्रिया प्रबल है। इसके साथ अनामिका एवं अपर्णा महांति ने भारतीय मिथकीय पात्रों के माध्यम से वर्तमान स्त्री को सशक्त दिशा देने का सार्थक प्रयास किया है। दोनों कवयित्रियों ने अपनी-अपनी विशिष्टता से सभी मिथकीय पात्रों को नए अर्थों में गढ़ने की कोशिश की है। द्रोपदी, अहल्या, दुर्गा और पार्वती आदि को मिथकीय धरातल पर रखते हुए नए बिंबों एवं प्रतीकों के माध्यम से स्त्री समाज को नई ऊर्जा प्रदान करनी का कार्य दोनों रचनाकारों ने किया है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जाये तो दोनों कवयित्रियों की कविताओं में संवेदना की समानता एवं असमानता की पड़ताल करना चुनौतीपूर्ण है। कुछ नगण्य वैषम्य के अलावा दोनों की कविताओं में साम्य ही अधिक है। समकालीन स्त्री जीवन की शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं के साथ संवेदना की आत्मा का निरीक्षण करते हुए दोनों रचनाकारों ने अपने समय एवं समाज के गंभीर प्रसंगों को सामने रखने की भरपूर चेष्टा की है।

5.1 भाषागत वैशिष्ट्य

जिस प्रकार किसी भी साहित्यिक कृति के सम्यक विवेचन व विश्लेषण के लिए उसके वस्तुगत सौंदर्य के भाव-पक्ष का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है उसी प्रकार उसकी भाषा-शैली का अवलोकन व विवेचन करना भी अत्यंत आवश्यक है। कविता की सृजन-यात्रा में 'भाषा' एक महत्वपूर्ण कारक है। यह एक वैविध्यपूर्ण समाज की सबसे बड़ी सांस्कृतिक उपलब्धि के रूप में सर्वमान्य रहा है। हमारे भावों व विचारों को भाषा सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्ति देती है। शब्दों के नियमबद्ध कौशल एवं सार्थक समायोजन से ही कविता में पदों की संरचना होती है। कहा जा सकता है कि मानवीय भावों एवं विचारों के सार्थक एवं समर्थ संवाहक के रूप में भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है। इसका उपयोग केवल आदान-प्रदान के अर्थों तक सीमित नहीं है अपितु यह मनुष्य की अस्मिता का वाचक भी है। इस संदर्भ में राजेंद्र यादव का कथन बेहद समीचीन प्रतीत होता है, वह कहते हैं – "अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच भाषा निश्चय ही एक जीवित और स्वतंत्र सत्ता है।"[1] कविता का समकालीन होने में भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण है। ए. अरविंदाक्षन उक्त संदर्भ में टिप्पणी करते हुए कहते हैं – "जब कविता अधिकारग्रस्त स्थान-काल-भाषा संबंधी संकल्पों के विरुद्ध लड़ाई जारी रखती है तब उसका समकालीन होना सहज हो जाता है।"[2] निःसंदेह समकालीन भारतीय स्त्री कविता में संवेदना के स्तर पर भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वानुभूति एवं सहानुभूति के बीच विशेषकर स्त्री-भाषा की अपनी स्वतंत्र अस्मिता है।

सामाजिक व सांस्कृतिक प्रगति में स्त्री की भूमिका को सदियों से हाशिए पर रखा गया है। पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतकों आरंभिक दौर से ही स्त्री की स्वतंत्रता पर प्रश्न चिन्ह लगाते आए हैं। शेक्सपियर, सेंट थॉमस, नित्शे, अरस्तू आदि जहाँ स्त्री-स्वतंत्रता के पक्षधर नहीं थे वैसे कबीर, तुलसी आदि भी औरत के मौलिक अधिकारों को परोक्ष में खारिज करते रहे। कहने का अभिप्राय समग्र मानवीय इतिहास में नारी मूलतः हेय या गौण चरित्र के रूप में प्रस्तुत होती रही है। बचपन से ही एक स्त्री को संपूर्ण अभिव्यक्ति की आज़ादी से वंचित रखा जाता रहा है। भारतीय संदर्भ में विचार किया जाये तो रचना क्रम की बागडोर

[1]यादव, राजेंद्र. (1977). कहानी : स्वरूप और संवेदना. पृ. 115
[2]अरविंदाक्षन. ए. (2018). समकालीन हिन्दी कविता. पृ. 15

हमेशा से पुरुषों के हाथ में रही है। वर्तमान समय में जब स्त्रियाँ मुखर रूप से लिख रहीं हैं, अपनी वेदना, कुंठाओं को व्यक्त कर रहीं हैं, प्रतिकूल परिस्थिति के विरुद्ध अपनी उपस्थिति को जाहिर कर रहीं हैं, तो इस समय पितृसत्ता की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के विरुद्ध विशेषकर कवयित्रियां अपनी कविताओं में भाषा का सशक्त प्रयोग कर रहीं हैं। समकालीन स्त्री-विमर्श को व्यवस्थित एवं सार्थक दिशा देने में स्त्री-भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्त्री-विमर्श की मूल संकल्पना 'अस्तित्व की पहचान' है। समकालीन स्त्रीवादी लेखिकाओं ने विशेषकर स्त्री के भोगे हुए यथार्थ को पाठकों के समक्ष रखा है। वे यह भी चिंता जताती हैं कि स्त्री-जीवन, संघर्ष, चेतना, संस्कृति, उसकी कुंठा आदि को व्यक्त करने के लिए उसके पास भाषिक रूप बहुत ही कम है। यहाँ तक तो रमणिका गुप्ता ने प्रचलित भाषा को स्त्री-विरोधी कहा है। वह कहती हैं – "हमारी भाषा भी कितनी स्त्री-विरोधी है या कहूँ कितनी पुरुषवाद की कायल है, यह स्त्री के संदर्भ में प्रयोग होने वाले शब्दों से ही पता चल जाता है।"[1] भाषा अपनी संप्रेषणीयता के बल पर जीवन तथा समाज को विश्व-दृष्टि प्रदान करती है। स्त्री-विषयक कविताओं में यह स्पष्ट रूप में दृष्टिगत है।

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविताओं में स्त्री-भाषा के प्रयोग में अनामिका एवं अपर्णा महांति का क्रांतिकारी हस्तक्षेप रहा है। उनकी कविताएं एक स्त्री मन के तमाम प्रश्नों, समस्याओं, अनुभवों एवं गंभीर चिंतनों का द्योतक है। स्त्री-मुक्ति प्रसंग एवं स्त्री-सशक्तिकरण से जुड़ी उनकी कविताओं में सघन संवेदना, भाव-प्रवणता के साथ अधिकार की आवाज़ सदैव मुखर रही है। विशेषकर इन सबमें स्त्री-भाषा की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। समकालीन जीवन-चित्र के साथ-साथ भाषा की परिवर्तनीय प्रवृत्ति के संदर्भ में अनामिका का कथन विचारणीय है। वह कहती हैं – "स्त्री-पुरुष संबंधों में असमंजसजन्य अवसाद का स्वरूप कुछ तो बदला है, भाषा के तेवर भी बदले हैं- यह अधिक दोस्ताना और अनौपचारिक हुई है- नए-नए बिंबों से अनुस्यूत।… आत्मान्वेषण का हर्ष कुछ इतना घना है कि भाषा से होली खेलती दिखती

[1]गुप्ता, रमणिका. (2017). स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास. पृ. 57

है श्रेष्ठ स्त्री रचनाकार। लोकगीतों की-सी परिहास वृत्ति, यह महीन-सा ह्यूमर भी इधर की स्त्री-कविता की एक बड़ी उपलब्धि है।"[1]

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं से गुजरते हुए यह ज्ञात होता है कि दोनों कवयित्रियों ने समय विशेष एवं पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए कविताओं में युगबोध की प्रकृति को अपने भावपूर्ण एवं वैचारिक मूल्यों के रूप में ढाला है। कविताओं में लोक भाषा, महानगरीय भाषा, देशज तथा वैदेशिक शब्दों का भरपूर प्रयोग हुआ है। भाषा की दृष्टि से उनकी कविताएं स्त्री-मुक्ति संबंधित दैहिक अनुभव, स्त्री जीवन की तमाम भूमिकाएँ, संपर्क सहित परंपरा के प्रति मोह एवं साथ में शोषण के विरुद्ध इंकिलाब की भाषा है।अनामिका की कविताओं के संदर्भ में शिव प्रसाद शुक्ल कहते हैं – "अनामिका की निरीक्षण शक्ति मिथक, लोक कथा एवं दंतकथा का ऐसा उपयोग करती है कि नए अर्थघठन में मौलिकता का परिचय देती है, यानी उन्हीं स्वर एवं व्यंजन के आधार पर नारी दास्तान की इबारतें काव्यभाषा में ढालती हैं अनामिका।"[2] अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं की भाषा संवेदनायुक्त है। निजता में सामाजिकता को द्योतित करती उनकी कविताएं साधारण मनुष्य के हर्ष-विषाद के अधिक निकट है। स्त्री संवेदना को व्यक्त करने में अपर्णा खुद को असहाय पाती हैं। वह इसी असह्य स्थिति के पीछे स्त्री भाषा की अपील करती हुई लिखती हैं –

"मेरी लेखनी / व्याकुल हो रही होगी

कुछ उज्ज्वल अनुभव / कोई मुझे दो….. ।

आजकल / इतनी अंधकार में

मैं हूँ बोलने के लिए / मुँह खोलकर

कैसे कहूँगी उनको ?"[3]

[1]अनामिका. (संपा). (2015). बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन : खंड-2. पृ. 32-33

[2]शुक्ल, शिव प्रसाद. (2013). बेजुबान औरत की त्रासदी. अनामिका : एक मूल्यांकन. (संपा. अभिषेक कश्यप). पृ. 88

[3]महांति, अपर्णा. (2010). कवि की व्यथा. माँ र काँदणा गीत. पृ. 84

शब्दों के चयन पर विचार किया जाए तो अनामिका की कविताओं में अँग्रेजी शब्दों की भरमार है। अलार्म, कैसेट, टीचर, क्लासिक, सोसाइटी, सेकेंड हैंड, डीलीट, सेल्फ़ी, प्लेटफॉर्म, कॉलेज, मिनिट्स, प्लीज, नंबर, टिफिन बॉक्स, प्रोडिगल्सन, पार्टी, प्रौक्सी, बटन, होमवर्क, लोड शेडिंग, टिकट-बूथ, पब्लिक टेलीफोन, सेफ्टी पिन, ब्लाउज, एल. आई. सी. एजेंट, सेक्स वर्कर्स, बस टिकट, वर्किंग विमेन्स हॉस्टल, ट्रांस्लेसन जैसे कई अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग अनामिका ने अपनी कविताओं में बखूबी किया है। यह विशेषता उनकी अधिकतर कविताओं में देखने को मिलती है। जैसे –

"उनके उस ढनढनाते घर में उनके ही साथ रहा करते हैं

हैमलेट, ऑथेलो, मैकबेथ, ऐंटनी, किंग लियर !

थियोसॉफ़िकल लॉज के पीछे की वह बंसवारी थी

जहाँ उस अर्द्धध्वस्त घर का / दाखिनी दरवाजा खुलता था.....

'टु बाई और नॉट टु बाई,

दैट इज द क्वेश्चन !' / कह रहा था हैमलेट"[1]

केवल अँग्रेजी ही नहीं, अन्य भाषाओं का प्रयोग भी अनामिका की कविताओं को ताकत देते हैं। जैसे संस्कृत के शब्दों का प्रयोग बतौर उदाहरण देखा जा सकता है –

"'कपड़ा है देह', ... जीर्णाणि वस्त्राणि' वाला

यह श्लोक गीता का, सुना था कभी बहुत बचपन में

पापा के पेट पर / पट्ट लेते-लेते !"[2]

अनामिका की भाषिक सघनता के विषय में दिविक रमेश कहते हैं – "अनामिका के पास दृश्यबंधों को सजीव करने वाली भाषा है, बिंबधर्मिता पर इनकी पकड़ अच्छी है... भाषा की यह

[1]अनामिका. (2019). कस्बे में शेक्सपियर शिक्षक. पानी को सब याद था. पृ. 93

[2]अनामिका. (2019). वृद्धाएं धरती का नमक हैं. खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 47

विशिष्टता अनामिका की अपनी है।"[1] उन्होंने लोकभाषा का भी खूब प्रयोग किया है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि – "अनामिका अपनी लोक को बखूबी जानती हैं। जैसे ही रचना लोक में प्रवेश करती हैं जीते जागते जानदार चित्र सामने आते हैं। भाषा बदल जाती है। सारे मुक्ति संघर्षों के सूत्र उनसे ही जुड़ते हैं… एक मुकम्मल तस्वीर बनती है और मुक्ति का आधार व्यापक होता चला जाता है। स्त्री मुक्ति के नए आयाम यहाँ खुलते हैं। अनामिका के लिए स्त्री-मुक्ति मानव-मुक्ति का उत्स है।"[2] निःसंदेह उनकी लोकरंग से जुड़ी अधिकतर कविताओं की संवेदना स्त्री प्रतिरोध की परंपरा के निकटस्थ है। भाषा तथा वाक्य विन्यास में देशज शब्दों के प्रयोग में उनकी अपनी विशिष्टता है। परंपरा के निकट उनकी शब्दावली जब समकालीन स्त्री सत्ता से गुजरती सामने आती है तो निश्चय ही जादुई बन जाती है। एक प्रकार की लैटिन अमेरिकीय शैली का उपयोग या यूं कहें तो जादुई यथार्थवाद का प्रभाव उनकी कविताओं में अवलोकन किया जा सकता है।

अपर्णा महांति की कविताओं पर ध्यान दें तो उनकी कविताओं में फ्रायड के चिंतनों का प्रभाव है। विद्रोह के स्वर में यौन चित्रों का दृशबंध अधिक है। कविताओं की भाषा को हम तीन स्तरों पर विभक्त कर सकते हैं। जैसे उनके आरंभिक संकलनों में कविताओं की भाषा सरल तथा बोध-गम्य होने के साथ प्रेम तत्व की प्रधानता है। 'अव्यक्त आत्मीयता','असती', और 'अतिथि' एवं 'निःशब्दरे' जैसे संकलनों में भाषा के अभिनव प्रयोग से यह प्रमाणित करने की कोशिश की गई है कि विद्रोह का स्वर समर्पण भाव से भी संभव है। द्वितीयतः अधिकतर कविताओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसके अलावा तत्सम व तद्भव शब्दों का आधिक्य भी द्रष्टव्य है। देशज व साधारण बोल-चाल के शब्दों का भी प्रयोग प्रसंगानुसार दोनों रचनाकारों के यहाँ देखने को मिलता है। कविताओं में छोटे-छोटे शब्दों और छोटे-छोटे वाक्यों में गहरी अर्थवत्ता व संवेदनापूर्ण भावों को व्यक्त करने में दोनों रचनाकार सफल नजर आते हैं। तीसरी कोटि की कविताएं रहस्यात्मकता से भरी हुई है। आत्मा-परमात्मा, सृष्टि चक्र, शून्य पुरुष, शक्ति तत्व आदि में स्त्री-भाषा अपने महत्तर उद्देश्य को प्राप्त करती है। यही विरोधाभाष की प्रकृति भी है। उनकी

[1]रमेश, दिविक. (2019). कविता में औरत. फ्लैप से

[2]सिंह, डॉ. नामवर. (2019). एक कस्बाई लड़की की डायरी. फ्लेप से

कई कविताओं का भाषा-विन्यास में भाव दुर्बोध्य भी हो जाता है। जीवन दर्शन, प्रेम, मृत्यु-बोध (सचेतनता), व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा, स्वाभिमान, निःसंगता-बोध, उदासीनता आदि में उनकी भाषिक अभिव्यक्ति निश्चय ही अनूठी है। अपर्णा महांति के काव्यगत भाषिक उपलब्धि के विषय में डॉ. गौतम जेना कहते हैं – "उपलब्धि जब आवेग में रूपांतरित होता है उस समय सत्य के सभी तत्व कविता में मंत्र का रूप ले लेती है। भाव-मुग्धता में पाठकीय चेतना को पुलकित करता है, व्यक्ति स्तर से ऊर्ध्व उठकर अपने भीतर जगत के सभी भावों को अनुभव करता है। इसीलिए उनकी कविता की भाषा अंत में आत्मा को भावमय कर देती है। जहाँ भाव सघन हो उठता है भाषा हो जाती है नीरव। देह नैवेद्य के रूप में रूपांतरित हो जाती है।"[1]

अपर्णा महांति की अधिकतर कविताओं में संस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्दों का प्रयोग खूब हुआ है। जैसे –'निर्विकल्प', 'आत्मन', 'आत्मा', 'वाङ्गमय', 'पिंड-ब्रम्हांड', 'दूर्वाक्षत', 'स्तवक','मोक्ष', 'आह्वान', 'स्वयंतान', 'युद्धम देही', 'रमण', 'अभीप्सा', 'उन्मुक्त', 'निःसर्त्त', 'आश्लेष', 'प्रज्ञा' शब्दों की उनकी कविता भरमार है। 'कष्ट दे बहुत' कविता में इसका प्रयोग कुछ इस प्रकार हुआ है, जैसे-

"जिज्ञासा के पथ में / जाते वक्त

वस्त्रालंकार सहित / फेंक दे गईं

मान-महत, कुल गोत्र / संपर्क, संस्कार

देह को की थी / जाग्रत कुंडलिनी

संभोग को हरिद्रा चंदन / अक्षत के मह-मह नाग-बंध

ईषिकार / ओंकार / समस्वर कर"[2]

[1]जेना, डॉ. गौतम. (2013). नारी अस्तित्वरे आधुनिकतार अन्वेषण : अपर्णा महांतिन्क कविता. अपर्णा पूर्णतमा. (संपा. डॉ. गिरीश चंद्र साहू & डॉ. भुवनानंद साहू. पृ. 186-187

[2]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 44

केवल संस्कृत ही नहीं हिंदी एवं अँग्रेजी आदि शब्दों के प्रयोग में भी अपर्णा सजग दिखती हैं। हिंदी के 'मुलायम', उर्दू के 'कैफ़ियत', एवं अँग्रेजी के 'फ्रॉक','एसी','ओभान','ग्रेनाइट' जैसे शब्दों के प्रयोग से उनकी कविताएं हृदयस्पर्शी हैं। उनकी कविताओं में गद्यात्मक होने के साथ-साथ लयबद्धता का सौंदर्य भी दिखाई देता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनामिका एवं अपर्णा महांति का भाषिक परिदृश्य अत्यंत समृद्ध और व्यापक है। सरल शब्दावली के साथ अभिव्यक्ति के अपने स्वर हैं। स्त्री-भाषा के प्रयोग में अनामिका की कविताओं में जहाँ अँग्रेजी शब्दों का आधिक्य है वहीं अपर्णा की कविताएं संस्कृतनिष्ठ अधिक हैं। दोनों के यहाँ तत्सम एवं तद्भव शब्दों की भरमार है, इसीलिए कभी-कभी उनकी कविताएं दुर्बोध्य प्रतीत होती हैं। विशेषतः दोनों कवयित्रियों की कविताओं की शाब्दिक सजगता ने विमर्श की आत्मा को निश्चय ही प्रभावित किया है।

5.2 शैलीगत वैशिष्ट्य

शैली कविता की महत्वपूर्ण इकाई है। भाव-विन्यास एवं रचना-कौशल को पूर्णता प्रदान करने में शैली की अभिन्न भूमिका रहती है। साधारणतः 'शैली' शब्द को अँग्रेजी में 'स्टाइल' (Style) कहा जाता है। विशेष रूप में शैली हमारे आत्मप्रकाश व वस्तु विन्यास करने का एक कलात्मक ढंग है। इसका सीधा संबंध रचना के भाषिक एवं शाब्दिक कौशल से किया जाता रहा है। समकालीन कविता में शिल्प विधान को दृष्टिगत रखते हुए नंदकिशोर आचार्य की टिप्पणी विचारणीय है। वह कहते हैं कि – "प्रत्येक कविता अनिवार्यतः एक भाषिक संरचना है और शिल्प ही वह चेतना है जो सामान्य भाषा में इस काव्य-संरचना को पहचानती या कह लीजिये काव्य-संरचना में रूपांतरण करती है।"[1] जिस प्रकार किसी भी साहित्यिक कृति का 'वस्तु विधान' एक आंतरिक तत्व के रूप में विश्लेषित होता है वैसे ही 'शैली' रचना के वाह्य

[1]आचार्य, नंदकिशोर. (2017). कविता का समकालीन होना. समकालीन साहित्य : वैचारिक चुनौतियाँ. (संपा. मनोज पांडेय). पृ. 26

आवश्यकताओं की पुष्टि करता है। सघन संप्रेषणीयता एवं सशक्त अभिव्यंजना हेतु 'शैली' भावाभिव्यक्ति को सरल बनाती है।

किसी भी साहित्यिक कृति की आलोचना करते समय प्रायः वस्तु सौंदर्य की तुलना में शैली की अहमियत गौण हो जाती है। अनामिका ने स्त्री कविता के लिए स्वतंत्र शैली-विन्यास को विशेष महत्व दिया है। उनके ही शब्दों में – "कथ्य और शैली जुड़वा भाई-बहन हैं, ऐसा इसीलिए कह रही हूँ कि साथ जनमते हैं, पर जन्म के पहले ही दोनों में भेद-भाव शुरू हो जाता है। कथ्य पुलिंग है ! उनका दर्जा शैली से ऊँचा माना जाता है ! ज़्यादा चर्चा कथ्य की होती है ! क्या कहा गया यह हमेशा दिमाग में रहता है; कैसे कहा गया – अक्सर इस पर ध्यान नहीं जाता; हालाँकि नई हमेशा शैली होती है!"[1]

शैली विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर भाषिक शैली का अध्ययन रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, प्रवृत्ति, शब्द-शक्ति, गुण-दोष, बिंब, प्रतीक, ध्वनि, अनुशीलन की प्रकृति आदि के आधार पर किया जाता है। इस पद्धति में रचना की वैज्ञानिक व्याख्या सरल होती है। इसी तरह प्रायोगिक शैली विज्ञान के तहत किसी भी रचना या रचनाकार की शैली का वर्गीकरण, विश्लेषण व विवेचन से ही किया जाता है। जैसे – कथोपकथन या संवाद शैली, प्रश्नात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, आत्मकथन व एकालाप शैली, सांकेतिक और व्यंग्यात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली एवं डॉट्स का प्रयोग आदि।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में कथोपकथन अथवा संवाद शैली का भरपूर प्रयोग हुआ है। पितृसत्तात्मक समाज के पात्र स्वरूप पुरुष-स्त्री, लड़का-लड़की, माता-पिता, भाई आदि कई रूपों में कोई दूसरा व्यक्ति उनकी अधिकतर कविताओं में देखने को मिलता है। दोनों रचनाकार अपनी कविताओं में पात्रों के द्वारा संवाद स्थापित करते हैं। कथोपकथन व संवाद शैली के विषय में डॉ. गुलाबराय के मंतव्य को डॉ. प्रताप नारायण टंडन ने उद्धृत करते हुए लिखा है– "कथोपकथन या वार्तालाप द्वारा ही हम पात्रों के हृदयगत भावों को जान सकते हैं। यदि वार्तालाप पात्रों के चरित्र के अनुकूल न हो हम उनके चरित्र का मूल्यांकन करने में भूल कर जाएंगे।"[2] इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि साहित्य के शैलीगत विशिष्टता

[1]अनामिका. (संपा). (2015). बीसवीं सदी का हिंदी महिला लेखन. पृ. 20

[2]टंडन, डॉ. प्रताप नारायण. (1980). हिंदी कहानी कला. पृ. 332

के उद्घाटन में संवाद शैली की भूमिका महत्वपूर्ण है। अनामिका ने समकालीन सत्ता पर अपने अस्मिता के प्रश्नों को इस शैली के माध्यम से खूब सहज एवं नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करतीं हैं, जैसे –

"इन दिनों क्या / ज्यादा नहीं बढ़ गई है

बाजार में रोशनी ?'

'ट्रेवेल लाइट' माने क्या ?

मैंने कहा – "मामी, जानती हैं आप तो !

'ट्रेवेल लाइट' माने

ज्यादा बोझा नहीं बढ़ाओ, हल्के चलो!"[1]

अपर्णा महांति ने भी कई कविताओं में संवाद शैली का सार्थक प्रयोग किया है। संवादों के माध्यम से उनकी कविताओं में स्त्री-पुरुष संबंधी शारीरिक एवं मानसिक कुंठा को जीवन शब्द मिले हैं। अपने पड़ोसी के बीच एक स्त्री घर-संसार की समस्याओं पर शोक जताती हुई यह कविता संवाद शैली में लिखी है। कविता में यह दृश्य कुछ इस प्रकार है–

"- ठीक अछि /आऊ ताकु खोजिबिनी-

कहु – कहु दि आखिरु / ठस् – ठस् दुई टोपा

पडुथिला खसि।

-कांदना लो / छाती दंभ कर,

मन चाहूंथिबा चीज /एठि कण सबूबेले मिले?[2]

[1]अनामिका. (2019). निगमबोध पर मामी. पानी को सब याद था. पृ. 78

[2]महांत, अपर्णा. (1997). अतिथि- 16. अतिथि. पृ. 41

निष्कर्षतः संवाद शैली के प्रयोग में अनामिका एवं अपर्णा महांति का समान हस्तक्षेप रहा है। स्त्री जीवन के यथार्थ एवं वास्तव जीवनानुभवों को व्यक्त करते समय दोनों रचनाकारों ने इस शैली का सार्थक प्रयोग किया है। निश्चित ही इस शैली के प्रयोग से उनकी कविताओं की भाषा एवं भावनात्मक आवेग हृदयस्पर्शी हो गया है। उनकी कविताएं केवल पात्र व चरित्रों से संवाद नहीं करते, अपितु समाज के हर उस वर्ग से संवाद स्थापित करते हैं, जहाँ पितृसत्ता की मानसिकता रूढ़ बनी हुई है।

प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं की सबसे बड़ी उपलब्धि है। पितृसत्तात्मक समाज से बराबर सवाल पूछते रहना, वह भी भूमंडलीकरण एवं बाजारवाद के इस वैश्विक आदोंलनों में, जहाँ सरकार से भी सवाल पूछना कठिन कार्य बनता जा रहा है, ऐसे समय में दोनों रचनाकारों की बौद्धिक एवं नैतिक ज़िम्मेदारी निश्चय ही अनूठी है। अपर्णा इसका प्रयोग 'खुद-ब-खुद' कविता में कुछ इस प्रकार से करती हैं, जैसे -

"यह क्यों मना है / वह क्यों मना है

इतनी सारी लाचारी / भोगने पर भी

क्यों इतनी सारी पाबंदी / सिर्फ मेरे लिए ?

मैं भी दूसरों जैसी ही तो हूँ माँ ?

वह मुझे बहा देना चाहती थी / सावन की घनी बारिश-सी

उदास / खामोश सवालों की निरंतर बौछार में"[1]

उक्त संदर्भ में अनामिका की कविता 'बंगाल का काला जादू' रचना कौशल की दृष्टि से तुलनीय है। अनामिका के शब्दों में –

"वह होती तो दौड़ती आती -

[1]महांति, अपर्णा. (2011). खुद-ब-खुद. युद्धरत आम आदमी. (संपा. रमणिका गुप्ता). विशेषांक-108. पृ. 380

गठरी में क्या है, माँ ?

खोलो न !

क्या गई थी तुम सरोजिनी नगर ?

अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें एक प्रश्नातुर स्त्री छिपी हुई है, जो बार-बार पुरुषवादी समाज को नैतिक सवालों के विषय पर घेर लेती है। यही काव्यिक कौशल दोनों कवयित्रियों की कविताओं में रचनात्मक समानता को सिद्ध करता है।

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में सांकेतिक अथवा व्यंग्यात्मक शैली की लंबी परंपरा रही है। खासतौर पर स्त्री-कविताओं में इसका विशेष महत्व रहा है। व्यंग्यात्मक शैली में रचना का शब्द ज्ञान, पूर्वानुमान एवं कुशल अभिव्यक्ति के सभी साधनों को एक ही धागे में पिरोया जाता है। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में यह कौशल खूबसूरती के साथ प्रयोग हुआ है। अनामिका की कविताओं पर गौर किया जाये तो मंजु रुस्तोगी की यह टिप्पणी बेहद समीचीन है, जैसे – "समाज का स्त्री के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण तथा पुरुषवादी समाज के सही चेहरे को अनावृत करने के लिए अनामिका व्यंग्यपरक भाषा का प्रयोग करती हैं। यह व्यंग्यपरक भाषा उनके विजन एवं भाषिक बुनावट का अनिवार्य अंग है। पुराने प्रतीकों और पारिभाषिक शब्दों को इस व्यंग्य मुद्रा ने बिल्कुल बदला हुआ अर्थ दिया है।"[1] व्यंग्य का प्रयोग अनामिका की कविताओं में द्रष्टव्य है–

" 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'–

गाती है लोमड़ी / और सिर हिलाती है बिल्ली

अस्सी चूहे खाके / हज को चली !"[2]

[1]रुस्तोगी, मंजु. (2018). अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री विमर्श. पृ. 181

[2]अनामिका. (2019). डिलीट. पानी को सब याद था. पृ. 45

दोनों कवयित्रियों ने व्यंग्य प्रस्तुत करने के लिए प्रकृति, पशु-पक्षियों एवं पर्यावरण जैसी समस्याओं के साथ पुरुषवादी मनःस्थिति के विरुद्ध मुहिम चलाई है। अपर्णा की 'प्रेमर चरित्र' कविता में यह दृश्यबंध स्पष्ट है –

"शेरनी जैसी

पाँव बढ़ाती चलती रहती

छि'-छि' कार के / गहन बन में"[1]

संकेत एक भाषा चिन्ह के रूप हमारे अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को बखूबी स्पष्ट करने में सहायक होता है। देश की सेनाओं से लेकर वैज्ञानिक आदि भी 'कोड वर्ड' का इस्तेमाल अपने भावों को व्यक्त करने के उद्देश्य से करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में यह शैली विशेषतः प्रतिरोध के स्वर को मुखर करती है। समकालीन कविताओं में वैज्ञानिक विमर्शों को अधिक सफलता मिली है। यही कारण है कि अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में सांकेतिकता व व्यंग्यात्मकता का प्रभाव है। दोनों कवयित्रियों की रचना प्रक्रिया से गुजरते हुए यह अनुभव किया जा सकता है कि अनामिका के बरक्स अपर्णा की कविताओं में व्यंग्यात्मकता का प्रभाव अपेक्षाकृत कम है। बावजूद इसके अपर्णा की कविताओं में गहरी अर्थवत्ता और व्यंजनात्मक चमक पाठक को अभिभूत कर देती है। कहीं न कहीं दोनों रचनाकारों की रचनात्मक समझ उनकी काव्यिक व्यंग्य-विधान को नई दिशा व दृष्टि प्रदान की है।

पत्र हमारे संवेदनाओं एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हैं। ऐसे में कहें तो मनुष्य के एकांत तथा व्यक्तिगत भावनाओं के प्रतिरूप में 'पत्र' एक प्राचीन शैली है। पत्र शैली के संदर्भ में ग्रीक के 'एपीस्टल' (Epistle) शब्द का ध्यान आता है। 'EPI' का अर्थ पत्र होता है, जबकि 'Stlelo' का अर्थ होता है – 'प्रेषण'। खासकर न्यू टेस्टामेंट (NewTestament) के समय में यीशु क्रीष्ट के शिष्यों द्वारा सेंट पॉल के उद्देश्य में लिखा गया पत्र इसकी प्राचीनता एवं प्रभावशीलता को दर्शाता है। भारतीय कथा साहित्य में इस शैली का खूब प्रयोग हुआ है। कविताओं पर गौर किया जाए तो इसकी प्रभावशीलता अपेक्षाकृत कम

[1]महांति, अपर्णा. (2019). निःसंग ईश्वरी ओ अन्यान्य कविता. पृ. 144

नजर आती है। इस दृष्टि से अनामिका एवं अपर्णा महांति के प्रयास निश्चित रूप से सराहनीय हैं। अनामिका की 'पॉलीथीन' कविता पत्रात्मक शैली में लिखी हुई है। जैसे –

"प्रिय इया,

सादर प्रणाम !

आसमान में भी क्या"[1]

अपर्णा महांति की कविताओं में भी यह कौशल उनकी कलात्मकता का संकेत करता है।पत्रात्मक शैली का प्रयोग वह अपनी कविताओं में भी खूब की हैं। जैसे 'प्रेमिकार चिट्ठी' इसका सशक्त उदाहरण है-

"माननीय,

मेरे प्रेमी की पत्नी

तुम्हें / कोटि नमस्कार !....

इति,

तुम्हारे पति की हृदयेश्वरी

(तुम मानों या न मानों)[2]

कविताओं के भाव एवं रूप-विन्यास को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट है कि दोनों कवयित्रियों ने पत्रात्मक शैली का प्रयोग कविताओं में प्रभावशीलता को ध्यान में रखकर की हैं। इसके अलावा पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग भी कविताओं में देखने को मिलता है। भारतीय साहित्य में पूर्वदीप्ति शैली की समृद्ध परंपरा रही है। हिंदी में शोक-गीतों में फ्लैशबैक का प्रयोग ज्यादा दिखता है। निराला की लंबी कविता 'सरोज स्मृति' इस शैली की उचित व्यंजना करती है। इस शैली पर विचार किया जाये तो अनामिका की

[1]अनामिका. (2019). पॉलीथीन. दूब-धान. पृ. 90

[2]महांति, अपर्णा. (2019). प्रेमिकार चिट्ठी. झिअ पाईं झर्काटिए. पृ. 69-72

तुलना में अपर्णा की कविताओं में इसका अधिक प्रयोग हुआ है। जैसे संपूर्ण 'अतिथि' संकलन ही पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है। कविता की नायिका अपने प्रेमी को याद करती है। जैसे –

"बुझी पारु न थिली मुं

केमिति फेरि आसिला / निस्तब्ध प्राणरे

तुमकु इष्षित तम / पाइबार व्यग्र आकुलता"[1]

अनामिका एवं अपर्णा महांति ने अपनी कविताओं में आत्मकथन एवं एकालाप शैली का प्रसंगानुसार प्रयोग किया है। आत्मकथन में विशेषकर 'मैं' शैली के धरातल पर उनकी कविताओं को नए शब्द एवं सुंदर बिंब मिले हैं। स्त्री जीवन को दोनों कवयित्रियों ने अपनी-अपनी जगहों पर अनुभव किया है। इसीलिए उनकी कविताओं में सहानुभूति के बरक्स स्वानुभूति की उपस्थिति अधिक जीवंत है। कविताओं में अनुभव की प्रगाढ़ता को देखते हुए यह महसूस किया जा सकता है कि उनकी कविताओं में आत्माभिव्यक्ति के स्वर ही प्रमुख हैं। आत्मकथनात्मक शैली के रूप में अनामिका की 'ऊनी टोपी' कविता में वर्णन कुछ इस प्रकार है –

"मैं ही नालायक थी

जो सब-कुछ भूल गई

बेचारी माँ ने तो सब-कुछ सिखाया था-"[2]

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में डॉट्स का संकेतात्मक प्रयोग हुआ है। स्त्री जीवन के कई प्रकार के संघर्ष, वेदना के क्षण और भी तमाम अनकही बातों को डॉट्स के माध्यम से कह देने की कला दोनों लेखिकाओं में द्रष्टव्य है। प्रयोगात्मक धरातल पर अनामिका की तुलना में अपर्णा इसका

[1]महांति, अपर्णा. (1997). अतिथि. पृ. 04

[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 30

अधिक प्रयोग करती नजर आती हैं। जैसे अपर्णा की कविता 'कविता ओ स्त्री लोको' में एक स्त्री अपनी अनगिनत वेदना व समस्याओं को व्यक्त करती है–

"जा… चालिजा…

टिके न शोईले / मुंड बुलेईब कालि दिनसारा…

किए अछि… ?

तुलेईदेब ऐते काम ?

मुं कोऊ, सेमानकठारु अलगा जे… !!"[1]

अनामिका की कविताओं इसका प्रयोग 'सुजान' कविता में देखा जा सकता है। जैसे –

"कैसे प्रशस्तमन भरोसे से बोले

कि आओ साथ चलो !

एकदम से पास आकर खड़े हों गए… !

प्रलयलीन पृथ्वी हुई मेरे मन की…

कैसे अब तुमको समझाऊँ मैं-"[2]

निष्कर्ष के रूप में कहें तो अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में शैलीगत विविधता है। आत्मकथानात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, संवाद शैली, प्रश्न शैली, सांकेतिक रूप में डॉट्स का प्रयोग दोनों रचनाकार ने बखूबी किया है। इसके साथ दोनों की कविताओं में एक नास्टेल्जिया शैली भी विद्यमान है। हमारे कस्बों, गांवों की वह सूक्ष्म संवेदनाओं को जागृत करती है, जो हमारे अवचेतन मन को झकझोरती रहती है। अपर्णा की कविताओं में यह अधिक वास्तविकता के साथ सामने आती है। ओड़िशा प्रदेश की

[1]महांति, अपर्णा. (2009). तीर्थयात्रा. पृ. 16

[2]अनामिका. (2019). पानी को सब याद था. पृ. 28

आत्मा गाँव में बसती है, इसीलिए उनकी कविताओं में यह चित्र अधिक पुष्ट है। 'जोगिनी गीत' संकलन इसका उचित उदाहरण है। अनामिका की कई कविताओं में ऐतिहासिकता का अधिक प्रभाव है। विशेषकर हिंदी के प्राचीन व मध्यकालीन कवियों के साथ छायावादी कवियों के हवाले से उनकी कवितायें पाठकों को निश्चित ही प्रभावित करती है। इस कोटि की कविताओं में 'हिंदी साहित्य का घरेलू इतिहास','सुभद्रा कुमारी चौहान','घनानंद','सुजान' आदि प्रशंसनीय है। साथ में उन्होंने कई जगहों पर प्राचीन बारहमासा पद्धति का भी अनुसरण किया है। जिसमें 'आषाढ़', 'भादों','चैत में न्यायालय', 'जेठ' आदि कविताएं शामिल हैं। कहीं न कहीं अपर्णा की तुलना में अनामिका के पास शैलीगत वैविध्य अधिक है। तमाम समानता एवं असमानता के विविधता के बावजूद दोनों रचनाकारों की की कविताएं निश्चित रूप से सशक्त हैं।

5.3 लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग

लोकोक्ति का संबंध उस कथन अथवा उक्ति से है जो किसी भी क्षेत्र विशेष या समाज में प्रचलित कोई विशिष्ट अर्थ-विन्यास की ओर स्पष्ट संकेत करती हो। इसकी उत्पत्ति साधारण जन-मानस के अनुभव के आधार पर स्वतःस्फूर्त (Spontaneous) होती है। अँग्रेजी में इसे 'प्रावर्ब' (Pro-verb) भी कहा जाता है। कहा जा सकता है कि लोकोक्ति किसी समुदाय, समाज, संस्कृति आदि के अनुभव एवं उससे प्राप्त ज्ञान के सार-टिप्पणी के रूप में साधारण जनमानस में प्रचलित है। लोकोक्तियों के उचित प्रयोग से भाषा और भी रोचक एवं संवेदनायुक्त होने के साथ-साथ उसकी भाषिक सौंदर्य एवं सार्थकता बढ़ जाती है। मुहावरा का सरल अर्थ होता है बातचीत करना या फिर उत्तर देना। यह अभिव्यंजना के विशिष्ट वाक्य-पद्धति के रूप में वाक्यांश को पूर्णता प्रदान करता है। कुछ लोग मुहावरे के स्थान पर 'रोज़मर्रा','तर्जेकलाम' जैसे शब्दों का प्रयोग भी करते हैं।

लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से उसकी भाषा सुदृढ़, गतिशील और हृदयस्पर्शी बन जाती है। साधारण जन-जीवन के तनावों, बेचैनियों, अभावों आदि की सहज अभिव्यक्ति के रूप में मुहावरे एवं

लोकोक्तियों की विशिष्ट उपस्थिति रहती है। राजेश जोशी के शब्दों में कहें तो– "मुहावरा कवि की मानसिकता का मामला भी है। एक अतिरिक्त अनुशासन जो रचना की अपनी आंतरिक माँग से बाहर का है, सृजन के लिए बाधक ही होगा। (कभी-कभी शार्टकट या सहूलियत भी) छंद से यह एक अर्थ में भिन्न मामला है, क्योंकि छंद कवि द्वारा अर्जित नहीं..."[1] अनामिका और अपर्णा महांति की कविताओं में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का यथोचित उपयोग हुआ है। दोनों रचनाकारों ने अपने समय एवं समाज के लोक-प्रचलित मुहावरेदार उक्ति विशेष को अपनी कविताओं के माध्यम से जीवंतता प्रदान की है। अनामिका के रचना कौशल के संदर्भ में आलोचक नामवर सिंह कहते हैं – "अनामिका अपनी लोक को बख़ूबी जानती हैं। जैसे ही रचना लोक में प्रवेश करती हैं जीते जागते जानदार चित्र सामने आते हैं। भाषा बदल जाती है। सारे मुक्ति संघर्षों के सूत्र उनसे ही जुड़ते हैं...एक मुकम्मल तस्वीर बनती है और मुक्ति का आधार व्यापक होता चला जाता है।"[2] इस प्रकार उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्त्री मुक्ति के आभ्यंतर जगत को समझने के लिए समय एवं परिस्थितिजन्य क्षेत्रीय लोक-संस्कृति को पहचानना जरूरी है। इस दृष्टि से दोनों रचनाकारों की समझ उनके अपने लोक से है, जहां स्त्री मुक्ति के सभी बिंब खुलते हैं। एक प्रचलित लोकोक्ति है –'बाल न बाँका होना'। अनामिका की कविता 'ऊनी टोपी' में इसका सुंदर प्रयोग है। जैसे –

"कितना रखती है ख़याल,
कि बाँका होने नहीं देती बाल,
रखती है उनको सुरक्षित-
अक्षरशः आरक्षित / टोपी के घर में।"[3]

ठीक इसी प्रकार 'गंगा नहाना' भी एक चर्चित लोकोक्ति है। इसका उदाहरण 'पहली पेंशन' कविता में देखा जा सकता है। जैसे –

[1]जोशी, राजेश. (2004). एक कवि की नोटबुक. पृ. 110
[2]अनामिका. (2019). दूब-धान. फ्लैप से
[3]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 31

"चूहेदानी में इच्छाएं फँसायीं

(हुलुर-मुलुर सारी इच्छाएं)

और कहा कार्लेकर साहब से –

"चलो जरा, गंगा नहा आयें !"[1]

यही 'गंगा नहाना' लोकोक्ति अपर्णा महांति की 'गंगा' कविता से तुलनीय है। 'गंगा नहाना' का अर्थ पवित्र हो जाना। यही पवित्रता एक स्त्री के लिए कैसे अलग हो सकती है। इसके प्रतिवाद स्वरूप अपर्णा ने अपनी 'गंगा' कविता में पुरुषवादी मानसिकता कर पर करारा प्रहार किया है। अपर्णा के शब्दों में यह वस्तु-चित्र लोकोक्ति के माध्यम से देखा जा सकता है। जैसे –

"गंगा हेले सीना / केही कहि पारिब

गंगा कहिले थिबी / गांगी कहिले जिबि

ऐडे दंभरे !"[2]

एक लोकोक्ति है 'पानी की तरह बहा देना'। इसका सरल अर्थ अत्यधिक खर्च करना। अपर्णा ने इस लोकोक्ति का प्रयोग पानी की नियति को ध्यान में रखकर किया है। पानी का सरल स्वभाव है नीचे की ओर बह जाना। इस दृष्टि से एक स्त्री 'देवी' नहीं बनना चाहती, वह एक स्त्री की हैसियत से 'देवी' पद से नीचे बहती हुई केवल स्त्री के रूप में रहना पसंद करती है। वह लिखती हैं –

"जउठि जिए / समुद्र परी दिशिले,

से आड़कु नईटीए परि धाईंगलि"[3]

[1]अनामिका. (2019). अनुष्टुप. पृ. 68

[2]महांति,अपर्णा. (2019). झिअ पाईं झर्काटिए. पृ. 12

[3]वही. पृ. 19

मुहावरे की दृष्टि से भी दोनों कवयित्रियों ने अपने-अपने ढंग से नए प्रयोग किए हैं। 'परदेश का पहला जाड़ा' कविता में मुहावरे 'मन अटकना' का प्रयोग करती हुई अनामिका लिखती हैं –

"उन बच्चों को मैंने

मन ही मन चुम्मी ली"[1]

ओडिया में एक मुहावरा है 'अग्निपरीक्षा देना'। जिसका अर्थ है खुद को सही प्रमाणित करना। इस दृष्टि से 'सती' कविता स्त्री जीवन की कलंकित प्रसंगों को सामने रखती है। प्रस्तुत मुहावरा का प्रयोग करते हुए अपर्णा लिखती हैं –

"जलंता / अंगार उपरे / ठिआ होई सतीत्वर

शीतल चलना रे

थंडा करीदेउथाए सभिंकू।"[2]

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि अनामिका एवं अपर्णा महांति अपने लोक को बखूबी समझती हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से उनकी कविताएं निश्चित रूप से और प्रभावी हो गई हैं। सतर्क एवं सजग शब्दों के साथ दोनों कवयित्रियों ने अपने-अपने लोक-जीवन का तो परिचय दिया ही है, परंतु सभी के मूल में स्त्री की आत्माभिव्यक्ति दबे-दबे कंठों से अपने संघर्ष और व्यथा की गाथा व्यंजित कर रही है।

[1]अनामिका. (2010). अनुष्टुप. पृ. 126

[2]महांति,अपर्णा. (2019). झिअ पाईं झर्कटिए. पृ. 18

5.4 बिंब एवं प्रतीकों का प्रयोग

समकालीन कविताओं पर गौर किया जाए तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्तमान पीढ़ी के रचनाकारों ने प्रायः सरल, सुंदर, जीवंत तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए सदैव प्रयोगरत रहे हैं। भावाभिव्यक्ति में भाषा एवं शब्द चयन के साथ उसके प्रयोग कौशल का मोह रचनाकार में हमेशा देखने को मिलता रहा है। 'बिंब' का सरल अर्थ है- 'इमेज'। इसे ओड़िया भाषा में 'चित्रकल्प' भी कहा जाता है। चित्रकल्प या बिंब का संबंध हमारी इच्छा, आकांक्षा एवं अनुभव से लैस यथार्थ एवं काल्पनिक चित्रों से होता है। कविता में यह शब्दों द्वारा प्रस्तुत वह इंद्रिय-चित्र है जो मानवीय भावनाओं से प्रेषित रूपात्मकता को विशिष्ट स्थान देता है। संक्षेप में कहा जाए तो रचनाकारों के उत्तेजित भावों का संप्रेषणीय रूप ही बिंब है। विशेषकर रचनाकर अपने काव्य के वातावरण निर्माण करने हेतु बिंबों का सहारा लेते हैं। कविता सृजन के आरंभिक समय से ही साहित्य में बिंबों का प्रयोग होता रहा है। कहीं न कहीं समकालीन साहित्य में कवि अपने कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए बिंब विधान को अनिवार्य साधन के रूप में स्वीकार करते हैं।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में बिंबों का सूक्ष्म प्रयोग हुआ है। छोटे-छोटे शब्द चित्रों के माध्यम से दोनों कवयित्रियों ने स्त्री जीवन के यथार्थ-बोध को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है साथ ही नए-पुराने बिंबों के माध्यम से स्त्री-मुक्ति के प्रसंग को जीवंतता भी प्रदान किया है। अनामिका की भाषा एवं बिंब विधान पर दिविक रमेश का कथन उल्लेखनीय है- "अनामिका के पास दृश्यबंधों को सजीव करने वाली भाषा है, बिंबधर्मिता पर इनकी पकड़ अच्छी है…भाषा की यह विशिष्टता अनामिका की अपनी है।"[1] अनामिका ने नाखून, केश आदि के माध्यम से एक सचित्र दृश्य खींचती हैं, जैसे –

"अपनी जगह से गिरकर

कहीं के नहीं रहते

केश, औरतें और नाखून"-"[2]

[1]अनामिका. (2019). कविता में औरत. फ्लेप से

[2]अनामिका. (2019). खुरदुरी हथेलियाँ. पृ. 15

तुलनात्मक रूप में विचार किया जाये तो अपर्णा महांति का बिंब विधान कौशल अनामिका से भिन्न नहीं है। विविधताओं की तुलना में अनामिका से कुछ भिन्नता जरूर देखने को मिलती है, जैसे प्रकृतिगत बिंब,यौनिकता के बिंब का आधिक्य है। 'उसे' कविता का एक दृष्टांत उल्लेखनीय है-

"उसे क्या / आँका जा सके तुली से ?

गढ़ा जा सके पत्थर से ? / कहा जा सके कविता में ?

उड़ान में ईगल / ढलान में जलप्रपात

रटन में कोयल / लोटन में लहर

जोड़ में सुवास / घटांन में सन्यास / लिए

वह ठिकाना / बदलती रहे बार-बार।"[1]

अपर्णा के बरक्स अनामिका के पास भावनात्मक बिंबों का आधिक्य है। 'दरवाजा' कविता के माध्यम से एक स्त्री जीवन का कटु सत्य ही उद्भाषित है, जैसे –

"मैं एक दरवाजा थी,

मुझे जितना पीटा गया

मैं उतनी खुलती गई।

अंदर आए आने वाले तो देखा-

चल रहा एक वृहत्चक्र-

चक्की रुकती है तो चरखा चलता है"[2]

[1]महांति, अपर्णा. (2007). नष्टनारी. (अनु. महेंद्र शर्मा). पृ. 01

[2]अनामिका. (2019). अनुष्टुप. पृ. 52

अनामिका एवं अपर्णा महांति ने अपनी कविताओं में प्रतीकों का भी खूब प्रयोग किया है। प्रतीक को अँग्रेजी में 'सिंबोल' कहा जाता है। पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने 'प्रतीक' को पारिभाषित करते हुए लिखा है- "प्रतीक एक प्रकार का संकेत है, पर संकेत और प्रतीक दोनों में व्यापकत्व और संकोचन का अंतर है। प्रत्येक प्रतीक संकेत हो सकता है, पर प्रत्येक संकेत प्रतीक नहीं हो सकता। संकेत का साँचा प्रतीक से अधिक अनिश्चित और अनेकविध होता है।"[1] साधारण अर्थ में कहें तो प्रतीक मानवीय अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का भाव सौंदर्य है। प्रतीक प्रायः भाव एवं मनोविकार संबंधी प्रेरक तत्वों को जगाते हैं। देखा जाये तो भाव एवं मनोविकार संबंधी निबंधों में भी रामचन्द्र शुक्ल इसी ओर संकेत किया है। दोनों रचनाकारों ने कई प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग का प्रयोग किया है, जैसे – प्राकृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक,मिथकीय प्रतीक, यौन प्रतीक, सामाजिक प्रतीक आदि। अनामिका ने अपनी 'जुए' कविता में प्रतीक का सुंदर प्रयोग किया है–

"क्या जाने कितनी / शताब्दियों से
चल रहा है यह सिलसिला
और एक आदि स्त्री / दूसरी उतनी ही
पुरातन सखी के / छितराए हुए केशों से
चुन रही है जूएँ, सितारे और चमगुल !!"[2]

अनामिका की 'पतिव्रता','गृहलक्षी','चिट्ठी लिखती हुई औरत' आदि कविताओं में भिन्न-भिन्न प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

अपर्णा महांति की कविताओं में पुराने प्रतीकों के साथ नए-नए प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है। 'झिअ पाईं झर्काटिए' कविता में एक खिड़की का प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है। खिड़की ही स्त्री मुक्ति का

[1]शीतांशु, पांडेय शशिभूषण. (1974). नई कहानी के विविध प्रयोग. पृ. 143
[2]अनामिका. (2019). अनुष्टुप्. पृ. 56

प्रतीक है। खिड़की के माध्यम से एक स्त्री अपने भविष्य को देखना चाहती है। अपने इच्छानुसार जीना चाहती है कविता में यह भाव अधिक स्पष्ट है। जैसे –

"ज्यादा कुछ नहीं

घर में रहती एक खिड़की

तो जीवन को मुट्ठी में

रख सकती थी लड़की"[1]

अपर्णा की 'गंगा','बन हरिणी','अतिथि','आजी श्रीरामराजयरे' आदि कविताओं में भी प्रतीकों का सुंदर प्रयोग हुआ है। अपर्णा का सबसे चर्चित संकलन 'नष्टनारी' एक प्रतीकात्मक प्रयोग है। आलोचक महापात्र नीलमणि साहू कहते हैं– "यह समझना उचित होगा कि, 'नष्टनारी' कभी भी 'भ्रष्ट नारी' नहीं हैं।"[2] अपर्णा ने ज़्यादातर अपनी कविताओं में प्रकृति एवं यौन विकृति के प्रतीकों का सूक्ष्म प्रयोग किया है।

निष्कर्ष के रूप में कहें तो दोनों कवयित्रियों ने पूरे व्यापक फ़लक पर बिंब एवं प्रतीकों का प्रयोग किया है। दोनों रचनाकारों ने अपनी-अपनी विशिष्टता के साथ कविताओं में अपनी उपस्थिति दर्ज की है।

[1]महांति,अपर्णा. (2019). झिअ पाईं झर्काटिए. पृ. 01

[2]साहू,महापात्र नीलमणि.(2015). कवि अपर्णान्क'नष्टनारी'पढिला परे. अपर्णापूर्णतमा. (संपा. डॉ. गिरीश चंद्र साहू & डॉ. भुवनानन्द साहू). पृ. 118

5.5. अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में शिल्पगत वैशिष्ट्य का तुलनात्मक अध्ययन

समकालीन भारतीय कविता में शिल्पगत वैविध्य ने रचनाकारों की मौलिक अनुसृजन को नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान की है। हिंदी एवं ओड़िया भाषा की अपनी-अपनी विशिष्टता है। अलग-अलग लोग, विचारधारा, संस्कृति, समाज और रीति-रिवाज आदि में कविताएं अपने प्रदेश का प्रतिनिधित्व करती हुए समाज की समस्याओं और संघर्षों को व्याख्यायित कर मुक्ति की कामना करती हैं। अनामिका एवं अपर्णा ने विशेषकर स्त्री-जीवन के सभी पहलुओं को अपनी कविताओं में रचने की कोशिश की है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से दोनों कवयित्रियों का स्वतंत्र अभिव्यक्ति कौशल निश्चय ही उल्लेखनीय है।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की भाषागत उपलब्धि अप्रतिम है। अनामिका की कविताओं में स्त्री-भाषा का उपयुक्त प्रयोग हुआ है। हिंदी सहित अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत आदि का प्रभाव भी दोनों रचनाकारों के यहाँ देखने को मिलता है। इसी प्रकार अपर्णा की कविताओं की भाषा संक्षिप्त और गद्यात्मक है। एक ओर जहां अनामिका की कविताओं में अँग्रेजी शब्दों का आधिक्य है वहीं अपर्णा की कविताएं संस्कृतनिष्ठ तत्सम एवं तद्भव शब्दों से प्रभावित है। अनामिका की अधिकतर कविताओं की भाषा प्रायः यौनिकता से दूर है, वहीं अपर्णा की कविताओं में इसकी आधिक्य स्पष्ट है। अपर्णा की कोशिश हमेशा छोटे-छोटे शब्दों के साथ संवेदनशील मुद्दों को अनायास स्पर्श करने का रहता है। उनकी कविताओं में कहीं-कहीं शब्द सीधे पितृसत्ता पर प्रहार करते हैं तो कभी-कभी रहस्यात्मक भी हो जाते हैं।

शैलीगत वैशिष्ट्य के आधार पर अनामिका एवं अपर्णा ने समान हस्तक्षेप किए हैं। शैली के कारण दोनों रचनाकारों की भाषा एवं भावनात्मक आवेग को नया आयाम मिला है। उन्होंने प्रायः कथोपकथन या संवाद शैली, प्रश्नात्मक शैली, पत्रात्मक शैली,आत्मकथन व एकालाप शैली, सांकेतिक और व्यंग्यात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, डॉट्स का प्रयोग आदि का प्रयोग समान रूप में किया है। अनामिका के बरक्स अपर्णा की कविताओं में नास्टेल्जिया का अधिक प्रभाव है। दोनों रचनाकारों की कई कविताएं

जादुई यथार्थवाद के निकट हैं। अभिव्यंजना के कौशल में दोनों रचनाकारों की उपस्थिति हिंदी एवं ओड़िया साहित्य को शैलीगत दृष्टि से और अधिक मजबूत करती है।

अनामिका एवं अपर्णा महांति अपने लोक को बखूबी समझती हैं। दोनों की कविताओं में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग सार्थक एवं प्रसंगानुसार हुआ है। उनकी रचनाओं से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि अपर्णा की तुलना में अनामिका ने लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग अधिक किया है। उनकी कविताओं से इतिहासबोध एवं वैज्ञानिक दृष्टि साफ झलकती है। इस दृष्टि से उनकी संवेदना विमर्श के मूल अर्थ को सार्थक सिद्ध करती है। दोनों रचनाकारों ने मिथकों का सार्थक प्रयोग अपनी-अपनी कविताओं में बखूबी किया है। मुहावरों के प्रयोग से उनकी कविताएं और भी जीवंत हो जाती है।

बिंब एवं प्रतीकों की बात की जाये तो दोनों रचनाकारों ने कई अभिनव प्रयोग किए हैं। प्राकृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, मिथकीय प्रतीक, यौन प्रतीक, सामाजिक प्रतीक आदि को दृष्टिगत रखते हुए यह ज्ञात होता है कि अनामिका की तुलना में अपर्णा के पास ज्यादा प्राकृतिक और यौनिकता से संबद्ध प्रतीक हैं, वहीं अनामिका ने सामाजिक प्रतीकों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक किया है। प्रयोग एवं वैविध्य के स्तर पर दोनों कवयित्रियों ने अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की है।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की शिल्पगत उपलब्धि पर विचार करते हुए यह अनुभव हुआ है कि कविताओं को संवेदना के धरातल पर विचार करते हुए हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि उसके शिल्पगत वैशिष्ट्य की भूमिका रचना के आत्म के लिए कितना महत्वपूर्ण है और कितना सार्थक।

निष्कर्ष

"उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलना से ही हुई है और वह तुलना पर ही आधारित है।"

-मैक्समूलर

निश्चित रूप से तुलनात्मक शोध भारतीयता की अवधारणा को विकसित करने एवं समझने का महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। भारत की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विविधता की अनुभूति हमें तुलनात्मक शोध के द्वारा ही प्राप्त होती है। तुलनात्मक शोध ज्ञान के विस्तार में वृद्धि करने के साथ-साथ भाषा, साहित्य एवं देशकाल के बंधन से मुक्त करने में सहायक होता है। कालखंड की दृष्टि से देखा जाय तो हिंदी एवं ओडिया का समकालीन रचना संसार अत्यंत समृद्ध एवं सशक्त है। स्पष्ट है, साहित्य हमेशा अपने समय एवं समाज की वैचारिकी से प्रभावित होता है। स्त्री विमर्श जैसी अवधारणा ने साहित्य की हर विधाओं को समृद्ध करने एवं सार्थक दिशा देने का कार्य किया है। समकालीन स्त्री जीवन को उसकी व्यापक संपूर्णता में चित्रित करने के लिए व्यक्तिगत अनुभवों की आवश्यकता होती है। अनामिका एवं अपर्णा महांति की स्त्री विमर्शमूलक कविताओं में पूरी विविधता एवं विशिष्टता के साथ देखा जा सकता है। अनामिका की रचनाशीलता ने उन्हें सर्वप्रथम एक कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठा दी है। उनकी कविताओं से गुजरते हुए ऐसा महसूस होता है कि उनकी कविताएं हमारे सामने हमेशा नई चुनौती और संभावनाओं के साथ उपस्थित होती नजर आती है। ठीक इसी प्रकार समकालीन ओड़िया स्त्री-विषयक कविताओं को नया आयाम देने में अपर्णा महांति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने विशेषतः ओड़िया स्त्रीवादी कवयित्रियों की वह चुप्पी तोड़ी,जो सदियों से मुक्ति अभिव्यक्ति की तलाश में रही हैं।

समकालीन हिन्दी एवं ओड़िया कविताओं में स्त्री विमर्श मूलक लेखन को दोनों कवयित्रियों ने अपनी रचनाशीलता के जरिए सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। कालावधि में साम्यता होने के साथ-साथ दो अलग-अलग भौगलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिवेशों की पारंपरिक रूढ़ विचारधारा को चुनौती देते हुए मौलिक भावबोध एवं प्रतिरोध की चेतना से लैस सृजनशीलता को नई दिशा एवं दृष्टि प्रदान करने की दोनों रचनाकारों ने भरपूर कोशिश की है। भारतीय स्त्री की वास्तविक स्थिति, उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण एवं यौन हिंसा जैसे अपराध को रेखांकित

करने के साथ-साथ इस विषम परिस्थितियों में उनकी कविताएं विद्रोह के स्वर को अधिक मजबूत करती हैं। दोनों कवयित्रियों ने अपनी कविताओं में कस्बों, गाँवों, शहरों व फुटपाथ से लेकर अंतराष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाली स्त्रियों के त्रासद अनुभवों को शब्दबद्ध करने का व्यापक प्रयास किया है।

'विमर्श' शब्द वर्तमान में समाज के हाशिए के वर्ग की आवाज को उठाने हेतु अधिक प्रतिबद्ध एवं प्रचलित है। स्पष्ट है,अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं की संबद्धता स्त्री विषयक मुद्दों से है, इसलिए दोनों कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री मुद्दे तमाम जद्दोजहद के साथ उभरकर आए हैं। पाश्चात्य एवं भारतीय स्त्रीवादी दृष्टिकोण के आधार पर हम स्त्री-विमर्श के व्यापक तथा गहन अवधारणा व स्वरूप को समझ सकते हैं। पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्य में इसकी समृद्ध परंपरा रही है। समकालीन हिंदी की तरह सांप्रतिक (समकालीन) ओड़िया कविताओं में भी स्त्री विषयक मुद्दे संजीदगी से अभिव्यक्त हुए हैं लेकिन प्रारंभ में हिंदी के समकालीन साहित्य में स्त्री लेखन की परंपरा जिस प्रकार व्यवस्थित तरीके से एक आंदोलन की तरह सामने आई है, उस रूप में समकालीन ओड़िया साहित्य में दिखाई नहीं देती। समकालीन ओड़िया कविता में अपर्णा से पहले ब्रंहोत्री महांति, प्रतिभा शतपथी आदि ने स्त्री विमर्शमूलक लेखन की शुरुआत की है, परंतु अपर्णा से ही समकालीन ओड़िया कविताओं में स्त्री अस्मितामूलक लेखन को नया प्लेटफॉर्म मिला। विशेषकर स्त्री-भाषा के परिप्रेक्ष्य में वह अपनी पूर्ववर्ती कवयित्रियों से भिन्न रहीं और उन्होंने वर्तमान पीढ़ी की समृद्ध परंपरा को जिस प्रकार से नई दिशा देने का कार्य किया, सराहनीय है।

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया कविता में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की भूमिका महत्वपूर्ण है। समाज एवं राजनीति की दृष्टि से यह दशक आंदोलनों की गूंज, घोटाले, भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता, आतंकवादी तथा नक्सल गतिविधियों सहित भूमंडलीकरण के आरंभ एवं विस्तार का दौर है। इस प्रतिकूल परिस्थिति में भी दोनों रचनाकारों ने विशेषकर स्त्री-स्वतंत्रताबोध, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकारों, स्त्री-नियति एवं शोषण, अस्मिता की पहचान, अस्तित्वबोध, यौन कुंठा संबंधी विचारों पर खुली चर्चा तथा महत्वाकांक्षा जैसे विषयों को लेकर अपनी स्वतंत्र प्रतिक्रियाएं दीं। खासकर स्वतंत्रता के बाद देश मोहभंग की स्थिति से गुजर रहा था। इस त्रासदी से देश में एक

व्यापक स्तर पर जन एवं धन की हानि के साथ मानवीय मूल्य एवं संबंध विघटित होते रहे। धीरे-धीरे यह और अधिक विस्तृत होता गया। धर्म, संप्रदाय, जाति, लिंग आदि के माध्यम से देश की मूलभूत अवधारणा खंडित होने लगी और यही परिस्थिति उत्तरोत्तर विघटन की ओर अग्रसर होती गई। अनामिका एवं अपर्णा का समय एवं समाज वर्तमान परिप्रेक्ष्य को अत्यंत बारीकी के साथ उद्घाटित करता है। 21वीं सदी के लगभग सभी महत्वपूर्ण प्रासंगिक बिंदु उनकी कविताओं का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। समाज में स्त्रियों की दोयम दर्जे की स्थिति के साथ उनके प्रति शोषण, भेदभाव एवं तथाकथित सामाजिक मान्यताओं को उनकी कविताएं चुनौती देती हैं।

समकालीन हिंदी एवं ओड़िया स्त्री कविताओं की समृद्ध परंपरा रही है। इस कालखंड में अनामिका एवं अपर्णा महांति की अपनी स्वतंत्र पहचान रही है। दोनों कवयित्रियों की रचना प्रक्रिया से गुजरते हुए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने अपनी उपस्थिति को सम्पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कविताओं में दर्ज करने का बहुमूल्य प्रयास किया है। उनकी कविताएं वर्तमान समाज से सीधे टकराती हैं। अधिकतर कविताएं स्त्री-पुरुष संबंधों में सामाजिक सहभागिता, समानता एवं समरसता पर विशेष बल देती हैं। सामाजिक विसंगतिजन्य जीवन मूल्यों की असमानता को खारिज करते हुए इनकी कविताएं मानवीय मूल्यों की रक्षा करने के पक्ष में विश्वास रखती हैं। दोनों की कविताओं में भारतीय स्त्री की छवि स्पष्ट रूप से चित्रित हुई है। मुक्ति के स्वर सहित स्त्री मन के विद्रोह की भावाभिव्यक्ति ने समसामयिक समाज के यथार्थ को प्रतिबिंबित किया है।

विमर्श ने स्त्री जीवन एवं संघर्ष से जुड़े सभी प्रसंगों को चिंतन-मनन के क्रम में नए-नए पद्धतियों के साथ विश्लेषित किया है। ध्यातव्य है, पितृसत्ता को स्त्री के व्यक्तित्व विकास में सबसे बड़ी बाधक मनःप्रवृत्ति के रूप में भी स्वीकार किया गया है। साधारणतः स्त्रीवादी विमर्श को भारतीय बुद्धिजीवियों ने पाश्चात्य मूल्यों के साथ विचार करने का अधिक प्रयास किया है, जबकि इसे भारतीय दृष्टिकोण से भी समझने की आवश्यकता है। वेदों तथा पुराणों में वर्णित भारतीय नारी देवी, शक्ति तथा मातृस्वरूपा है। बावजूद इसके प्राचीन समय से स्त्री को पुरुष के समकक्ष दर्जा नहीं मिल पाया है। इतना ही नहीं पुरुष हमेशा से ही एक स्त्री को भोग की वस्तु, दासी, अबला आदि रूपों में ही स्वीकार करता आया है।

पितृसत्ता का सीधा संबंध पारंपारिक मानसिकता से है। यहाँ एक ओर पुरुषों की शक्ति, उनका आधिपत्य आदि है, तो वहीं दूसरी ओर स्त्रियों की अवमानना, अधीनता आदि से जुड़ा हुआ है। सदियों से स्त्री अधिकारों को पुरुष के हाथों प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में हस्तांतर किया जाता रहा। इस प्रकार की मानसिकता एवं विसंगति के विरुद्ध अनामिका एवं अपर्णा महांति दोनों रचनाकारों ने अपनी कविताओं में पुरजोर विरोध किया है।

अनामिका एवं अपर्णा महांति के रचना संसार में 'वसुधैवकुटुंबकम्' की संकल्पना दृष्टिगत होती है। आज के समाज में धर्म के नाम पर हिंसा को बढ़ावा दिया जा रहा है। हमारे समाज में हिंदू-मुस्लिम विवाद काफी गहराता जा रहा है। वोट बैंक की राजनीति में लोग धर्म व मजहब की मूल भावना से दूर हो रहे हैं। इस प्रकार मनुष्यों में बढ़ती दूरी के बावजूद अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं में स्त्री केवल स्त्री की हैसियत से अपने अधिकारों पर हक जताते हुए नजर आती है। निःसंदेह दोनों रचनाकारों ने अपनी वेदना, संघर्ष एवं विचारधारा को कविता में अभिव्यक्ति दी है। विशेषकर 'मैं', 'तुम' और 'हम' जैसे संबोधन व्यष्टि से समष्टि का भावबोध कराते हैं। दोनों कवयित्रियों की कविताओं में स्त्री मुक्ति ही मानव मुक्ति के उत्स के रूप में उभरकर आयी है।

मानवीय उन्नति तथा विकास के लिए प्रेरणा के क्रम में मनुष्य नैतिक मूल्यों का निर्माण करता है। समय सापेक्ष सामाजिक बदलाव के कारण नैतिक मूल्यों में भी परिवर्तन होते रहे हैं। 21वीं सदी का मानवतावाद नैतिक मूल्यों को सजोने के बजाय विघटन की ओर अग्रसर है। सामाजिक संबंधों के अंतर्गत स्थापित पारंपारिक पुरुषवादी मानसिकता को दोनों लेखिकाएँ अस्वीकार करती हैं। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताएं स्त्री तमाम प्रतिबंधों को तोड़ती हुई अस्मिता की लड़ाई में खुद शामिल होने की जद्दोजहद में है। सदियों से प्रताड़ित स्त्री की विद्रोही भावना जगने लगी। चेतना के विस्फोट में वह अपने पैरों की बेड़ियों को तोड़कर मुक्त होना चाहती है। यही मुक्ति भावना नारी के मन में व्यक्तिगत स्तर तक सीमित न होकर सामाजिक चेतना को विस्तार देती है। इनकी कविताओं में स्त्रियाँ नैतिक मानदंडों में अपनी स्वतंत्र परिधि से मुक्त होना चाहती हैं।

अनामिका एवं अपर्णा की कविताएं स्त्री उपेक्षित एवं दोयम दर्जे की पीड़ा के प्रति व्यथित हैं। व्यक्तित्व विकास के क्रम में बेजुबान औरत के त्रासद अनुभवों को दोनों कवयित्रियों ने अपने दृष्टिकोण से कविता में सृजित किया है। खासकर उन्होंने एक स्त्री के शारीरिक व मानसिक शोषण को ज्यादा महत्व दिया है। दलित, आदिवासी व अल्पसंख्यक स्त्रियों के वास्तविक जीवन के व्यापक परिप्रेक्ष्य को दोनों रचनाकारों ने अपेक्षाकृत कम चयनित किया है। यद्यपि पागल औरत, विस्थापन की स्त्रियाँ,वृद्धा आदि विषय पर दोनों लेखिकाओं का सृजन उल्लेखनीय है।

वर्तमान समय में हम कहते हैं कि समकालीन स्त्री कविता ने पूर्णतः सारे रूढ़िवादी चिंतन व परंपरा आदि को नकार दिया है, तो यह कथन पूर्णतया गलत होगा। अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में एक अंतर्द्वंद्व है, जहाँ कविता न तो परंपरा का त्याग करती है और न ही विद्रोह में प्रेम की उपस्थिति को। उनकी कविताओं में प्रेम में वह विरोधात्मक रूप है, जहाँ से मुक्ति प्रसंग को नया आयाम मिलता है। अपर्णा की लगभग कविताओं में इस विषय पर ज़ोर दिया गया है कि प्रेम ही स्त्री मुक्ति के लिए उपयुक्त साधन है। प्रेम एक दार्शनिक सत्य है, परंतु जमीनी स्तर पर देखा जाय तो जहाँ पितृसत्ता हावी हो और उसमें परंपरा का एक द्वन्द्वात्मक समाज चक्र हो, वहीं पर दोनों कवयित्रियों का समाज को ऐसा विकल्प देना ; प्रशंसनीय है। कहीं न कहीं लगभग कविताओं में विरोधाभाष की प्रकृति है। इस प्रसंग में अनामिका की 'गृहलक्ष्मी','पतिव्रता' आदि तो अपर्णा की 'एबेमुंप्रेमरे','अग्नि कमलिनी','अतिथि','असती','जोगिनी गीत' जैसी कविताएं विचारणीय है। प्रेम एवं परंपरा के संदर्भ में उनकी कविता विरोधाभाषी तो है, किंतु इस विरोधाभाष में भी जो प्रमुख बात है, वह है –'विद्रोह'। अनामिका की कविताओं में विद्रोह का भाव ही सर्वत्र विद्यमान है। यही उनकी कविताओं की विशेषता है।

अनामिका की कविताओं का वैशिष्ट्य है कि उनके यहाँ स्त्रियाँ भारतीय पारिवारिक संबंधों में विश्वास रखती हैं। ऐसे में उनकी 'पतिव्रता' जैसी कविताएं इस संदर्भ में उद्धृत करना समीचीन प्रतीत होती है। अधिकतर कविताओं में स्त्री-पुरुष प्रेम संबंधों के बीच यौनिकता का बहिष्कार किया गया है। प्रेम की ऐंद्रिकता एवं आध्यात्मिक अतिवादों से मुक्त उनकी कविताएं प्रासंगिक हैं। अपर्णा की

कविताओं पर ध्यान देने से यह ज्ञात होता है कि लगभग कविताएं प्रेम एवं विद्रोह के अधिक निकट हैं। स्त्री-पुरुष प्रेम प्रसंग में 'यौनिकता' शब्द चित्र उनकी विद्रोह भावना को दर्शाता है। कुछ कविताएं आध्यात्मिक रहस्यवाद एवं साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेम में पूर्ण विश्वास, आत्मीयता की तलाश करती उनकी कविताएं प्रेममय भविष्य के लिए प्रतीक्षारत है। दोनों कवयित्रियों की कविताओं में एक साम्यता है, साथ ही कविता में अंतर्विरोध व विरोधाभास की प्रकृति है। पितृसत्ता के विरोध में एक ओर कविता प्रेम पर ही विश्वास रखती है वहीं दूसरी ओर कविता में परंपरा के साथ उसका एकीकृत रूप देखने को मिलता है। जहां समर्पण का भाव है, वहीं विद्रोह की उपस्थिति है। इस दृष्टि से दोनों कवयित्रियों की रचनाओं में प्रेम, परंपरा एवं विद्रोह की संकल्पना साम्य के धरातल पर अधिक निकट है।

अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में यौन कुंठा के स्वर गंभीर भावाभिव्यक्ति के साथ सुनाई देता है। तुलनात्मक रूप में विचार करें तो अपर्णा की 'खुद-ब-खुद' कविता अनामिका की 'स्त्रियाँ' कविता के अधिक निकट है। भावाभिव्यक्ति का तेवर एवं शब्दों का चयन आदि सभी दृष्टियों से यह कविता महत्वपूर्ण है। जैसे अनामिका लिखती हैं –

"भोगा गया हमको
बहुत दूर के रिश्तेदारों के
दुःख की तरह !" (खुरदुरी हथेलियाँ)

अपर्णा के शब्दों में यही भाव कुछ इस प्रकार है –

"रति-बंध में आलोड़ित मंथित
जानु-यौवन / तुमने भोगा मुझे
बधू में बारंगना में / वस्त्र में निर्वस्त्र में
शिल्प में शास्त्र में / तुम्हारी दृष्टि में" (खुद-ब-खुद)

इस दृष्टि से अनामिका की 'गणिका गली' और अपर्णा की 'अंधेरी रात' कविता द्रष्टव्य है। अनामिका एवं अपर्णा की कविताओं के कैनवास के केंद्र में स्त्री होने के कारण लैंगिक असमानता, यौन-कुंठा एवं वैश्या-वृत्ति जैसे प्रश्नों को उठाने का पूर्णतःप्रयास किया गया है। कविताओं में स्त्री-पुरुष के बीच बढ़ रही दूरी को समझने के साथ पितृसत्ता की विकृत मानसिकता, अपनी आत्मकुंठा को एवं उससे जुड़े सभी सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को सामने लाने की कोशिश की गई है। शब्द चयन एवं अभिव्यक्ति के स्तर को ध्यान में रखते हुए यह ज्ञात होता है कि अनामिका के बरक्स अपर्णा की कविताओं में देह संबंधी कुंठाभिव्यक्ति अधिक मुखर है। अपर्णा महांति की कविताओं में चाहे प्रेम हो, मुक्ति के अध्यात्म हो या फिर सहभागिता के साथ मुक्ति का स्वर हो सबमें यौन शोषण का चित्र ही मुख्य है। अनामिका की 'गणिका गली' कविता के साथ 'चौदह बरस की सेक्स वर्कर्स', यौन दासी','काजल','पतिव्रता' आदि तथा अपर्णा की 'क्षण क्षण','चतुर्थ रमण' के साथ-साथ 'मंदिर और वैश्यालय','देह-सुख','नग्नता' आदि कविताओं में स्त्री-पुरुष संबंधी वैयक्तिक व सामाजिक प्रश्नों टटोला गया है। समसामयिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो अनामिका की कविताएं संवेदना के अधिक निकट हैं। करुणा के साथ विद्रोह का भाव उनकी कविताओं की सबसे बड़ी ताकत है।

परंपरा, प्राचीन विश्वास एवं पुराकथाओं के माध्यम से दोनों रचनाकारों की अपनी-अपनी समझ कविताओं के माध्यम से प्रतिबिंबित है। मिथकों का पुनर्मूल्यांकन करती अनामिका की कविताएं समकालीन जीवन के अधिक निकट हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात है कि अनामिका की तुलना में अपर्णा मिथकों का अधिक प्रयोग करती नजर आती हैं। दोनों रचनाकारों की विशेषता है कि रचना प्रक्रिया के तहत वे कविता की मूल संवेदना से दूर नहीं जाती। स्त्री जीवन को व्यापक फ़लक पर देखने का नजरिया उनके काव्य सौष्ठव की बड़ी उपलब्धि है।

अपर्णा के बरक्स अनामिका की कविताएं सामाजिकता का अधिक स्पेस घेरती हैं। उनकी कविताओं में केवल एक साधारण स्त्री की ही नहीं अपितु विस्थापित, दलित, आदिवासी जैसे हाशिए के समाज के साथ-साथ समाज में प्रताड़ित वर्ग को आवाज प्रमुखता से देखा जा सकता है। विचार वैविध्य एवं सामाजिकता की दृष्टि से अनामिका की कविताएं नए युग-बोध को अपने आत्मानुभव से

संबोधित करती हैं। स्पष्ट है, दोनों कवयित्रियों की कविताओं में संवेदना की समानता एवं असमानता की पड़ताल करना चुनौतीपूर्ण है। कुछ नगण्य वैषम्य के अलावा दोनों की कविताओं में साम्य ही अधिक है। समकालीन स्त्री जीवन की शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं के साथ संवेदना की आत्मा का निरीक्षण करते हुए दोनों रचनाकारों ने अपने समय एवं समाज के गंभीर प्रसंगों को सामने रखने की भरपूर चेष्टा की है।

भाषा एवं शैलीगत वैशिष्ट्य पर विचार किया जाए तो दोनों कवयित्रियों के भाषिक प्रयोग में कुछ भिन्नताएं देखने को मिलती हैं। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि अपर्णा महांति की तुलना में अनामिका का झुकाव सूक्ष्मता की ओर अधिक है। तरह-तरह की लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से ध्वनियों को पकड़कर रखने की समर्थता अनामिका के शिल्प विधान में अधिक है। बिंब एवं प्रतीकों के प्रयोग पर विचार किया जाए तो इस विषय में अनामिका के बरक्स अपर्णा प्रयोग के स्तर पर अधिक निकट हैं। यद्यपि अपर्णा ने छोटे-छोटे शब्दों के प्रयोग से बड़ी बात कहने की कोशिश की है, परंतु उनमें ध्वनियों का ध्यान व्यवस्थित रूप से देखने को नहीं मिलता, जबकि इसी सूक्ष्मता को लय प्रदान करना अनामिका की विशेषता रही है।

स्पष्ट है, अपने-अपने समय-समाज के समकालीन स्त्री जीवन को पूरी समग्रता के साथ समेटकर दोनों रचानाकारों ने जिस प्रकार से सृजन किया है, उससे दोनों भाषाओं का साहित्य तो समृद्ध हुआ ही साथ ही भारतीय परिप्रेक्ष्य में दोनों भाषा के साहित्य की निकटता भी उद्घाटित हुई है। इसके अलावा दोनों रचनाकारों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जन-जीवन की पूरी तस्वीर भी प्रमुखता से उभरकर सामने आई है। निश्चित रूप से ओडिया एवं हिंदी के सांस्कृतिक, वैचारिक एवं विमर्श के परिप्रेक्ष्य को समझने हेतु दोनों रचनाकारों की कविताओं को मुकम्मल दस्तावेज़ के रूप में देखा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

अनामिका. (2019). *पानी को सब याद था*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

अनामिका.(2019). *कविता में औरत*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

महांति, अपर्णा. (2009). *नष्टनारी*. भुवनेश्वर : टाइमपास.

महांति, अपर्णा. (2019). *झिअ पाई झर्कांटिए*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

सहायक ग्रंथ

महांति, अपर्णा. (2017). *अग्नि कमलिनी*. भुवनेश्वर : टाइमपास.

महांति, अपर्णा. (2007). *नष्टनारी*. (अनु. महेंद्र शर्मा). भुवनेश्वर : ज्ञानयुग प्रकाशन.

महांति, अपर्णा. (1997). *असती*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

अनामिका, (2019). *एक कस्बाई लड़की की डायरी*. नई दिल्ली. वाणी प्रकाशन.

अनामिका, (2015). *टोकरी में दिगंत थेरीगाथा : 2014*. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

महांति, अपर्णा. (2010). *माँ'र कांदाणा गीत*. भुवनेश्वर : टाइमपास.

महांति, अपर्णा. (2015). *जोगिनी गीत*. भुवनेश्वर : टाइमपास.

महांति, अपर्णा. (2016). *ऐबे मुं प्रेमरे*. भुवनेश्वर : पक्षीघर प्रकाशनी.

मिश्र, डॉ. चित्तरंजन. (2015). *सांप्रतिक साहित्य ओ तत्त्व विचार*. कटक : ग्रंथ मंदिर.

महांति, डॉ. अपर्णा. (2010). *अंतरंग आलोचना*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

साहू, डॉ. गिरीश चंद्र & डॉ. भुवनानंद (संपा.). (2013). *अपर्णा पूर्णतमा*. कटक : बिजयिनी पब्लिकेशन.

अनामिका. (संपा.). (2015). *बीसवीं सदी का हिंदी महिला-लेखन. खंड-2*. नई दिल्ली. साहित्य अका.

रुस्तगी, मंजु. (2018). *अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री विमर्श*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सिंह, वी. एन. जनमेजय. (2018). *नारीवाद*. जयपुर : रावत प्रकाशन.

महांति, अपर्णा. (2015). *अपर्णा महांतिंक काव्ययात्रा*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

मिश्र, मुकुल. (2015). *अपूर्णा*. भुवनेश्वर : पश्चिमा पब्लिकेशन.

एस, डॉ. पद्मावती. (2003). *आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्ति*. नई दिल्ली : भा. सां. संबंध परिषद.

गुप्ता, रमणिका. (2010). *स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने*. दिल्ली : शिल्पायन.

जैन, अरविंद. (2013). *औरत : अस्तित्व एवं अस्मिता*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

जैन, अरविंद. (2016). *औरत होने की सजा*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.

त्रिपाठी, डॉ. रामछबीला. (2017). *हिंदी और भारतीय भाषा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

त्रिपाठी, डॉ. शम्भूनाथ & डॉ.श्रद्धानंद. (संपा). (2011). *समकालीन प्रतिनिधि कवि और उनकी कविताएं*. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.

दीक्षित, डॉ. छोटे लाल. (1993). *आधुनिक काव्य में फन्तासी* . वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.

दुबे, अभय कुमार. (संपा). *आधुनिकता के आईने में दलित*. नई दिल्ली : लोक चिंतन ग्रंथमाला.

देवराज, (2009). *नई कविता*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

पचौरी, सुधीश. (2010). *उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

प्रीतम, अमृता. (1999). *कच्चा आंगन*. दिल्ली : हिंदी पॉकेट बुक प्रा. लि.

बोरा, राजमल. राजूरकर, डॉ.भ.ह. (संपा). (2015). *तुलनात्मक अध्ययन भारतीय भाषाएँ और साहित्य*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

रावत, भगवत. (2006). *कविता का दूसरा पाठ और प्रसंग*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

रुस्तगी, मंजु. (2015). *अनामिका का काव्य : आधुनिक स्त्री-विमर्श*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

शर्मा, डॉ. सपना. (2011). *हिंदी आलोचना और उसके आर-पार. दिल्ली : भारत पुस्तक भंडार*.

शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2013). (संपा. रामविलास शर्मा). *लोक जागरण और हिंदी साहित्य*.नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

शुक्ल, हनुमानप्रसाद. (2015). *तुलनात्मक साहित्य : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

सिंह, नरेंद्र. (2012). *साठोत्तरी कविता में जनवादी चेतना*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

जोशी, राजेश. (2017). *प्रतिनिधि कविताएं*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

रावत, भगवत. (2014). *प्रतिनिधि कविताएं*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

वर्मा, महादेवी. (2014). *स्मृति की रेखाएँ*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

दुबे, श्यामसुंदर. (2011). *लोक : परंपरा, पहचान एवं प्रवाह*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.

देवराज, (2009). *नई कविता*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

चौधुरी, (2018). इंद्रनाथ. *तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

देवताले, चंद्रकांत. (2014). *पत्थर फेंक रहा हूँ*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

मिश्र, ब्रंहदेव. मिश्र. शिवकुमार.(संपा). *धूमिल की श्रेष्ठ कविताएं*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल. (2010). *खूंटीयों पर टंगे लोक*. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

बोरा, राजमाल. भ. ह. (2015). *तुलनात्मक अध्ययन*.: भारतीय भाषाएँ और साहित्य. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

कमल, अरुण. (2016). *प्रतिनिधि कविताएं*. नई दिल्ली : राजकमन प्रकाशन.

अग्रवाल, केदारनाथ. (2013). *प्रतिनिधि कविताएं*. नई दिल्ली : राजकमल प्रका**श**न.

वर्मा, (2015). *शृंखला की कड़ियाँ* : इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

सहाय, रघुवीर. (2018). *प्रतिनिधि कविताएं*. दिल्ली : राजकमल प्रकासन.

फ्राएड़, सिगमंड. (2014). *मनोविश्लेषण*. (अनुवाद. देवेन्द्र कुमार). दिल्ली : राजपाल एंड संस.

सिंह, केदारनाथ. (2014). *जमीन पक रही है*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

बारीक, सौरीन्द्र. (2008). *सांप्रतिक काल ओ चिरंतन कवि*. कटक : ग्रंथ मंदिर.

स्वाईं, डॉ. सुश्री संगीता. (2017). *अर्द्धशताब्दीर आधुनिक ओड़िया कविता : एक भिन्न अनुशीलन*. भुवनेश्वर : किताब भवन.

चौबे, संजय. (2017). *वह नारी है*. लखनऊ : मनसा पब्लिकेशन.

स्नातक, विजयेन्द्र. (2018). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी.

कश्यप, अभिषेक (संपा.). (2013). *अनामिका : एक मूल्यांकन*. नई दिल्ली : सामयिक बुक्स.

वाल्मीकि, ओम प्रकाश. (2015). *हिंदी दलित कविता और मराठी दलित कविता का तुलनात्मक अध्ययन और दलित आंदोलन पर उनका प्रभाव*. शिमला : भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान.

गर्ग, डॉ. संजय. (2015). *स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास*. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.

यादव,राजेंद्र. खेतान. प्रभा. & दुबे. अभय कुमार(संपा.). (2010). *पितृसत्ता के नए रूप*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

गिरि, डॉ. दिगंबर. (2018). *समकालीन कविता : कवि ओ काव्यधारा*. कटक : विजयिनी पब्लिकेशन.

शतपथी, डॉ. देवी प्रसाद. (2016). *तुलनात्मक साहित्य : दृष्टि ओ दिगंत*. कटक : शक्ति पब्लिशर्स.

कविकन्या, ओम ईश्वरी. (2019). *अव्ययीभाव*. भुवनेश्वर : टाइमपास.

देव, राहुल. (2018). *हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य*. नई दिल्ली : यश पब्लिकेसंश.

श्रीवास्तव, डॉ. सविता. (2014). *समकालीन कविता की समझ*. वारणासी : अनुराग प्रकाशन.

अरविंदाक्षन, ए. (2018).*समकालीन हिंदी कविता*. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.

गुप्ता, रमणिका. (2017). *स्त्री मुक्ति : संघर्ष और इतिहास*. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.

महारणा, डॉ. सुरेंद्र कुमार. (2015). *ओड़िया साहित्यर इतिहास*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

शतपथी, डॉ. नित्यानंद. (2011). *सबुजरु सांप्रतिक*. कटक : ग्रंथमंदिर.

कात्यायनी, (2017). *प्रेम, परंपरा और विद्रोह*. लखनऊ : परिकल्पना प्रकाशन.

स्वाईं, डॉ. दिल्लीप कुमार. (2007). *नूआँ कवितार नक्सा*. कटक : विजयिनी पब्लिकेशन्स.

नायक, अखिल. (2017). *अखिल अक्षर*. भुवनेश्वर : पश्चिमा पब्लिकेशन्स.

शुक्ल, अनूप (संपा.). (2015). *समकालीन साहित्य और स्त्री विमर्श*. फतेहपुर : मधुराक्षर प्रकाशन.

शर्मा, क्षमा. (2018). *समकालीन स्त्री विमर्श*. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.

महांति, अपर्णा. (2015). *नारीमन*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

पंडा, गायत्री बाला. (2006). *धूप को रंग*. (अनु. महेंद्र शर्मा). भुवनेश्वर : ज्ञानयुग पब्लिकेशन्स.

मिश्र, सुचेता. (2007). *मोह अशेष*. (अनु. महेंद्र शर्मा). भुवनेश्वर : ज्ञानयुग पब्लिकेशन्स.

महांति, अपर्णा. (2019). *निःसंग ईश्वरी ओ अन्यान्य कविता*. डब्लिन : न्यू वेव पब्लिकेशन.

अनामिका, (2019). *दूब-धान*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

जेना, प्रतीक्षा. (2018). *स्त्री लोकर शब्दार्थ*. भुवनेश्वर : पश्चिमा पब्लिकेशन्स.

गोयल, जयति. (2013). *आज के बदलते परिवेश में नारी*. गाजियाबाद : कश्यप पब्लिकेशन.

गुप्ता, रमणिका. (2010). *स्त्री विमर्श : कलाम और कुदाल के बहाने*. दिल्ली : शिल्पायन.

प्रधान, प्रो. कृष्णचंद्र. राऊत. डॉ. निर्मला कुमारी (संपा.). (2010). *गबेषणा प्रकरण, संपादना ओ अनुवाद प्रविधि*. भुवनेश्वर : ज्ञानयुग पब्लिकेशन.

दास, चित्तरंजन. (1984). *तुलनात्मक साहित्य*. कटक : ओड़िया गबेषणा परिषद.

अनामिका, (2016). *कवि ने कहा*. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन.

डॉ. नगेन्द्र & डॉ. हरदयाल (संपा.). (2018). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नई दिल्ली : मयूर बुक्स.

परिडा, अंगुरबाला. (2017). *ऊर्ध्व*. भुवनेश्वर : पश्चिमा पब्लिकेशन.

पधान, रिंकि. (2019). *मधुलग्न*. भुवनेश्वर : पक्षीघर प्रकाशनी.

बेहेरा, डॉ. शिशिर. (2017). *सांप्रतिक ओड़िया कविता : ऐतिह्य चर्चा*. कटक : सत्यनारायण बुक स्टोर.

सिंह, अवधेश कुमार. (2016). *समकालीन आलोचना-विमर्श*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

दास, सनातन. (2013). *श्रद्धा ओ बिनयर कवि प्रतिभा शतपथी*. कटक : विद्यापुरी.

काव्यप्रेत, डॉ. प्रमोद. (2015). *हिंदी साहित्य : समकालीन परिप्रेक्ष्य*. दिल्ली : राजपाल एंड संज.

भारद्वाज, मैथिली प्रसाद. (2005). *शोध प्रविधि*. पंचकुला : आधार प्रकाशन.

महांति, अपर्णा. (1993). *असती*. कटक : ओड़िशा बुक स्टोर.

अनामिका, (2019). *खुरदुरी हथेलियाँ*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.

अनामिका, (2012). *पचास कविताएं : नई सदी के लिए चयन*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

कालिया, ममता. (2017). *भविष्य का स्त्री विमर्श*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

रथ, रमाकांत. (). *श्रीराधा*. (अनुवाद. श्रीनिवास उदगाता). दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.

महांति, अपर्णा. (2002). *पूर्णतमा*. कटक : फ्रेंड्स पब्लिशर्स.

महांति, अपर्णा. (). *तीर्थयात्रा*. भुवनेश्वर : ज्ञानयुग पब्लिकेशन.

महापात्र, डॉ. प्रेमानंद. (2019). *ओड़िया काव्य कविता : प्राचीनरु सांप्रतिक*. कटक : सत्यनारायण बुक स्टोर.

महांति, जतीन्द्रमोहन (संपा.). (2006). *आधुनिक ओड़िया कविता संभार*. भुवनेश्वर : विद्या.

सामल, प्रीतिधारा. (2013). *दर्पणरे नारी*. भुवनेश्वर : पक्षीघर प्रकाशन.

अनामिका, (2019). *अनुष्टुप*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

लक्ष्मीप्रसाद, आचार्य यार्लगाड्डा (संपा.). (2009). *सहस्र वर्षों का तेलुगु साहित्य*.हैदरावाद : आंध्रप्रदेश हिंदी अकादमी.

वर्मा, महादेवी. (2015). *अतीत के चलचित्र*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

मेघ, रमेश कुंतल. (2007). *मिथक और स्वप्न : 'कामायनी' की मनस्सौन्दर्यसामाजिक भूमिका*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.

अवस्थी, प्रो. पुष्पिता.(2009).*आधुनिक हिंदी काव्यालोचना के सौ वर्ष*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.

त्रिपाठी, राममूर्ति.(2001). *अर्द्धशती का भारतीय काव्य चिंतन*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

जिब्रान, खलील.(2007). *प्रेम की शक्ति*. (अनु. संजीव तंवर). दिल्ली : प्रेमनाथ एंड सन्स.

गणेशन, एस. एन. (2015). *अनुसंधान प्रविधि : सिद्धांत और प्रक्रिया*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

बंगा, इंदु & ग्रेवाल. जे. एस. (2001). *इतिहास और विचारधारा : ख़ालसा के तीन सौ साल*. (अनु. नरेश नदीम). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

प्रसाद, प्रो. कमला (संपा.). (2018). *स्त्री : मुक्ति का सपना*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

पत्तनायक, डॉ. देवदत्त. (2015). *मिथक : हिंदू आख्यानों को समझने का प्रयास*.हरियाणा : पेंगुइन बुक्स इंडिया.

मृगेश, डॉ. माणिक. (2009). *भूमंडलीकरण, निजीकरण व हिंदी*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

दुबे, राधेश्याम. (2013). *भारतीय रहस्यवाद*. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन.

कुमारी, डॉ. सरिता. (2012). *भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी*. दिल्ली : राजभाषा पुस्तक प्रतिष्ठान.

गड़कर, डॉ. राजकुमारी. (2010). *स्त्री सशक्तिकरण और भारतीय साहित्य*. दिल्ली : आलेख प्रकाशन.

सुमेष, डॉ. ए. एस. (संपा.). (2016). *समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श*. कानपुर : अमन प्रका.

पाण्डेय, मैनेजर. (2013). *साहित्य और इतिहास दृष्टि*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सिंह, नामवर. (2013). *कविता के नए प्रतिमान*. इलाहाबाद : राजकमल प्रकाशन.

वोहरा, एन. एन. & भट्टाचार्य. सब्यसाची (संपा.). (2009). *भारत की बीसवीं सदी : पीछे मुड़कर देखते हुए*. (अनु. राघवचेतन राय). नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट.

शर्मा, हीरालाल. (2005). *अहिल्याबाई*. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

गुप्त, मन्मथनाथ. (2011). *भारतीय क्रांतिकारी आंदोलनों का इतिहास*. दिल्ली : आत्माराम एंड संस.

मेघ, रमेश कुंतल. (2015). *विश्व मिथक सरित सागर*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सिंह, नरेंद्र. (2012). *साठोत्तरी कविता में जनवादी चेतना*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

पांडेय, मनोज (संपा.). (2017). *समकालीन साहित्य : वैचारिक चुनौतियाँ*. दिल्ली : ए. आर. पब्लिशिंग कंपनी.

जोशी, राजेश. (2004). *एक कवि की नोटबुक*. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

कात्यायनी. (2006). *कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत*. लखनऊ : परिकल्पना प्रकाशन.

तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद. (2018). *समकालीन हिंदी कविता*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

बड़ाइक, सरिता. (2013). *नन्हें सपनों का सुख*. नई दिल्ली : रमणिका फाउंडेशन.

दाश, हेमंत. (2014). कुंतलाकुमारी ग्रंथावली : काव्यखंड. कटक : प्राची साहित्य प्रतिष्ठान.

Mohanty, Aparna. (2018). *The Unknown Wind*. New Delhi : Authors Press.Patton, Michael Quinn. (2014). *Qualitative research & evaluation methods*. (edt. Vicki Knight). New Delhi : SEGA Publications India Pvt. Ltd.

Beauvoie, Simone De. (2011). The Second Sex. (Translate – Constance Borde & Sheila Malovany-Chevallier. London.Vintange.

पत्र-पत्रिकाएँ

श्रीवास्तव, एकांत & खेमानी, कुसुम (संपा.). (दिसंबर, 2014). *वागर्थ*. अंक- 233.

श्रीवास्तव, एकांत & खेमानी, कुसुम (संपा.). (अक्तूबर, 2014). *वागर्थ*. अंक- 231.

श्रीवास्तव, एकांत & खेमानी, कुसुम (संपा.). (नवंबर, 2014). *वागर्थ*. अंक- 232.

श्रीवास्तव, एकांत & खेमानी, कुसुम (संपा.). (फरवरी, 2015). *वागर्थ*. अंक- 235.

श्रीवास्तव, एकांत & खेमानी, कुसुम (संपा.). (जून, 2015). *वागर्थ*. अंक- 239.

श्रीवास्तव, एकांत & खेमानी, कुसुम (संपा.). (अगस्त, 2014). *वागर्थ*. अंक- 229.

तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद (संपा.). (अक्टूबर-दिसंबर, 2008). *दस्तावेज़*. वर्ष- 31. अंक- 01.

तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद (संपा.). (जनवरी-मार्च, 2013). *दस्तावेज़*. वर्ष- 35. अंक- 02.

फरहत, परवीन (संपा.). (सितंबर, 2014). *आजकल*. अंक-5.

राय, ऋत्विक (संपा.). (अक्टूबर-दिसंबर, 2014). *लमही*. अंक-2.

पचौरी, सुधीश (संपा.). (जनवरी-मार्च, 2013). *वाक्*. अंक-14.

महांति, अशोक (संपा.). (महापूजा विशेषांक, 2019). *पश्चिमा*.

यादव, राजेंद्र (संपा.). (मार्च, 2001). *हंस*. अंक-8.

गुप्ता, रमणिका (संपा.). (विशेषांक, 2011). *युद्धरत आम आदमी*. अंक-108.

राजेंद्र, डॉ. सोनवणे (संपा.). (जुलाई-दिसंबर, 2014). *लोक-यज्ञ*. अंक- 27-28.

अग्निहोत्री, डॉ. बृजेन्द्र (संपा.). (अप्रैल-जून, 2017). *मधुराक्षर*. अंक-02.

महापात्र, ममता (संपा.). (शारदीय विशेषांक, अक्टूबर, 2017). *युगश्री युगनारी*.

मिश्र, शीलराणी (संपा). (सितंबर, 2017). *समारोह*. अंक-02.

मिश्र, बंदना (संपा.). (पार्वण विशेषांक, 2017). *नील तरंग*. वर्ष- 22, अंक -04.

रथ, निरंजन (संपा.). (पूजा विशेषांक, अक्टूबर, 2018). *सत्यवादी*. वर्ष- 03, अंक- 06.

बेहेरा, अक्षय. (पार्वण, 2008). *कथा-कथा कविता-कविता*. वर्ष- 04. अंक -05.

कोश-ग्रंथ एवं इंटरनेट से प्राप्त सामग्री

वर्मा, रामचंद्र (संपा.). (2002). *वृहद प्रामाणिक कोश*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.

कुमार, अरविंद. (2009). *समांतर कोश : हिंदी थिसारस*. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

फैलन, एस. डब्ल्यू. (2008). *हिंदुस्तानी कहावत कोश*. (अनु. कृष्णानंद गुप्त). नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया.

http://susanskrit.org/2010-05-25-13-59-22/1042-2010-05-27-10-16-32.html

http://kavitakosh.org/kk/पार्वती-योनि_/_नेहा_नरुका

अनामिका से साक्षात्कार

प्रश्न: समकालीन हिंदी कविता के सीमांकन को लेकर आलोचकों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ प्रचलित हैं, आप समकालीन हिंदी कविता का आरंभ कहाँ से मानती हैं?

अनामिका : समकालीन हिंदी कविता का प्रस्थान बिंदु नब्बे के बाद (भूमंडलीकरण के बाद) की कविता को माना जा सकता है। मैं स्वयं अनाम हूँ तो हर अनाम के लिए मेरे मन में विशेष भाव हैं। विश्वयुद्ध के बाद या स्वाधीनता के बाद की कविता दो कैम्पों में समेटकर देखी गयी- प्रगतिवादी और प्रयोगवादी। विश्व कविता में जो 'मॉडर्निस्ट' कहा गया, नव स्वतंत्र उपनिवेशों में हर जगह उसके देशज संस्करण तैयार हुए। सभ्यताओं की टकराहट का नतीजा विश्वयुद्ध की तबाही में फलित हुआ था तो लोग हर जगह सभ्यताओं के संवाद की बात कह रहे थे- 'best of both the worlds' की। इसी के तहत पाउण्ड, एलियट और येट्स चीनी और भारतीय दर्शन की ओर उन्मुख हुए, अज्ञेय जापान, रघुवीर सहाय स्पेन और केदारनाथ सिंह फ्रेंच और जर्मन कविता की ओर, धर्मवीर भारती, कुँवर नारायण, अशोक वाजपेयी, और सुरेश सलिल ने पोलिश, फ्रांसीसी, जर्मन कविताओं के कई संग्रह तैयार किए। मुक्तिबोध, धूमिल आदि मार्क्स और फ्रायड आदि के दर्शनों का अंतःपाठ तैयार करते हुए अपनी देशज परम्पराओं से भी संवाद लगातार ही बना रहे थे। कथ्य और शिल्प- दोनों स्तरों पर एक खास तरह की टूट-फूट मूर्तिभंजक मुद्राओं में घटित हुई थी- दोनों ओर घटित हुई थी- पर कथ्य और शिल्प की प्रधानता के आधार पर इन्हें विशेष महत्त्व मिला।

नब्बे के आस-पास महाप्रमेयों के विलयन के बाद तो कविता बेनामी संपत्ति हो गयी- साझा धन! लघु पत्रिकाएं यदि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की लाइफ लाइन थीं, अंतर्जाल नब्बे के बाद की समकालीन कविता की जीवन संपोषक रेखा बनकर उभरा और खासकर तीन तरह के संवर्ग अभिव्यक्ति का एक खुला मंच पा गए- बच्चे बड़े कर चुकी स्त्रियाँ, अवकाश प्राप्त बुजुर्ग, कच्ची-पक्की नौकरियाँ और कच्चे-पक्के रिश्तों से उलझते नव-युवक प्रायः सबने शुरुआत कविता से ही की क्योंकि तब तक सम्यक मॉडेल के रूप में अंतर्जाल पर ही विश्व कविता, भारतीय कविता और हिंदी कविता के कई 'कोश' अच्छे अनुवादों में उपलब्ध हो चुके थे।

प्रश्न: समकालीन हिंदी कविता से आपका क्या अभिप्राय है? एक कवयित्री होने के साथ-साथ बतौर समालोचक आप पूर्ववर्ती कविताओं से समकालीन हिंदी कविता के अलगाव को किस रूप में देखती हैं?

अनामिका : समकालीन कविता लोक और शास्त्र दोनों से सहज गपशप करती हुई विमर्शमूलक कविता है जो सर्वसमावेशी नहीं भी तो एक पूरे समुदाय की प्रतिनिधि अवश्य है। समकालीन हिंदी कविता सहानुभूति का दामन 'स्वानुभूति' से भरती नजर आती है। 'स्व' शब्द या 'मैं' प्रगतिशील कविता के दौर में जुगुप्सा से देखा जाने लगा था। मुझे याद है 'मैमियाहट' शब्द का प्रयोग अज्ञेय को धता बताने के लिए एक प्रसिद्ध आलोचक ने साहित्य अकादेमी की एक बड़ी सभा में किया था। मैं उसी वक़्त सोचने लगी कि बेचारी बकरी ने किसी का क्या बिगाड़ा जो लोग उसकी बोली का मज़ाक बना रहे हैं। जो समाज वंचितों को बकरी बनाकर खुद बाघ बन जाता है आखिर कैसा समाज है! समकालीन कविता का 'सम' संगीत के 'सम' की तरह महाप्रयाण का वह बिन्दु है जहां बीजशब्द/ सुर बार-बार लौटते हैं। असमानता सिर्फ वर्गाधारित शोषण खत्म करने से खत्म नहीं हो जाएगा, वर्ण-नस्ल-लिंगाधारित शोषण के दुष्चक्र खत्म करने की बात भी याद उसे बार-बार दिलानी होगी। कविता-कहानी-नाटक-निबंध- सबमें उन चुनिन्दा क्षणों का जोरदार मंचन करना होगा जो दबंगों को आईना दिखाकर उन्हें बार-बार शर्मिंदा कर सकें। इसी शर्मिंदगी में होंगे आत्मक्रांति के बीज जिसमें पहले आँख खुलती है, पूर्वग्रह मिटते हैं, फिर धीरे-धीरे जागता है वह संकल्प कि अब ऐसा अमानवीय व्यवहार करना नहीं है जो दो मनुष्यों में भेड़-भेड़िया वाला रिश्ता कायम कर दोनों को मानवीय गरिमा से गिराए।

बाइबल की पंक्ति है : 'सीइंग दे डोण्ट सी, हियरिंग दे डोण्टहियर!' मटियाना, अनदेखी-अनसुनी आजमाते रहना, प्रभुत्व संपन्न लोगों का स्वभाव बन जाता है। उनकी आत्मा ऊँघ जाती है। आँखों पर चर्बी छा जाती है! ईसा मसीह के शब्दों में वे जानकर भी नहीं जानते कि 'वे क्या कर रहे हैं'। ऐसे में अस्मितामूलक लेखन उनका किया-दिया नाटकीय ढंग से सामने रखता है कि वे जागें और आचार-व्यवहार मानवीय गरिमा के अनुकूलन करें!

बिना मांगे कोई स्पेस देता ही नहीं या हमारे सहज मानवीय अधिकार कृपा-भाव से हम पर बरसाना चाहता है। बिना मांगे स्पेस न देने की यह बात 'जौहर महमूद इन गोवा' फिल्म के उस गाने की याद दिला देती है जहां पतलू जॉनी बॉकर गाड़ी का ऊपरी रॉड पकड़े भीड़-भड़क्के में दबा जाता है और सामने में मोटा लाला पूरी सीट पर खाना पसारे आराम से बैठा है। विमर्श के व्यंजनात्मक लहजे में ही वह हँसकर गाता है-

"एक मुसाफिर को दुनिया में क्या चाहिए,

बस थोड़ी-सी दिल में जगह चाहिए,

ऐ मोटे लाला तूने किया है कैसा छल,

टिकट तेरा सिंगल, मगर तू डबल,

खिसक जरा प्यारे, सरक जरा प्यारे,

ऐसी बॉडी में दिल भी जरा बड़ा चाहिए,

बैठ जाऊँ?"

अब के जमाने में पूँजीपतियों का डील-डौल बदल गया है। अपना जिम-प्रशिक्षित सुडौल बदन सुंदर सूटों से सजाए वे लगातार हवाई यात्रा पर ही रहते हैं और पुराने मिल-मालिकों की तरह टेढ़ी-मेढ़ी बात भी नहीं करते, 'वर्ल्डइकोनॉमिक फोरम' की सधी हुई भाषा में विश्व कल्याण की ही बात करते हैं। मॉडेल भी मदरटेरेसा बनने का संकल्प व्यक्त करती है तो और कठिन हो गया है और संवाद पर कोशिश जारी है।

प्रश्न : अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में आप क्या कहना चाहेंगी?

अनामिका :

"जो बातें मुझको चुभ जाती हैं,

मैं उनकी सुई बना लेती हूँ।

चुभी हुई बातों की ही सुई से मैंने

काढ़े हैं फूल सभी धरती पर

आसमान के सब ये सितारे,

कुदरत के सारे नजारे।"

इस बात के जवाब में मेरे सामने मेरी यह कविता ही हँसती-मुस्कुराती खड़ी हो गयी। इस कविता का पर्सोना एक दर्जिन है, लवजेहाद में जिसका चेहरा एसिड से जला दिया गया था। मेरे बहुतेरे किरदार मेरी रचना-प्रक्रिया की ओर इशारा करते हैं, पर गद्य में समझना हो तो ऐसा कह सकते हैं कि स्थितगत, परिवेशगत या चरित्रगत कोई भी विडम्बना मुझे लंबे समय तक आहत करे तो सहसा मन के आकाश में टूटे हुए तारे की फुर्ती से कुछ शब्द झड़ते हैं। कभी-कभी नहीं झड़ते तो पूरी एक पंक्ति कौंध जाती है या एक बिंब कौंध जाता है। कागज हाथ में हुआ तो वह लिख लेती हूँ और मोड़कर दराज में छोड़ देती हूँ कि फुर्सत से पूरी करूंगी! कई बार कागज खो भी जाता है तो कविता की चिड़िया की तरह वापस आकाश में फुर्र !

कविता का या फिर उपन्यास का ड्राफ्ट मैं कुछ दिन फ़ाइल में दबाकर उस तरह रख देती हूँ जैसे रोटी बनाने के पहले गूँथा हुआ आटा या अंकुर निकलने के पहले भिंगोई हुई मूँग कटोरी से ढँक दे कोई। मेरा अपना अनुभव है कि समय जो गुजरता है मेरे और मेरे ड्राफ्ट के दरम्यां, वह किसी समझदार अभिभावक की तरह चलता मेरा कच्चा ड्राफ्ट पक्का कर जाता है जैसे माँ चलते-चलते मेरी टेढ़ी बेली

रोटी सुधार जाती थी। समय ही है जो मुझे अपने ही अनुभव के प्रति तटस्थ करता है- अपने बाहर निकलकर खुद को देखने या आपबीती/जगबीती देखने के मजे ही अलग हैं।

निबंध आदि में ड्राफ्ट नहीं बनाती, जब तक वह शोध पत्र न हो! ललित निबंध का लालित्य रूठ जाता है- मानिनी नायिका की तरह बहुत छेड़-छोड़ बर्दाश्त नहीं करता। जैसा उतरा सा ही रहने देती हूँ पृष्ठ पर- जैसे इन प्रश्नों के उत्तर- सहज, स्वाभाविक। कभी-कभी कवितायें भी ऐसे उतर आती हैं, पर अक्सर उन्हें भी 'फेयर' करते हुए थोड़ा बदलना होता है। उपन्यास के कई-कई ड्राफ्ट बनते हैं- तो विधा के हिसाब से प्रक्रिया बदल जाती है।

प्रश्न : आपके दौर के समालोचकों एवं कुछ रचनाकारों का मंतव्य है कि पुरुषों द्वारा लिखी गई स्त्री जीवन पर केंद्रित कविताओं में स्त्री-मन के विज्ञान को ठीक-ठीक नहीं समझा गया, रचनात्मक संवेदना के स्तर पर आप अपने समय की कवयित्रियों के बरक्स कवियों (पुरुष) की स्त्री-विषयक दृष्टि को किस रूप में देखती हैं?

अनामिका : देह-मन या चरित्रों का निर्माण औरतों के हिस्से आता है, इसमें तो इन्हें महारथ हासिल है- चाहे वह कविता में हो या जीवन में। पुरुष-कवियों की ज्यादातर नायिकाएँ हूर की परी और चिर यौवनाएं होती हैं। माँ, पत्नी या बुआ आदि को संबोधित कवितायें भी विरुदावली अधिक लगती हैं क्योंकि उनके निजी जीवन के आत्मीय विवरण वहाँ एक सिरे से गायब होते हैं। कुल मिलाकर उनकी स्त्रियाँ रूमानी फ्रेम में जकड़ी हुई होती हैं। निराला, रघुवीर सहाय और विष्णु खरे समेत दो-चार ही अपवाद ऐसे होंगे जिनके यहाँ स्त्रियाँ हाड़-मांस की बनी मानवियाँ हैं। बच्चियों के चित्रण में वे अधिक कुशल हैं- त्रिलोचन की 'चम्पा',नागार्जुन की 'गुलाबी चूड़ियाँ' वाली किरदार, मदन कश्यप की चरवाहिन बच्ची जो गहनों से लदी-फदी, बाघ पर सवार भारत माँ से संवाद करती है कि तुम मेरी अपनी माँ से इतनी अलग क्यों दिखती हो।

स्त्री-कविता की स्त्रियाँ अपने अंतरंग विवरणों में अधिक सहज और सप्राण लगती हैं- सचमुच की स्त्रियाँ- जैसी हँसती-बोलती, कुढ़ती-चुटकी लेती, खटती और समझे ज्यादा सोचती-समझती हुई

अपनी सहज नैसर्गिक प्रश्न होने का प्रमाण देती है, पर उसका ज्ञान-संज्ञान उसकी सहृदयता कहीं से बाधित नहीं करता, उसकी भाषा में एक उच्छल प्रवाह बना रहता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुरुष स्त्रियों पर या स्त्री पुरुष पर लिखें ही नहीं। हिंदी के सहकर्मी कवियों के तो हम बहुत ही कृतज्ञ हैं कि पुराने यूरोपीय कवियों या उर्दू-फारसी के सस्ते कवियों की तरह वे अपनी नायिकाओं को "दिलतोड़ बेवफा" के रूप में रूढ़कर आँसू नहीं बहाते या हास्य कवियों की तरह उन्हें अक्ल से पैदल कड़क सिंह सिद्ध नहीं करते। आलोकधन्वा, उदय प्रकाश और कुमार अम्बुज- जैसे कवियों ने दोस्त-दृष्टि से उन्हें चित्रित किया है: 'भागी हुई लड़कियाँ','ब्रूनों की बेटियाँ' इस संदर्भ में क्लासिक हैं। स्वानुभूति-सहानुभूति दोनों के बीच, चीन की दीवार स्त्री-विमर्श नहीं खींचता। 'जांके पाँव न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई' अगर स्वानुभूति पक्ष का आधार वाक्य है जिसे हम अंबेडकर के दर्शन से जोड़ सकते हैं तो गांधी के पक्ष से, सहानुभूति के पक्ष से सोचते हुए हमें यह भी मानना होगा कि 'वैष्णव जण तो तैणेकहिएजे पीर पराई जाणे रे।'

प्रश्न : पितृसत्ता की चुनौतियों के बीच आपके दौर की कविताएं सामंती मूल्यों एवं रूढ़ियों के खिलाफ़ मुठभेड़ कर पाने में कहाँ तक समर्थ हैं?

अनामिका : पितृसत्ता, सामंतशाही, पूंजीवाद और अधिनायकवाद- सबके आधारभूत लक्षण एक वाक्य में समेटे जा सकते हैं कि प्रतिपक्षी को संवाद के लायक नहीं समझना, उसे मानसिक-बौद्धिक-नैतिक स्तर पर हीनतर सिद्ध करते हुए उन्हें कुत्तों की तरह प्रशिक्षित करना ताकि वे आपके एक-एक इशारे पर नाचें और यदि कोई जो बिदक गया/गयी और इशारों पर नाचने को तैयार नहीं हुआ/हुई तो उसे कुत्ते की मौत मार भी देना है। अच्छा पितृसत्तात्मक और अच्छा सामंत- दोनों दुम हिलाने पर पुचकारते हैं। वफादारी दिखाने पर पुरस्कृत भी करते हैं, बस आपको मनुष्य की कोटि में नहीं गिनते।

तहमीना दुर्रानी का एक प्रसिद्ध उपन्यास है- 'माई फ्यूडल लॉर्ड'! पितृसत्ता और सामंतशाही की आपसी जुगलबंदी, पर इनकी दूसरी अच्छी किताब 'लासफ़ेमी' (कुप्र) भी है जिसमें धर्मतंत्र, सामंतशाही और पितृसत्ता- दोनों की नियामक शक्ति दिखाया गया है और प्रभावशाली ढंग से। शोषकों

में इस तरह का गठबंधन ऐसे ही चलते रहते हैं जैसे राजनीतिक पार्टियों में। भारत में स्त्री शिक्षा बाद में आयी और आयी भी तो शहरी औरतों में, इसलिए इस विषय पर कम लिखा गया पर मैत्रेयीपुष्पा के कुछ उपन्यास (जैसे झूलानट और चाक) इस प्रश्न से अच्छी तरह जूझते हैं।

प्रश्न: आपने अपनी कुछ कविताओं में मिथकों का प्रयोग किया है। आपके विचार से स्त्री विमर्श के आलोक में मिथकीय चरित्रों की क्या प्रासंगिकता है?

अनामिका : मिथक एक तरह के ब्लूप्रिंट है, जैसे कि ईश्वर भी एक ब्लूप्रिंट है: आदर्श का एक खाका, एक प्रारूप, हमारी संभावनाओं का उत्कर्ष! बचपन से हम सुनते आए हैं, देवत्व के, बुद्धत्व के बीज सब में हैं। अपनी संभावनाओं के प्रति सजग होकर, किंचित आदर्शों पर चलते हुए हम ईश्वर से एकाकार हो सकते हैं। हम्हीं ईश्वर हो सकते हैं, चित्त का विस्तार करते हुए अनंत हो सकने की संभावना हम सब में हैं। अब चित्त का विस्तार होगा कैसे? जब अहंकार की सरहद घड़े की तरह फूट जाएगी, तभी वह समुद्र हो पाएगा- "फूटा कुंभ जल जलहिं समाना।"

प्रेम और युद्ध भी दो आदिम वृत्तियाँ तरह-तरह की छवियों में, आर्किटाइपों में न सिर्फ स्वप्न में प्रकट होती हैं, बल्कि जातीय स्मृतियों में भी! मिथक इन्हीं का अवगाहन हैं- महाभारत, रामायण, पुराण की कथाएँ, जातक कथाएँ.....शास्त्रीय और लौकिक वाचनों में नए-नए अंतर्पाठों के संग इसलिए उपस्थित हैं कि अनंत हैं, इनकी अनुगूंजे जिनका एक नया भाष्य हर एक युग। हर एक व्यक्ति अपने वजूद भी रुद्रवीणा पर उतार सकता है।

मेरे साथ एक सुविधा यह रही कि मैं तिरहुत के एक प्राचीन शहर में आधुनिक और उदार, पढ़े-लिखे माता-पिता की संतान के रूप में जन्मी जिनके पास बहुत तरह के लोग अपने सुख-दुःख बतियाने आया करते थे और शास्त्र-चर्चा के लिए भी, तो मेरे कान बचपन से ही खरहा-कान हो गए- सजग और चौकस! तरह-तरह की श्रुतियाँ-अनुश्रुतियाँ, जातीय और वैयक्तिक स्मृतियों के कई गहन विवाद मेरे अवचेतन में घर कर गए। मेरी हर सोच की प्राथमिक तरंग यहीं से उठती है! बिंबों में ही सूझती ही कोई

बात! इस पर मेरा कोई वश नहीं। मैं ऐसी ही हूँ! यही मेरा प्रकृत स्वरूप होगा – सीधा, सरल तो रूपवाद ही 'रूपवाद' का आरोपी होने के खतरे उठाकर मैं जस की तस बनी रही।

हाँ, कई जगह मैंने मिथकों से मीठी छेड़-छाड़ भी की है- मेरी सीता 'वाल्मीकि आश्रम' में शास्त्र-चर्चा करती हुई मस्त हैं। उनके मन में राम के प्रति आभार का भाव है कि राजसी गृहस्थी से मुक्त किया। वे उनसे दोस्त की तरह पत्राचार करती हैं, वन की सब स्त्रियों से गपशप करती हैं। शूर्पणखा मेरे लिए बोर्ड-परीक्षा देती, आदिवासी किशोरी है। मेरी थेरियाँ वर्किंग विमेन्स हॉस्टल में रहती हैं.....।

प्रश्न : मोटे तौर पर देखें तो 80 के दशक से स्त्री-विमर्श जैसी संकल्पना सुदृढ़ रूप में विकसित होती हुई दिखाई देती है, स्त्री विमर्श के आलोक में आप 1980 से पहले की स्त्री-विषयक कविताओं को किस रूप में देखती हैं?

अनामिका : 1980 के पहले की स्त्री-कविता उस समय की स्त्रियों की तरह किसी और के घर में रहती थी, तम्बू में या फिर अपने बनाए हुए घर में नहीं। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, अकविता सब-के-सब बहुत बड़े घर थे और इनकी सब स्त्री कवि 'बड़े घर की बेटियाँ' थी- किसी एक कोने में सिमटकर कुछ लिखती-पढ़ती हुई।

साहित्य अकादमी के लिए समकालीन स्त्री-कविता का जो संकलन मैंने तैयार किया है, उसकी भूमिका में यही बात मूलरूप से रेखांकित की है। स्वयंप्रभा, समुज्ज्वला, स्वतंत्रचेता, समकालीन स्त्री-कविता कथ्य और स्थापत्य- दोनों दृष्टियों से पूर्ववर्ती स्त्री-कविता का वैसा ही परिवर्धित रूप थीं जैसे आशापूर्णा देवी की वृहत्त्रयी में 'बकुल कथा' की नायिका अपनी माँ 'सुवर्णलता' और अपनी नानी 'प्रथम प्रतिश्रुति' की नायिका का परिवर्धित रूप। मूल विषय तो वही हैं- प्रेम, मृत्यु, बहनापा, वात्सल्य, प्रकृति, सामाजिक विद्रूप और अस्तित्व का संकट पर भाषा अधिक जनतांत्रिक हुई है- कंधे पर हाथ रख दुःख-सुख बतियाती हुई लोक और शास्त्र, कॉस्मिक और कॉमनरलेस की दूरी एक झप्पी में मिटाती हुई।

महादेवी की करुणा, सुभद्रा के वात्सल्य को एक नया आयाम मिलता है, समकालीन कविता में जब काम-काज के सिलसिले में दूर देश गई हुई माँ होटल के कमरे से पीछे छूटे बच्चों, पति और माँ को याद करती है या अपना गाँव संसार याद करती है!

"दुलरा दो न, बहला दो न,

मेरा शिशु जग है उदास"

महादेवी ने इन पंक्तियों में पूरे जगत की कल्पना एक शिशु के रूप में की है जो काफी उदात्त कल्पना है। आज की स्त्री ने इसका आयाम और बड़ा किया है क्योंकि पहले की स्त्रियाँ तन-मन से घर की सेवा करती थी तो आज की स्त्रियाँ तन-मन-धन से घर-बाहर दोनों संभालती हैं। अनुभव का दायरा बड़ा हुआ है तो कविता में उसकी आँच आएगी ही।

प्रश्न: आपकी कविताओं में प्रेम, परंपरा और विद्रोह के बीच सामंजस्य का भाव दिखाई देता है, इस पर आपकी क्या राय है?

अनामिका : मेरी पीढ़ी घृणा की राजनीति का ध्वंस देखती हुई ही बड़ी हुई, इस समझ के साथ ही बड़ी हुई कि द्वेष से द्वेष नहीं कटता। एक दमनचक्र का जवाब दूसरा दमनचक्र होता गया तो यह सिलसिला कभी थमने वाला नहीं। कोई भी क्रांति तुरंत ही पलटकिया मारकर प्रति-क्रांति में विघटित हो जाएगी यदि उसमें शामिल एक-एक व्यक्ति उस तरह की आत्मक्रांति स्वयं पर घटित न करे जिसकी नींव आर्ष दर्शनों के शुरुआती चरण ने या फिर बुद्ध, महावीर, ईसा और गांधी ने रखी थी। क्रोध, काम, लोभ आदि वृत्तियों के उन्नयन में ही आत्मक्रांति के बीज हैं। इनमें जाया होने वाली ऊर्जा हमें कहीं का नहीं छोड़ती। हममें ऐसा विद्रूप घटित करती है कि हम प्रेम के लायक रह ही नहीं जाते- न प्रेम पाने के लायक, न प्रेम करने के लायक। वैयक्तिक जीवन में भी लोग हमें झेल ही लेते हैं किसी तरह, बहुत उदात्त हुए तो हम पर स्नेह-करुणा आदि बरसा देते हैं, पर हमें उमगकर प्रेम करने या हमारा सम्मान करने का जिगरा उनका भी नहीं होता। इस संदर्भ में महावीर का एक-एक संवाद बेहद व्यंजक है! महावीर अनेकांत या सापेक्षता का सिद्धान्त समझा रहे हैं जयंती को-

"जयंती- भंते, सोना अच्छा है की जागना?

महावीर- कुछ लोगों का सोना और कुछ का जागना।

जयंती- ऐसा क्यों? महावीर: जो नकारात्मक लोग हैं, वे सोते रहें, वही अच्छा है, किंतु सकारात्मक वृत्तियों वाले लोगों का जागे रहना अच्छा है। ऐसा इसलिए कि जागकर एक अधिकाधिक जीवों को कष्ट देगा, दूसरा अधिकाधिक जीवों के सुख का कारक होगा।"

महावीर- जैसे महर्षि भी नकारात्मक वृत्तियों के अतिरेक से ग्रस्त लोगों के लिए यही कामना कर सकते हैं कि वे सोए रहें! वे भी उनसे पनाह ही मांगते हैं क्योंकि उन्हें पता हैं कि उनके विकास की अभी वह अवस्था नहीं आई कि उनसे संवाद संभव हो। वे अभी पुद्गल की उसी अवस्था में है उनमें दोषों की निर्जरा संभव नहीं है। उनसे उलझने से बेहतर है वही ऊर्जा उन लोगों के परिष्कार में लगाई जाए जो आधे जागे हुए हैं- अपनी दुर्वृत्तियों पर शर्मिंदा और जिनकी आँख का पानी गिरा नहीं। दुष्टता और घृणा के बीज पूरी तरह नष्ट हो जाएँ हर व्यक्ति में- यह संभव नहीं है। कुछ लोगों में ये वृत्तियाँ सुलाकर ही रखी जा सकती हैं और सुलाने का ढंग एक है- उनके क्रोध का जवाब या क्रोध से नहीं देना, उनमें काम-लोभ के प्रति भी निर्विकार बने रहना- अँग्रेजी में कहे तो प्रोवोक नहीं होना और अपनी ऊर्जा बचाकर सही दिशा में सही लोगों पर खर्च करना: उनके मर्म पर प्रहार करना, आईना दिखाना, समझना-समझाना। इसी सिद्धांत पर मेरा स्त्रीवाद चलता है, मैं चलती हूँ! सर्वोच्छेदन भी एक तरह का प्रतिक्रियावाद है। परंपरा से रूढ़ियाँ फटक लेना पर्याप्त है मेरे लिए। जिनसे मैं प्रेम नहीं कर पाती, उनके प्रति क्षमा, करुणा और ममता तो रखती हूँ, क्योंकि इस बात का मुझे भरोसा है कि कभी-न-कभी उनमें भी बुद्धत्व के बीज भटकेंगे।

प्रश्न : रचनात्मक धरातल पर आप किन कवियों से प्रभावित हैं?

अनामिका : भाव का अभाव से या फिर प्रभाव से नाता इतना गहरा और इतना बहुमुखी होता है कि सहसा समझ में नहीं आता, बात कहाँ से शुरू करूँ! मन तो कर रहा है कि आपके प्रश्न के जवाब में वही

कह दूँ जो जाबाला ने अपने पुत्र के आचार्य से कहा था- "बेटा, इतने ऋषियों की मुझ पर छाया है कि मैं स्वयं ही नहीं जानती, तू किसकी संतान है।"

पिताजी (श्यामनन्दन) से कविताओं की अंत्याक्षरी खेलती उनसे तरह-तरह की कहानियाँ सुनती बड़ी हुई। उनका पुस्तकालय संमृद्ध था- संस्कृत, फारसी, रूसी और जर्मन क्लासिकों के अनुवादों से गपशप सहज हुई। पिता की अपनी कविताओं में ऐसी मार्मिकता थी कि सबसे पहला प्रभाव हिंदी लेखकों में तो उनका ही पड़ा, उसके बाद मुक्तिबोध और अज्ञेय , धूमिल और केदारनाथ सिंह- प्रतिपक्षी समझे जाने वाले दोनों जोड़ों की कथन-भंगिमाएँ, उपेक्षित चरित्रों से उनका सहज संभाषण मुझे एक साथ ही अच्छा लगा।

अंग्रेजी कवियों में भी मुझे वही अच्छे लगे जिनमें विरुद्धों का सामंजस्य संचित था- जैसे गंभीर से गंभीर बात हँसकर कहने का जज्बा, रसों का, ध्वनियों का समन्वय, रूपकों में इहलोक-परलोक की चूलें मिला देने का जज्बा, जिसे अँग्रेजी में 'मेटाफिजिकलमूड' की कविता कहते हैं- शेक्सपियर, जॉनडन, एमिलीडिकिन्सन, एलियट, सिल्वियाप्लाथ, ऐनसेक्सटन, एंड्रीनरिच! इन्हीं कवियों पर मैंने पी-एच.डी., डी.लिट आदि के लिए शोध भी किया। इनका दर्शन और इनका विट् विरूद्धों के समंजस्य से ही निर्धारित होता है और इनके भाषिक अचेतन का मेरे भाषिक अवचेतन पर प्रभाव अवश्य पड़ा होगा क्योंकि मेरे जानते जीवन का सार ही विरूद्धों का समंजस्य है। विश्व कविता में गेटे, रिल्के, नेरुदा, लोर्का, मीलोश, रोजेविच और शिम्बोस्मा भी भावों की शुद्धता की रूमानी अवधारणा के परे जाते हैं और मुझे अच्छे लगते हैं इसलिए कि उनका तेवर यथार्थवादी है, जीवन के नौ रसों और अनंत ध्वनियों की सजग आवाजाही अपनी पिता की कविताओं में यही तेवर विरोधाभास (या पैराडॉक्स) के रूप में उभरता मैंने पाया था और मैं सहज ही प्रभावित हुई थी-

"आग भरा पानी का मन है,

कौन करे सहसा विश्वास!

कैसे समझाऊँ जीवन में

कितना महंगा है उल्लास।"

प्रश्न: आपकी दृष्टि से क्या विचारधारा कविता के भाव-पक्ष को कमजोर बनाती है?

अनामिका : नहीं-नहीं, वह तो उसमें खपच्ची लगाती है जैसे कि माधवी लता में खपच्चियाँ लगाई जाती है। विचारधारा या चिंतन या दर्शन कविता की प्रेम-बेल को खपच्ची का सहारा देकर उसे मजबूत ही करती है। उसके आश्रय ही फलती-फूलती है, कविता। दूर तक अपनी छाया पहुंचाती है! सिर्फ भावोच्छवास् कविता नहीं।

हाँ, मगर खपच्ची का बाँस बेढब और इतना दबंग न हो जाए कि सुकुमार लता दब ही जाए! उसकी फूल पत्तियों के सौंदर्यात्मक वितान के ऊपर से झाँके बाँस की खपच्ची तो वह भद्दी ही लगेगी। दर्शन की खपच्ची का फूल-पत्तियों के वितान की पृष्ठभूमि में छुपकर रहना ही अच्छा है।

समंजस्य और अतिरेकों का निषेध- यह एक आधारभूत लक्ष्य है मानवीय जीवन का। सौन्दर्य शास्त्र हो या नीतिशास्त्र या इन दोनों के मणिकांचन संयोग से बनने वाला काव्यशास्त्र- अतिरेकों का निषेध और स्थितप्रज्ञता- सबकी आधारभूत अवधारणा है। जैसे कि 'Art lies in concealing art' दर्शन भी शर्मीली बच्ची-सा हल्का ही झाँके और ओट ले ले तो बेहतर! स्पंदन उससे ही जगता है।

प्रश्न: आपकी तमाम कविताओं में स्त्री-प्रतिरोध का स्वर मुखर रूप में दिखाई देता है, जमीनी स्तर पर देखें क्या आपको लगता है कि सामाजिक बदलाव की दिशा में इन कविताओं की वाकई कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका है?

अनामिका : स्त्री आंदोलन इंग्लैंड के 'ग्लोरियस रेवोल्यूशन' के बाद का एकलौता आंदोलन है जिसने एक बूंद खून नहीं बहाया और साहित्य, कला, मीडिया आदि जनतांत्रिक माध्यमों से सूक्ष्म उद्बोधन किए। जो मार्मिक आख्यान इसने मंचित किए- कविता में, नाटक में, ललित निबंधों में, किस्से-कहानियों में- उसने लोगों को आत्ममंथन की प्रेरणा न दी होती या अपने गिरेबान में झाँकने को उकसाया न होता तो पुरुष-स्त्रीवादियों की आपकी पीढ़ी इतनी तैयारियों के साथ सामने आई न होती।

हमारा संबोध्य तो आपकी ही पीढ़ी थी और उसका नजरिया निश्चित ही बदला- स्त्री को मनुष्य/ दोस्त/ सहचरी समझने का जज्बा इसका प्रमाण है। अब शायद ही ऐसा होता हो कि दाल में नमक कम या ज्यादा होने पर थालियाँ पटक दी जाती हो या प्रेम संबंध खतम होने पर ब्लैकमेल किया जाता हो। लोग दोस्तों की तरह अलग हो जाते हैं- एक-दूसरे की मजबूरियाँ समझते हुए। घर के काम-काज में या बच्चे पालने में भी पिता मदद करते हैं। हादसे की शिकार लड़कियों से विवाह करते हुए नवल पुरुष झिझकते नहीं यानी यौन-शुचिता इतना बड़ा प्रश्न नहीं रहा। बात-बात में हाथ भी नहीं छोड़ते लड़के और मेरे ख़्याल से यौन संबंध थोपते भी नहीं- कम-से-कम पढ़े-लिखे लड़कों में इंतज़ार और सहमति का धैर्य तो जागा है! दहेज-दहन भी कम हुआ है, पर शराब चूंकि कोकाकोला हो गई है, सड़क के दूसरे हादसों की तरह बलात का प्रतिशत भी बढ़ा है। यह प्रतिशत इसलिए भी बढ़ा है कि वारदातों की रपट समय पर हो जाती है, अब वैसी लुका-छुपी नहीं मचती।

एक बड़ा परिवर्तन यह भी हुआ है- खासकर वहाँ जहां लड़कियां अपने पाँवों पर खड़ी हैं कि लड़की के बाप-माँ और दोस्त भी घर में बराबर का मान पाने लगे हैं।

मैं यह नहीं कहती कि हमने मंजिल पा ही ली है और स्त्री-संबंधी अपराधों पर काबू कर लिया गया है, पर स्थिति पहले से बेहतर जरूर हुई है। सती प्रथा, बाल-विवाह आदि के उन्मूलन में जिस तरह कानून ने सहायता की थी, स्त्री-शिक्षा, पिता/पति की संपति में हिस्सा, विधवा-विवाह, पुनर्विवाह आदि कई प्रसंग हैं जिनमें कानून ने बड़ी भूमिका निभाई है, पर कानून बने तो जागरण के बाद ही हैं।

प्रश्न: क्या आपकी दृष्टि में नारी विमर्श, स्त्री-विमर्श एवं महिला-विमर्श जैसी शब्दावलियों में विभेद है?

अनामिका :राजेंद्र यादव कहते थे कि 'नारी' और 'महिला' दोनों छायावादी संस्कार के शब्द हैं,'स्त्री' और 'मानुषी' की गरिमा अलग है। ध्वन्यार्थ के लिहाज से बात शायद सच है- 'नर','मर्द' आदि भी आंदोलन के साथ उतने खपते नहीं। 'महिला' से शौचालय या बस रिजर्ब्ड सीट का ध्यान आता है।

प्रश्न: समकालीन साहित्य में स्त्री को पारिभाषित करने के क्रम में दलित स्त्री एवं आदिवासी स्त्री जैसी कई तरह की विभाजक रेखाएँ खिची हुई दिखाई देती हैं। क्या आपको नहीं लगता कि इसका विभाजन

किसी वर्ग, धर्म अथवा संप्रदाय से न करके स्त्री को केवल स्त्री के रूप में देखा जाना चाहिए, इस पर आपकी क्या राय है?

अनामिका : कोढ़ में खाज की तरह अभिशाप दोहरे भी होते हैं। वैसे तो स्त्री होना अभिशाप नहीं, कई अर्थों में वरदान भी है, पर स्त्री शरीर में पैदा होना कई झमेले भी पैदा करता है: भ्रूणहत्या, यांत्रिक संभोग, बलात्कार, डायन-दहन, मार-पीट, गाली-गलोज है। ट्रेफिकिंग आदि सभी वर्गों, नस्लों, वर्णों, धर्मों की स्त्रियाँ इस दृष्टि से बहनें हैं कि देह से जुड़े दुःख और सुख उनके साझा हैं और इस सुख-दुख की अभिव्यक्ति की भाषा भी एक ही तरह से उच्छल है, पर दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, अश्वेत और विकलांग होने की स्थितियाँ दोहरे शोषण का आगार बना देती हैं स्त्री शरीर को श्रम-दोहन और यौन-दोहन के अलावा जातीय/ नस्ली/ धार्मिक पूर्वाग्रह का घटाटोप मनुष्य के रूप में उनकी पहचान भी धूमिल करता है।

प्रश्न: बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग को आप अपनी कविताओं में कितना तरजीह देती हैं?

अनामिका : कविता शर्मीली-सी कमसुखन विधा है। इसका स्वभाव स्त्री स्वभाव से काफी मिलता-जुलता है- कम जगह घेरती है, कम बोलती है और जो बोलती है, इशारों में इस उम्मीद के साथ उसे अपनी पहल पर समझ लिया जाएगा। कमसुख़न है पर हटी-घटी नहीं रचती ! सहकारिता उसके जीवन का मूल-मंत्र है। सभी भगिनी विधाओं की ओर उसने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है- पहले संगीत से इसकी दोस्ती घनेरी थी, अब चित्रकला की गोइयां है यह! जो इशारे करती है, बिंबों में ही उनका अवक्षेपण होता है, इसलिए बिंब महत्वपूर्ण तो हैं। पांचों इंद्रियाँ जीवन-जगत की ओर खुलने वाले दरवाजे ही तो हैं। पांच इंद्रियों के स्पंदन से पाँच तरह के बिंब बनते हैं। दिल से दिल तक जो राह जाती है- बिंबो के रास्ते ही। दैनंदिन जीवन की साधारण वस्तुएँ हों और ब्रह्मांड की असाधारण वस्तुएं कविता में बिम्ब कहीं से आ जाते हैं और इन्हें डिकोड करके आसानी से कवि के रेंज और उसके मनोलोक के गहनतम कोने का आभास पाया जा सकता है। बिंब ही बार-बार एक विशेष क्रम में प्रकट होकर प्रतीक बन जाते हैं- जैसे,'एलिस इन द वण्डरलैंड' की चशायर कैट जो अचानक कहीं भी प्रकट हो जाती है। पर बिंबों

का आधिक्य ठुँसे हुए भंडारघर का आभास देता है। घास के मैदान में दूर खिले किसी फूल-सी बिंब की उपस्थिति होनी चाहिए।

प्रश्न: वैश्वीकरण, बाजारवाद, उत्तर आधुनिकता एवं उदारीकरण जैसी संकल्पनाओं ने 90 के बाद स्त्री कविता को किस प्रकार प्रभावित किया है?

अनामिका: दुनिया के जितने धर्मग्रंथ और दार्शनिक निकाय हैं, उनकी एक उभयनिष्ठ प्रपत्रि है डायलेक्टिक्स कि जो भी प्रकट होता है, जोड़े में होता है- सुख और दुःख, उजाला-अंधेरा, काल-स्थान, थीसिस-एंटीथीसिस और मन जब तक मन है यानी कि अ-मन नहीं हुआ यानी दो अतिरेकों के बीच सम्यक् भाव में स्थित- तब तक वह आनंद निर्झर हो नहीं सकता। इसी तरह जब तक समाज में थीसिस-एंटीथीसिस 'सिंथेसिस' या करुणासंबलित न्याय भी अवस्था धारण नहीं कर लेते, यानी वंचितों को बराबरी के संसाधन और विकास के समान अवसर नहीं मिलते वह तुमुल कोलाहल-कलह का आगार बना ही रहेगा। जिस तरह अंतर्वैयक्तिक संबंधों या स्त्री-पुरुष और ब्रह्मांड के बीच के सम्बन्धों का समाहार है अहैतुक प्रेम, वैसे ही वर्गों-वर्णों-लिंगों-नस्लों- धार्मिक निकायों के बीच सम्बन्धों का समाहार न्याय, ऐसा न्याय जिसमें दोनों पक्ष- शोषक या शोषित यह ऊर्ध्वबाहु संकल्प ले सकें कि 'अब लौं नसानी अब न नसैहों!' मुक्ति के दो अर्थ हैं- समाजिकी में उसका अर्थ है लिबरेशन,पूर्वग्रहों से मुक्ति और अध्यात्म में उसका अर्थ है 'सैल्वेशन'- काम' क्रोध-लोभ के परमकारक- अहंकार से मुक्ति! दोनों के लिए 'अब' यानी वर्तमान मुहूर्त बड़े प्रमाण-बिंदु हो सकते हैं! जो हुआ सो हुआ- अब न हो।

जो दो हमारे महाप्रमेय थे- धर्म और मार्क्सवाद- दोनों का प्रस्थान बिंदु क्षुद्रतर अहं से मुक्ति ही था, और दोनों का क्षरण अहंकारमूलक श्रेष्ठता-ग्रंथि से हुआ। इसी से तरह की संवादहीनता पनपी जिसकी प्रतिक्रिया में उत्तर-आधुनिकता अंतःपाठीय संवादों और 'फ्यूजन' पर इतना ज़ोर देने लगी- शास्त्रीय और लोकप्रिय,'श्रेष्ठ' और 'तथाकथित' रूप से हीनतर के बीच का फ्यूजन, पूरब और पश्चिम के बीच का फ्यूजन, गद्य और पद्य के बीच का फ्यूजन। भेद-भाव की संरचनाएं ढाहने का इसका अपना तरीका वास्तु कला, संगीत कला, मूर्तिकला, चित्रकला और साहित्य के शिल्प परिवर्तित हुआ ! हर

जगह शिल्प के धरातल पर भूकंप-सा मच गया पर इसकी प्रकट अराजकता के बीच एक मार्मिक अंतःसूत्रकालमेघ के बीच दमकती विधुहबर्णी कौंध में ढूंढा जा सकता है।

जिस तरह सिल्क-रूट से सूफियाँ, सौदागरों और सैनिकों के दस्ते आए तो बाजार की भाषा बदली और बौद्ध-जैन धर्मों की बढ़ती लोकप्रियता से घबराए हिन्दू धर्माधिकारी संस्कृत लोकभाषा में धर्मचर्चा मंदिर-मंडपों में आयोजित कर लगे तो इसका सबसे अधिक लाभ स्त्री और दलितों को हुआ- ज्ञान-संज्ञान के नए दरवाजे उनके आगे खुले और वे भी सिद्ध रचनाकारों के रूप में उभरे, 'भू' के 'मंडी' बन जाने की स्थिति भी वंचितों की रचनाशीलता उभार गयी- 'अंतर्जाल' पर प्रकाशन की सुविधा, पूर्वग्रहग्रस्त गाँवों से 'प्रयाण' की स्थितियाँ उनके लिए मुक्ति का मार्ग भी सिद्ध हुई और एक नयी तरह की काव्य भाषा उभरी जिस पर मैंने कई लेख लिखे हैं।

प्रश्न: आपने एक साक्षात्कार में स्त्रियों का आलोचना के क्षेत्र में हस्तक्षेप विषयक प्रश्न के जवाब में यह स्वीकार किया है कि "पुरुष लेखकों की सामूहिक घेरेबंदी के सामने एक स्त्री असहाय हो जाती है" वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आपका यह कथन कितना समीचीन है?

अनामिका : अंतर्जाल की त्वरित प्रतिक्रियाओं के कुछ शुभेतर पक्ष भी होंगे, पर एक अच्छी बात इसमें यह हुई कि अब इतनी आसानी से स्त्री-विरोधी/दलित विरोधी, आदिवासी और अल्पसंख्यक-विरोधी या फिर विकलांग विरोधी वक्तव्य थूककर आप पतली गली से निकल नहीं सकते। बिजली की फुर्ती से स्त्री-वक्तव्य आएंगे और आपको हर तरफ से इस तरह घेर लेंगे कि बगलें झाँकने के सिवा आपके पास कोई उपाय न बचेगा।

आज से पाँच-सात साल पहले तक सिर्फ अनियतकालीन लघु-पत्रिकाएँ स्त्री-लेखकों के साथ थीं या फिर 'हंस' और 'कथादेश' जैसी पत्रिकाएँ। वे भी स्त्री-विरोधी घेरेबंदियों के खिलाफ बहसें चलाती थीं, पर मास-दर-मास चलने वाली इन बहसों की त्वरा कभी-कभी इतनी कम हो जाती थी कि अंत तक आते-आते द्विअर्थी टिप्पणियां, अन्य मसालेदार चुटकियाँ भी इनके छुमछल्ले बनकर लटकी नजर आने लगती थीं। कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता था- खासकर देह प्रसंग के इर्द-गिर्द।

बहस में शिरकत करने वाले लोग और कभी-कभी पुरुष-संपादक भी जैसे यह भूल भी जाते थे कि ज़्यादातर स्त्रियों के लिए देह गले में लटका हुआ ढोल ही है, हर तरह के शोषण का प्राइम साइट, इसलिए उनके लेखन में कहीं देह भी आती है तो एक टभकते हुए घाव की तरह। अभी तो वह नया पुरुष पैदा ही होना है जिसके आगे स्त्री-देह में प्रेम का सोता फूटे क्योंकि स्त्री-देह में स्पंदन जगाने की पहली शर्त्त है धीरोदात्तता जो पुरुषों में विरल है।

अपर्णा महांति से साक्षात्कार

प्रश्न: समकालीन (सांप्रतिक) ओड़िया कविता के सीमांकन को लेकर आलोचकों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ प्रचलित हैं, आप समकालीन ओड़िया कविता का आरंभ कहाँ से मानती हैं?

अपर्णा महांति :1980 के बाद लिखी गई ओड़िया काव्य-धारा को समकालीन ओड़िया कविता के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

प्रश्न: समकालीन ओड़िया कविता से आपका क्या अभिप्राय है? एक कवयित्री होने के साथ-साथ बतौर समालोचक आप पूर्ववर्ती कविताओं से समकालीन ओड़िया कविता के अलगाव को किस रूप में देखती हैं?

अ.म. : प्राचीन, मध्ययुगीन कविताओं में पुराण , रीति, अलंकार आदि के अवलंबन, इसकी सांगीतिकता तथा आधुनिक युग के प्रारम्भ में रहस्यवाद, छायावाद, यथार्थवाद, दुर्बोध्य आंगिक/आत्मिक भावों से मुक्त होकर समकालीन ओड़िया कविता कवि के अन्तः एवं वाह्य जगत को सहज, सरल, आंतरिक और छल से मुक्त दिखाई देती है। भाव विलास एवं कविता जीवनचर्या में रूपांतरित हुई। कविताओं में साधारण मनुष्य, माटी-मोह, प्रकृति, दलित, नारी, मजदूरी, विस्थापन, शरणार्थी तथा गृहयुद्ध बाद में प्रत्येक मानवीय समस्याएं मुक्त एवं संवेदनशील रूप में अभिव्यक्त हुई। साधारण मनुष्य की आशा/अभिलाषा और व्यथा/आनंद आदि भाव आत्म-कुंठा के रूप में कविता में स्पष्ट होने लगा। इन सभी दृष्टियों से पूर्ववर्ती ओड़िया कविता से समकालीन ओड़िया कविता की भिन्नता स्पष्ट है।

प्रश्न : अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में आप क्या कहना चाहेंगी?

अ.म. : अपनी रचना प्रक्रिया के संबंध में केवल मैं इतना कह सकती हूँ कि एक पितृप्रधान समाज व्यवस्था में एक नारी रूप में जिस प्रकार मैंने जीया है, उसे ही निःसंकोच कविता में कहने की चेष्टा की है। मोटे तौर पर नारी के देह-मन-यौन -मुक्ति के लिए मेरी कविता हमेशा व्याकुल तथा मुखर रहती है। परंपरा/मर्यादा की आड़ में नारी पर थोपे गए प्रतिबंधों के विरुद्ध मेरी कविता प्रतिवाद करती है।

प्रश्न: आपके दौर के समालोचकों एवं कुछ रचनाकारों का मंतव्य है कि पुरुषों द्वारा लिखी गई स्त्री जीवन पर केंद्रित कविताओं में स्त्री-मन के विज्ञान को ठीक-ठीक नहीं समझा गया, रचनात्मक संवेदना के स्तर पर आप अपने समय की कवयित्रियों के बरक्स कवियों (पुरुष) की स्त्री-विषयक दृष्टि को किस रूप में देखती हैं?

अ.म.: शास्त्र-पुराणों से लेकर आज तक पुरुष लेखकों ने खुद को नारी समझकर नारी चरित्र निर्माण किए हैं, नारी के संबंध में लिखा है। यह भी सत्य है कि नारी के संबंध में लिखते समय पुरुषों की तरह शक्तिशाली चरित्रों के निर्माण में कई क्षेत्रों पर विफल हुए हैं। एक पुरुष समाज से प्राप्त मुक्त मानसिकता एवं शंकाशून्यता के लिए उसकी सृष्टि में अपने मुक्ति-बोध दृष्टिगत होते हैं, जो लेखिकाओं के क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम देखने को मिलता है। किंतु एक नारी द्वारा खुद पर लिखना एवं एक पुरुष द्वारा नारी के संबंध में लिखना, कैसे एक बात हो सकती है ?

प्रश्न: पितृसत्ता की चुनौतियों के बीच आपके दौर की कविताएं सामंती मूल्यों एवं रूढ़ियों के खिलाफ़ मुठभेड़ कर पाने में कहाँ तक समर्थ हैं?

अ.म. : पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था की रूढ़िवाद से एक लेखिका के लिए छुटकारा पाना कभी सहज नहीं है। क्योंकि कालांतर से समाज में नारी की न्यूनताबोध को ही स्वीकृति दी गई है एवं स्त्रियों ने उसे नारी धर्म के रूप में ग्रहण भी कर लिया है। परिवारवाद को पुरुष की तुलना में नारी अधिक श्रद्धा-सम्मान करती है। उसका सहजात ममत्वबोध ही इसका कारण है। इसीलिए परिवार टूट जाने की भय से नारी उग्र और प्रतिक्रियाशील नहीं हो पाती है। वर्तमान की कविता में इस प्रसंग पर बहुत कुछ छूट जाना अस्वाभाविक नहीं है। किंतु उसके अंदर पितृसत्ता में अविचार और नारी शोषण के विरोध में जो संघर्ष के स्वर आज मुखर हैं, वह कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

प्रश्न: आपने अपनी कुछ कविताओं में मिथकों का प्रयोग किया है, आपके विचार से स्त्री विमर्श के आलोक में मिथकीय चरित्रों की क्या प्रासंगिकता है?

अ.म. : हाँ ! सीता, सावित्री, अहल्या, कुंती, तारा, मंदोदरी, गंगा, द्रौपदी आदि पुराणों की नारियों को नये दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता अत्यंत जरूरी है। नारी को केवल सतीत्व के आधार पर मूल्य देने वाला पितृप्रधान समाज, उसे उसके व्यक्तित्व के आधार पर पुनर्मूल्यांकन करना अभी अधिक प्रासंगिक हो गया है।

प्रश्न : मोटे तौर पर देखें तो 80 के दशक से स्त्री-विमर्श जैसी संकल्पना सुदृढ़ रूप में विकसित होती हुई दिखाई देती है, स्त्री विमर्श के आलोक में आप 1980 से पहले की स्त्री-विषयक कविताओं को किस रूप में देखती हैं?

अ.म. : 1980 तक ओड़िया कविता में नारी-विमर्श जैसी कोई अवधारणा नहीं दिखती। नारी के दुःख, दर्द को व्यक्त करना नारी विमर्श नहीं है। दृढ़ प्रतिवाद और संग्राम के स्वर की प्रतिध्वनि विमर्श का सूत्रपात करता है।

प्रश्न : आपकी कविताओं में प्रेम, परंपरा और विद्रोह के बीच सामंजस्य का भाव दिखाई देता है, इस पर आपकी क्या राय है?

अ.म. : देखिये, प्रेमहीन मुक्ति, मुक्ति नहीं है- यह एक दिगभ्रांत उन्माद मात्र। प्रेम ही मुक्ति को शृंखलित, शालीन और उत्तीर्ण करता है, इसीलिए मुक्ति का प्रथम और अंतिम प्रयास प्रेम है। परंपरा में सब कुछ त्याज्य नहीं है। जो परंपरा स्त्री व्यक्तित्व के निर्माण में बाधक हो, मेरे विचार से उसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। जिस प्रकार विवाह और परिवार एक स्वस्थ परंपरा है। परंतु उसी दाय में 'स्त्री' को 'दासी' के स्थान पर रखना अत्यंत घृणित परंपरा है। जो परंपरा नारी के विकसित व्यक्तित्व का श्रद्धा-सम्मान करती है, मैं उसे ग्रहण करती हूँ। इसीलिए मेरी कविताओं में प्रेम, परंपरा सब कुछ नारी अस्मिता के सचेतन विकास के लिए अभिप्रेरित है, कहने से गलत नहीं होगा।

प्रश्न: रचनात्मक धरातल पर आप किन कवियों से प्रभावित हैं?

अ.म. : मैं अपनी ओड़िया काव्य जगत के वरेण्य कवि जयदेव, सारला दास, बलराम दास, जगन्नाथ दास, अभिमन्यु सामंतसिंहार, मायाधर मानसिंह तथा हिंदी कवियित्री महादेवी वर्मा एवं अमृता प्रीतम आदि से प्रभावित हूँ।

प्रश्न: आपकी दृष्टि से क्या विचारधारा कविता के भाव-पक्ष को कमजोर बनाती है?

अ.म. : नहीं, विचारधारा कविता के भावपक्ष को दुर्बल नहीं करती है बल्कि उन्नत, सशक्त मानवीय विचार ही कविता के भाव को अधिक सरल, स्पष्ट, सुंदर तथा सलिल करता है।

प्रश्न: आपकी तमाम कविताओं में स्त्री-प्रतिरोध का स्वर मुखर रूप में दिखाई देता है, जमीनी स्तर पर देखें क्या आपको लगता है कि सामाजिक बदलाव की दिशा में इन कविताओं की वाकई कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका है?

अ.म. : मेरी कविताओं में मौजूद प्रतिवाद के स्वर समाज में परिवर्तन लाएँगे या नहीं, इन सारी बातों पर मैंने कभी सोचा नहीं है। किंतु मेरी कविताएं कुछ पाठकों को जीवन के साथ लड़ने की प्रेरणा दी है और वे यह बताती हैं कि आत्महत्या जैसे चरम निर्णय को त्यागकर जीवन को अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत कर रही है। वह सब मेरी कविताओं की शक्ति है, मुझे हृदबोध होती है। मेरे लिए संतोष की बात है कि वर्तमान ओड़िया स्त्री लेखन में मेरी बेटी की आयु समक्ष मुक्त-मुखर लेखिकाओं ने जब मुझसे साहस की प्राप्ति को स्वीकार किया, तब मुझे अपने कवि-कर्म की सार्थकता महसूस हुई।

प्रश्न: क्या आपकी दृष्टि में नारी विमर्श, स्त्री-विमर्श एवं महिला-विमर्श जैसी शब्दावलियों में विभेद है?

अ.म.:'नारी','स्त्री','महिला'इन तीनों शब्दों में एक सूक्ष्म विभाजन रेखा खिची जा सकती है। 'नारी' शब्द जगत के सभी वर्ग की नारी जाति को द्योतित करते हुए, 'स्त्री' पुरुष के शासनाधीन पत्नी को सूचित करता है या परिवारवाद के भीतर शृंखलित नारी को पारिभाषित करता है। 'महिला' शब्द प्रयोग से तथाकथित संभ्रांत वर्ग की नारियां ध्यान में आती हैं, जो एक पितृप्रधान समाज के पद-प्रतिष्ठा को अलंकार सदृश धारण करती हैं। इन सभी के सामाजिक और व्यक्तिगत दृष्टिकोण निश्चय ही अलग-

अलग होंगे। जैसे निम्न वर्ग की नारियां तुलनात्मक रूप से स्वावलंबी और स्वाधीनचेता होते हुए भी उच्च वर्ग की नारियों के बरक्स समाज-व्यवस्था का विरोध अपेक्षाकृत कम करती हैं, इसका कारण यह है कि प्रचलित समाज व्यवस्था उन्हें छद्म अहंकार की स्वामिनी मानता रहा है। इस दृष्टि से हम अगर विचार करें तो नारी-विमर्श में विविध आयाम का होना स्वाभाविक है।

प्रश्न: समकालीन साहित्य में स्त्री को पारिभाषित करने के क्रम में दलित स्त्री एवं आदिवासी स्त्री जैसी कई तरह की विभाजक रेखाएँ खिची हुई दिखाई देती हैं। क्या आपको नहीं लगता कि इसका विभाजन किसी वर्ग, धर्म अथवा संप्रदाय से न करके स्त्री को केवल स्त्री के रूप में देखा जाना चाहिए, इस पर आपकी क्या राय है?

अ.म.: संभ्रांत श्रेणी की नारियों के बरक्स दलित एवं आदिवासियों की समस्या ही कुछ अलग है। मजदूरी, विस्थापन जैसी समस्याओं को इन्होंने अधिक भोगा है। तथाकथित सभ्य समाज के मनुष्यों ने इन्हें व्यवहार योग्य वस्तु के रूप में विवेचित किया है। दलित नारियों को साधारण दलित वर्ग के सामाजिक शोषण सहित उच्च वर्ग के यौन शोषण को भी सहना पड़ता है। आदिवासी नारियां प्रायः सामाजिक स्वाधीन विचार की अधिकारिणी होने के बावजूद सभ्य समाज के छल द्वारा प्रताड़ित और लुंठित होती हैं। इसीलिए इन सब के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण रखना भी स्त्री-विमर्श का मुख्य उद्देश्य है।

प्रश्न : बिंबों और प्रतीकों के प्रयोग को आप अपनी कविताओं में कितना तरजीह देती हैं?

अ.म.: बिंबों एवं प्रतीकों का प्रयोग मैं अपनी कविताओं में सचेतन रूप में नहीं करती हूँ। भावनाओं के प्रवाह में जो जितना आ गया है, बस उतना है।

प्रश्न: आपकी दृष्टि में उग्र नारीवाद क्या है?

अ.म. :किसी भी दर्शन या वाद में उग्रता कभी भी युग परिवर्तन का वाहक नहीं होती है। पुरुष के साथ स्पर्धा कर पुरुष जैसे तमाम विशृंखलित आचरण प्रदर्शन करने को यदि उग्र नारीवाद कहा जाता है, तब मैं इसके पक्ष में नहीं हूँ। अस्मिता के स्वातंत्र्य को समाज व्यवस्था में प्रतिष्ठा देने हेतु संग्राम को ही मैं नारीवाद के रूप में स्वीकार करती हूँ।

प्रश्न: वैश्वीकरण, बाजारवाद, उत्तर आधुनिकता एवं उदारीकरण जैसी संकल्पनाओं ने 90 के बाद स्त्री कविता को किस प्रकार प्रभावित किया है?

अ.म. : वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारबाद तथा उत्तर आधुनिकता आदि अवधारणाएँ आज की कविताओं को प्रभावित कर रहे हैं। नारी देह को यह व्यवस्था पण्य और वस्तु के रूप में जितना प्रयोग में लाती है, दूसरी ओर नारी भी अपने देह को वस्तु भांति उपयोग कर अपनी उच्च आकांक्षा को चरितार्थ करती दिखाई देती है। ऐसी व्यवस्था में मानवीय मूल्य-बोध, व्यक्ति का आत्म-सम्मान एवं नारी की अस्मिता भी दिग्भ्रांत होती है।

6 माइल, सामदुर, तादोंग -737102
गंगटोक, सिक्किम, भारत
फोन-03592-251212, 251415, 251656
टेलीफैक्स -251067
वेबसाइट - www.cus.ac.in

सिक्किम विश्वविद्यालय
SIKKIM UNIVERSITY

(भारत के संसद के अधिनियम द्वारा वर्ष 2007 में स्थापित और नैक (एनएएसी) द्वारा वर्ष 2015 में प्रत्यायित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
(A central university established by an Act of Parliament of India in 2007 and accredited by NAAC in 2015)

6th Mile, Samdur,Tadong -737102
Gangtok, Sikkim, India
Ph. 03592-251212, 251415, 251656
Telefax: 251067
Website: www.cus.ac.in

दिनांक : 07/02/2020

प्रमाण-पत्र
(प्लेजेरिज़म रिपोर्ट)

प्रमाणित किया जाता है कि **दिब्य रंजन साहू** (पंजीयन संख्या-18/M.Phil/HND/03, दिनांक-24/05/2019) ने **'अनामिका एवं अपर्णा महांति की कविताओं में स्त्री विमर्श : तुलनात्मक अध्ययन'** विषय पर एम. फिल. हिंदी उपाधि हेतु लघु शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को सिक्किम विश्वविद्यालय द्वारा प्लेजेरिज़म परीक्षण के उपरांत साहित्यिक चोरी से मुक्त पाया गया।

मैं दिब्य रंजन साहू के लघु शोध-प्रबंध को मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

शोध-निर्देशक

प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
भाषा एवं साहित्य संकाय
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक-737102

(डॉ. प्रदीप त्रिपाठी)
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक